



लेखक की अन्य रचनाएँ—

1. Geographical Education in Indian Universities.
2. Teaching in Post War Schools.

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम प्रकाशन

१९४८

प्रकाशक:

योगेशचन्द्र शर्मा,
गिरिजा प्रकाशन
सूर्यपोल, उदयपुर

मुद्रक:

सी. एम. शाह,
मॉडर्न प्रिण्टरी लिमिटेड,
इन्दौर

बालक

घर और स्कूल के बाहर

घर स्कूल तथा राज्य का उत्तरदायित्व

लेखक

केदारनाथ श्रीवास्तव एम. ए. बी. ए.

स्थानापन्न प्रिन्सिपल

विद्याभवन गोविन्दराम सेकसरिया टीचर्स ट्रेनिङ कॉलेज
उदयपुर

प्राक्कथन लेखक :—

श्री बी. जी. खेर

प्रधानमन्त्री, बम्बई प्रान्त

—:प्रकाशक :—

गिरिजा प्रकाशन,

सूर्यपोल, उदयपुर

विषयानुक्रम

पृष्ठाङ्क

प्राक्कथन

आमुख

१. राष्ट्र के पुनर्निर्माण में भाग	१
२. राजनीति में भाग	१४
३. समाज-सेवा	३०
४. सिनेमा में	४४
५. रेडियो पर	५३
६. खेल के मैदानों, क्रीडागृहों तथा विहार-वाटिकाओं में	६१
७. कैम्प और कैम्पिङ्ग	७५
८. यात्रा, ट्रिप और सैर	८६
९. सार्वजनिक-पुस्तकालय और पुस्तक-सप्ताह	८६
१०. मन्दिरों में	१११
११. दोस्तों के बीच	१२२
१२. समाज के बाल-अपराधी	१३७
१३. अदालत में	१५४
१४. सुधार-संस्थाओं या जेलों में	१६५
१५. रोज़ी की खोज में	१७५

कैम्प और कैम्पिंग

जब कभी कोई व्यक्ति किसी बड़े शहर अथवा कस्बे की सड़क पर से गुजरता हुआ रास्ते में जाने वाले पुरुषों, स्त्रियों अथवा बालकों को देखता है तो उसे एक काफी बड़ी तादाद में क्षतिग्रस्त मानवता दृष्टि-गोचर होती है। इन पुरुषों, स्त्रियों अथवा बालकों को देखने से साफ जाहिर होता है कि ये लोग एक अधूरा जीवन बिता रहे हैं। क्षतिग्रस्त मानवता शहरों में काफी दिखलाई देती है। मैं खुद भी उसका शिकार हूँ और दूसरे भी हैं। ये लोग गरीब, खराब कपड़ों वाले अथवा बीमार चाहे न भी हों लेकिन यह बात साफ है कि वे उच्च मानवता से जरूर गिरे हुए से प्रतीत होते हैं। इन लोगों की पूर्ण रूप से मानसिक उन्नति करना अथवा उनको अच्छे तन्दुरुस्त नागरिक बनाने का काम काफी मुश्किल है। इसलिये अगर हम इस कमी को युवा पुरुषों से दूर नहीं कर सके तो बच्चों की जिन्दगी से तो इस कमी को पूरा करने की कोशिश करनी ही चाहिये। बच्चों को हमें जिन्दगी का काफी लुत्फ उठाने देना चाहिये। मानव जीवन में काफी आनन्द तभी आ सकता है जब हम शिक्षा को रिक्रीएशन के साथ मिला दें। डा. एल. पी. जेक्स का कहना है कि हम शिक्षा को एक तरफ और रिक्रीएशन को उससे बिल्कुल दूसरी तरफ रखने के ऐसे आदी हो गये हैं कि हम इसके अलग करने के विचार को सामने लाते हुए कुछ न कुछ मुश्किल जरूर अनुभव करते हैं। उनकी राय है कि अगर शब्द रिक्रीएशन (Re-creation) का उच्चारण रीक्रिएशन (Re-creation) करें जिसका मतलब होता है कि क्षतिग्रस्त शरीर व दिमाग का पुनर्निर्माण किया जावे तो यह भ्रान्ति बिल्कुल मिटाई जा सकती है। अगर इस शब्द का यह उच्चारण कायम कर दिया जावे तो किसी को यह सुनकर अचम्भा नहीं होगा कि कैम्प या खेल का मैदान स्कूल के बाहर की चीज है। वरन् इससे यह बात साफ जाहिर होगी कि ये दोनों बातें स्कूल का एक आवश्यक

“ शिक्षा का काम स्कूलों के बन्द हो जाने से नहीं टूटता । घर और स्कूल के बाहर भी शिक्षा चलती रहती है— चाहे अच्छी, चाहे बुरी । समाज ही इस बात का निर्णय कर सकता है कि इस शिक्षा का स्वरूप क्या हो ? ”

—सेसिल पिलपेल

क्षेत्र में भी आगे बढ़ने की गुंजाइश और जरूरत है । प्रमुख प्रकाशकों और लेखकों को इस काम को हाथ में लेना चाहिए । उनके सहयोग के बिना योजनायें कभी सफल नहीं हो सकतीं । विदेशी भाषाओं में हजारों पुस्तकें प्रतिवर्ष बालकों के लिये प्रकाशित होती हैं, जिनमें हमारे जीवन की आधुनिकतम जानकारीयाँ भरी रहती हैं । देशी भाषाओं में इनका अनुवाद उपादेय होगा ।

यदि स्वतन्त्र भारत में प्राइमरी और माध्यमिक दोनों प्रकार की शालाओं में धार्मिक शिक्षण के उचित महत्व को स्वीकार करते हुए कोई नवीन शिक्षा योजना बनाई जाय तो बड़ी उत्तम बात हो। जब हमने अंग्रेजी राज्य की धर्म के प्रति उदासीन मनोवृत्ति के कारण धर्म से असंबद्ध शिक्षा प्रणाली को प्रश्रय देकर हानि उठाली है, तो अब तो हमारा यह फर्ज हो जाता है कि ऐसी शिक्षा प्रणाली की नींव डाले, जिसमें धर्म को उचित स्थान प्राप्त हो। पूर्व की उच्च कोटि की आध्यात्म-वादिता ने ही पश्चिम को यहाँ आकर मनोजागरण के लिए साधना करने के लिए प्रेरणा दी। ऐसी अवस्था में जब कि शिक्षा क्षेत्र में आमूल परिवर्तन भारतीय परम्परा और मनोवृत्ति की रक्षा की दृष्टि से अत्यावश्यक हो गया है, क्या हम धर्म के प्रति उदासीन रह सकते हैं।

भारत जैसे देश में, जहाँ अनेक धर्म हैं, धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था में अनेक कठिनाइयाँ हैं, पर इतने पर भी इस महत्वपूर्ण शैक्षिक अंग की किसी प्रकार उपेक्षा भी नहीं की जा सकती । कुछ लोग यह दलील देते हैं कि स्कूलों में धार्मिक शिक्षा का अभ्यास विविध धर्मावलम्बियों के बीच घृणा और साम्प्रदायिक सहिष्णुता उत्पन्न कर देगा । पर धर्म और साम्प्रदायिकता अलग-अलग चीजें हैं । साम्प्रदायिकता से मुक्ति पाने के लिए धर्म का विनाश आवश्यक नहीं है । धार्मिक शिक्षा प्रारम्भ करने के रास्ते में अनेक विघ्न, बाधाएँ हैं, पर उन सबका सामना करना ही होगा । हृदय और चरित्र को शिक्षा से रहित केवल बुद्धि या मस्तिष्क की शिक्षा, शिक्षा नहीं है, और यह अत्यन्त घातक भी है । इस कारण धर्म की शिक्षा अत्यन्त महत्व रखती है । यह अवश्य ध्यान में रखने की बात है कि ऐसी शिक्षा बौद्धिक पर्यवेक्षण पर आधारित हो, न कि केवल भाववेश पर ।



बम्बई, १-७-१९४७

हिंदुस्तानमें अभोक्त शिक्षाका क्षेत्र
चार दिवालोंमें पटायी जानेवाली कित्तियोंसेही
परिमित रहा। जनता देशको विदेशियोंके
पाशोंसे छुड़ानेमें व्यस्त थी। अब स्वराज्यके
आगमनपर हमें रचनात्मक कार्यपर भर देना
अवश्य है। राष्ट्रवर्धक कार्यविधि यशस्वी
योजनाएँ तैयार हो रही हैं और उनकी
प्रतिक्रिया अरोभ्यवान् चिकित्सक प्रज्ञ
नौजवानोंको आवश्यकता है। अतः विद्यार्थियोंका
ध्यान ज्ञानके, विज्ञानके और जागतिक
प्रवृत्तियोंके विविध क्षेत्रोंमें पहुँच जाना चाहिये।
मुझे उम्मीद है कि समाजसेवा, बालअपराधी,
रेडियो, सिनेमा, इत्यादि विषयोंपर श्री. केदारनाथजी
श्रीधरास्वामी जो क्लबमाला प्रकट की है वह इस
कार्यकेलिये उपयुक्त होगी। धन्यवाद।



तरुणीय अपराध के कारण

ऊपर की जाँच हमें इस सत्यता को पहिचानने में मार्ग दर्शन करती है कि बच्चों की ये सभी जातियाँ जो अपराध के लिये जिम्मेदार हैं, किसी न किसी दोषित घर से आती हैं। अगर घर या बाहर के वातावरण से कुछ दोष हैं तो बच्चे की आवश्यकताओं और आवेगों पर उसका प्रभाव स्वाभाविक है। और वे अनैच्छिक धाराओं और अभ्यासात्मिक आवरणों में उसकी अभिव्यक्ति करते हैं। इसलिये बालक को अपराधी बनाने के लिए उनकी योग्यता और आत्मिक व्यक्तित्व पर वातावरण सबसे ज्यादा असर डालने का काम करता है।

वंशानुगत संस्कार और बाल अपराध

किसी भी दशा में वंशानुगत और वातावरणीय संस्कारों के अंशों का सम्मिश्रण हर एक सहायता के मूल्य को कठिन बना देता है। साइकिल चढ़ने ने इस समस्या पर काफी प्रकाश डाला है। अपराध और सबसे ऊपर बालकीय अपराध की उत्पत्ति में अन्तरिक दशा की अपेक्षा बाह्य अधिक कारण है जो साधारण तथा व्यवहारिक सुधारकों द्वारा पकड़ी जा सकती है। वह जोर देकर कहता है कि अपराधी पैदा नहीं होते, बल्कि बनाये जाते हैं और उन्हें बनाने के लिये पहले का पर्य्यण जिम्मेदार है। उसके अनुसार वंशानुगत संस्कार की अपेक्षा विशेष कर वातावरण वास्तविक और जिम्मेदार अंश है। इसलिए हम यह निरणय कर सकते हैं कि अपराध खुद वंशानुगत नहीं होता।

साधारण घरों के अपराधी

इस सम्बन्ध में मातापिताओं की बड़ी जिम्मेदारी है। तरुणीय अपराधी अपने बचपन के समय समान्यता अनादर तथा दुर्भाग्य परिस्थितियों के कारण, जैसे कि माता की मृत्यु और अपर माता की उस स्थान पर बदली, कुटुम्ब में अनावश्यक और अप्रिय बच्चा बन सकता है। वह अति रक्षित बच्चा भी बन सकता है, जिसका सुझौल विकास इस वास्तविकता से रोक दिया जाता है कि उसके माता-पिता उसे अनावश्यक स्वतन्त्रता की आज्ञा देने में जोखिम लेने से डरते हैं।

आमुख

यह पुस्तक अध्यापकों, अभिभावकों, स्कूलों के इन्सपेक्टरों, शिक्षा समितियों, तथा अन्य ऐसी सार्वजनिक संस्थाओं और व्यक्तियों के निमित्त लिखी गई है, जो बालकों के उचित पालन-पोषण और शिक्षण में रुचि रखते हैं।

जिन निबन्धों का संग्रह पुस्तक में किया गया है, वे पहले पहल एक लेखमाला के रूप में उदयपुर-विद्याभवन से निकलने वाली मासिक-पत्रिका 'बालहित' में प्रकाशित हुए थे। उसके बाद के लिखे हुए कुछ और लेख भी इस संग्रह में सम्मिलित किये गये हैं, जिनसे आशा है कि पुस्तक की उपादेयता में वृद्धि ही हुई है। समाज में बालक की स्थिति और स्थान का आधुनिक ढंग से परिचय कराने की दृष्टि से पुस्तक को अधिकाधिक उपयोगी और विश्वसनीय बनाने का लेखक ने पूरा प्रयत्न किया है।

कदाचित् प्रगतिशील शिक्षा प्रणाली के कार्य-न्यापार की अभिवृद्धि एवम् विकास के साथ साथ जनसाधारण ने शिक्षा के अप्रत्यक्ष साधनों की ओर भी ध्यान दिया है। अस्तु, जन-रुचि के पूर्यर्थ इस प्रकार के साहित्य की पर्याप्त रचना हुई है, जिसमें घर शिक्षा का एक आचारानु-गत (informal) साधन माना गया है। उत्तरोत्तर इस विषय पर अधिकाधिक साहित्य के निर्माण का क्रम चल रहा है, किन्तु खेद है कि घर और स्कूल के बाहर के शिक्षाप्रद वातावरण की ओर किञ्चित्-मात्र भी ध्यान नहीं दिया गया। इस विषय पर जो कुछ साहित्य उपलब्ध भी है, वह केवल अंग्रेजी भाषा में है। अतएव इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि भारतीय भाषाओं में भी ऐसे साहित्य का सृजन और निर्माण हो। प्रस्तुत पुस्तक इस उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में प्रयास भर है। आशा है इससे जनता की विशेषकर शिक्षकों और माता-पिताओं की तथा अन्य ऐसे व्यक्तियों की, जिन्हें समाज का हित अभीष्ट है, इस ओर रुचि जागृत होगी।

बालकों की सम्पूर्ण शिक्षा का उत्तरदायित्व विशेषतया अध्यापकों ही पर है। उन्हें उन सभी महत्वपूर्ण विषयों से अवगत होना चाहिये, जो शिक्षा के क्रमिक विकास के अंग हैं, और तभी वे अपने कर्तव्य का निर्वाह योग्यता तथा सफलतापूर्वक कर सकते हैं। जिन समस्याओं का विवेचन इस पुस्तक में किया गया है, उनका पूरा पूरा ज्ञान ट्रेनिंग कॉलेजों में शिक्षा लेने के लिये आने वाले शिक्षकों के अध्ययन का अंग होना चाहिये। माता-पिताओं के लिये भी यह ज्ञान लेना आवश्यक है कि उनके बच्चों की शिक्षा पर उस वातावरण का बड़ा प्रभाव पड़ता है, जिसका संसर्ग उन्हें प्राप्त है। यदि वे इस बात की इच्छा रखते हैं कि उनके बालकों का विकास एवम् संवर्धन समुचित ढंग से हो तो उन्हें उनके वातावरण में संशोधन और सुधार करते रहना चाहिये।

घर, स्कूल और राज्य के त्रैकोणिक उत्तरदायित्व तथा सहयोग की भावना के महत्व को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक लेख के अन्त में उनके कर्तव्यों का पृथक् पृथक् विवेचन किया गया है। कारण कि उन्हीं पर घर और स्कूल के बाहर बालक की शिक्षा निर्धारित करने का गुरुतर भार है।

वस इन थोड़े से शब्दों के साथ मैं इस पुस्तक की प्रस्तावना समाप्त करता हूँ और उन सभी सज्जनों का हृदय से आभार मानता हूँ, जिनके सदसहयोग का लाभ मुझे प्राप्त हुआ है। इस सम्बन्ध में मैं सबसे पहले उन बालकों का ऋणी हूँ, जिनको मैंने सड़कों पर घूमते हुए, बाग वगीचों की सैर करते हुए, परीक्षाघरों में परीक्षा देते हुए, खेल के मैदानों में खेलते हुए, सिनेमा देखते हुए, रेडियो सुनते हुए, पिकनिक या कैम्पों की मौज लेते हुए, सैर सपाटे करते हुए अथवा देश की राजनीतिक गतिविधि में आत्यन्तिक रस लेते हुए देखा, और उसने मुझे सोचने और क्रमशः यह पुस्तक प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी।

मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती कलादेवी का तथा उन मित्रों का भी, जिन्होंने मुझे इस पुस्तक को किसी भारतीय भाषा में ही प्रकाशित कराने के लिये उत्साहित किया तथा उनका जिन्होंने मेरे लेखों को अंग्रेजी से हिन्दी में भाषान्तरित किया, अनुग्रह मानता हूँ। विभिन्न व्यक्तियों द्वारा अनुवाद होने से पुस्तक में कुछ स्थानों पर भाषादोष रह गया है आशा है पाठक इसके लिये क्षमा करेंगे।

मैं श्री. विपिन विहारी बाजपेयी एम. ए.; सी. टी. साहित्यरत्न का आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे लेखों को पढ़कर उनके अनुवाद को देखने तथा भाषा-विषयक संशोधन आदि करने की कृपा की।

मैं श्री. प्रतापसिंह सुराणा, संयोजक, बालहित संपादक मण्डल; का भी आभारी हूँ जिन्होंने प्रूफ संशोधन करने का कष्ट किया।

बालहित का मैं विशेष रूप से आभार मानता हूँ कि उसमें प्रकाशित लेखों को पुस्तक में स्थान देने की स्वीकृति मुझे प्राप्त हुई।

अन्त में मैं माननीय श्री. बी. जी. खेर के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करता हूँ, जिन्होंने अवकाश न होते हुए भी समय निकाल कर इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखने का कष्ट उठाया। एतदर्थ वे मेरी श्रद्धा और धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है विद्यार्थी और अध्यापक समाज को इस पुस्तक से लाभ पहुँचेगा। पाठकों द्वारा पुस्तक के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार के दिये गये सत्परामर्शों का मैं स्वागत करूँगा; तथा तदनुसार आगामी संस्करण में संशोधन-परिवर्धन कर देने में मुझे प्रसन्नता ही होगी।

विद्याभवन,
उदयपुर
५-जुलाई, १९४८

}

केदारनाथ श्रीवास्तव

राष्ट्र के पुनर्निर्माण में भाग

देश स्वतंत्र हो गया है। राष्ट्र को स्वाधीनता-दिवस पर संदेश देते हुए पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था “यह भारतवर्ष, एशिया और संसार भर के लिए सौभाग्य का क्षण है। एक नया नक्षत्र—स्वतंत्रता का नया नक्षत्र—उदय हुआ है, एक नई आशा का संचार हुआ है और एक लम्बे समय से अनुभूत धारणा को मूर्त रूप प्राप्त हुआ है। ईश्वर करे यह नक्षत्र कभी अस्त न हो और यह आशा कभी खण्डित न हो।” डेढ़ सौ वर्ष से अधिक हुए अंग्रेजों ने भारत में जिस साम्राज्यवाद की नींव डाली थी, वह आज भूमिसात हो गया है और इस कारण १५ अगस्त का दिन संसार के इतिहास में एक ऐतिहासिक घटना मानी जायगी। अंग्रेजी शक्ति का यह विनाश अनेक भारतीयों की आशाओं से भी अधिक शीघ्र हो गया है। शीघ्र यह इसलिये हो सका है कि भारतवर्ष ने निद्रा और पराधीनता की शृङ्खलाओं को तोड़ फेंकने का दृढ़ संकल्प कर लिया था।

स्वाधीनता दिवस के अवसर पर हुए रेडियो भाषणों में पं० जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती सरोजिनी नायडू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद तथा देश के अन्य नेताओं ने देश के सामने उपस्थित कर्त्तव्यों पर प्रकाश डाला था। उन्होंने बताया था कि हमें सामाजिक न्याय पर आधारित एक जनतन्त्रात्मक समाज का निर्माण करना है। साथ ही हमारे अन्दर गरीबी, भूख, अज्ञान, ईर्ष्या, द्वेष आदि जो दुर्गुण घर कर गये हैं, उन्हें दूर करना है। हमारे नेताओं द्वारा दिये गये ऐसे ही अनेक संदेशों में इन्हीं बातों पर जोर देते हुए विस्तृत प्रकाश डाला गया है। हमें देखना है कि देशवासी इस आह्वान का किस प्रकार स्वागत करते हैं। जिस विद्यार्थी-समाज पर भविष्य के पुनर्निर्माण तथा पुनर्संग-



उन का भार है, उनको भी इस लक्ष्य की सिद्धि के लिये बहुत कुंछ करना है और इसके वास्ते जितने भी साधन प्राप्त हो सकें, उन्हें जुटा लेना है।

तरुण राष्ट्र के स्तम्भ हैं। उनकी विशाल दृष्टि और साहस पर देश का भविष्य निर्भर करता है। छात्रों में पर्याप्त शक्ति, उत्साह और राष्ट्र-सेवा की भावना है। राष्ट्रीय जीवन के पुनर्संस्थापन में इस दृष्टि से छात्रों का सहयोग बड़े महत्व का है।

ज्योंही देशके पुनर्संस्थापन में छात्रों के योग की चर्चा उठती है, सहज ही यह प्रश्न सामने आ जाता है कि छात्र राजनीति में भाग लें या नहीं। यह प्रश्न बड़े महत्व का है, इसलिये इसका अलग से विचार किया जाना ही उचित है। यहाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि देश-सेवा की उमंग में पड़कर कहीं छात्र प्रत्यक्ष और सक्रिय राजनीति के चक्कर में न पड़ जायँ। तब दूसरा प्रश्न यह उठता है कि आज जब हमें देश की स्वाधीनता प्राप्त हो गई है, विद्यार्थी राष्ट्र-निर्माण के कार्य में क्या हाथ बँटा सकता है।

दृढ़ चरित्र सम्पन्न तरुणों की भाँति

सब से पहली बात यह है कि विद्यार्थी अपने नैतिक चरित्र का मान ऊँचा उठावें और स्त्री जाति के प्रति अपनी दृष्टि और भावना शुद्ध रखें। उन्हें स्वयं पवित्र और निष्ठापूर्ण जीवन बिताना चाहिये और दूसरों के प्रति भी सदाशयता बरतनी चाहिये। उपन्यासों तथा सिनेमा-फिल्मों के द्वारा पश्चिमी सभ्यता का जो प्रभाव नई पौध पर पड़ा है, वह बड़ा हानिकार सिद्ध हुआ है। उनके कारण हमारे जीवन में छिछलापन और शिथिलता आ गई है।

आजकल पत्रों में स्कूलों और कालेजों के छात्रों द्वारा किन्हीं बालिकाओं से छेड़खानी करने के समाचारों का मिलना कोई असाधारण बात नहीं है। इस प्रकार की हरकतों की संख्या अधिक नहीं मिलेगी, किन्तु फिर भी बालिकाओं के प्रति इस प्रकार के अवांछित व्यवहार की समस्या बनी नहीं रहने दी जा सकती। आज समाज में काम की दृष्टि से जो कई दोष दिखाई देते हैं, वे काम-वृत्ति के सम्बन्ध में उचित शिक्षण



और मार्ग-दर्शन के द्वारा दूर किये जा सकते हैं। बालिकाओं को स्वयं भी चरित्र-बल और पवित्रता प्राप्त करनी चाहिये। ऐसा करने पर बालकों की कुचेष्टाएँ अपने आप बहुत हद तक कम हो जायँगी। मातृभूमि की सच्ची सेवा करने के लिये बहुत ऊँचे नैतिक-चरित्र सम्पन्न व्यक्तियों की आवश्यकता है।

स्वस्थ नागरिकों की भाँति

यह कहना गलत नहीं होगा कि यद्यपि घर और स्कूलों में बालकों के स्वास्थ्य का निर्माण होता है, फिर भी उनके स्वास्थ्य के अच्छे होने की परीक्षा और कसौटी इन दोनों के बाहर के क्षेत्र में समझी जानी चाहिये। आजकल धूम्र-पान छात्र-समाज में सामान्य बात हो गई है। मैंने स्कूलों में बहुत छोटी उम्र के बच्चों को भी इस आदत का शिकार हुआ पाया है। यह आदत अक्सर स्कूलों से ही सीखी जाती है। पहले तो बच्चे फैशन की तरह बीड़ी सिगरेट पीते हैं और फिर धीरे-धीरे उसके गुलाम हो जाते हैं। वेश्यागमन की आदत भी मुख्यतया कॉलेज के छात्रों में बढ़ती जा रही है। शराब पीने की आदत भी विद्यार्थियों में काफी मात्रा में पाई जायगी। होटल और रेस्तराँ में उन्हें इसके लिये आसानी से सुविधा मिल जाती है। इन सभी कुप्रवृत्तियों को जड़ से मिटाने की आवश्यकता है। तभी देश की शिक्षित जनता द्वारा देश-सेवा का काम ठीक-ठीक होना संभव है।

अनुशासित सैनिकों की भाँति

लगभग रोज ही ऐसी बातें सुनने को मिलती हैं कि कहीं कहीं छात्रों की किन्हीं पुलिस वालों से मुठभेड़ हो गई या किन्हीं विद्यार्थियों ने सिनेमा के प्रोप्रायटर्स से झगड़ा कर लिया या ऐसी ही और कोई उपाधि खड़ी करली। आज विद्यार्थियों में अनुशासन तो है ही नहीं, पर यह अच्छी तरह समझना चाहिये कि अनुशासन भारी कार्य-विधि की आधारशिला है। विद्यार्थियों को अपने घर, स्कूल और समाज सर्वत्र अनुशासन का पालन करना चाहिये। छात्रों के संगठनों को इस प्रश्न के महत्व को समझ कर उसकी ओर पूरा पूरा ध्यान देना चाहिये।



हिंदू-मुस्लिम-एकता बढ़ाने में

आज देश में जो हिन्दू-मुस्लिम-संघर्ष छिड़ा हुआ है, वह देश की उन्नति में बहुत बड़ी बाधा है। इस दोष के रहते स्वाधीन भारत में हमारा कोई भी प्रगतिवाचक कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। सम्पूर्ण शक्तियों को एकत्रित और संगठित कर गुण्डाशाही और उपद्रवों का दमन किया जाना चाहिये। यदि विद्यार्थी भी इस कार्य में हाथ बटाना चाहें—जैसा उन्हें करना भी चाहिये—तो उनका कर्तव्य है कि वे साम्प्रदायिकता को उभाड़ने के बजाय दूसरे सम्प्रदाय या दूसरे धर्म वालों के साथ सद्भाव और स्नेह के सम्बन्ध स्थापित करें। विद्यार्थी साम्प्रदायिक ऐक्य के इस प्रकार के प्रयत्न में किस प्रकार भाग ले सकते हैं, इसका विचार बाद में किया जायगा।

छुआछूत और जाति-पाँति के भेद-भाव को मिटाने में

यह प्रश्न भी बहुत महत्वपूर्ण है। छुआछूत भारतीय समाज के लिये अभिशाप है और हर-सुरत से उसका प्रतिरोध आवश्यक है। आजकल का प्रचलित जाति-पाँति का भेदभाव भी समाप्त होना चाहिये। इससे हानि ही हानि है; सबसे बड़ी हानि यह है कि यह वर्ग-भेद को प्रोत्साहन देता है। महात्मा गांधी इस भेद-भाव के निश्चित रूप से विरोधी हैं। वे केवल वर्ण को मानते हैं और वर्ण परम्परागत पेशा-विभाजन के द्योतक हैं और औद्योगिक शिक्षण के सहज प्रसार का साधन हैं। इन दोनों को दूर करने के काम में विद्यार्थियों को पूरा-पूरा भाग लेना चाहिये।

समाज-सेवा और पीड़ितों की सहायता

कोई भी राष्ट्रीय रचनात्मक कार्य मुख्यतया देश की ग्रामीण-जनता की आवश्यकताओं और हितों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये, क्योंकि देश की ६०% आवादी गाँवों में बसी हुई है। विद्यार्थियों को ग्रामोद्धार के काम में उत्साह के साथ भाग लेना चाहिये और अपनी योग्यता से मातृ-देश के सच्चे नागरिक बनने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। अपने देश के दुखियों को सहायता पहुँचाने का काम हाथ में लेकर छात्र देश की बड़ी सेवा कर सकते हैं। इस प्रकार के सेवा-कार्य में सामाजिक परिचय से लगा कर प्रत्यक्ष क्षेत्र-कार्य तक आ जाता है।



इस प्रकार के काम के द्वारा छात्रों की शिक्षा की व्यावहारिक भूमिका तैयार होगी और उनको जीवन की वास्तविकताओं से निकट परिचय प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। यह ठीक है कि वे अपने समय का कुछ अंश ही समाज-सेवा के निमित्त दे सकेंगे।

समाज-सुधारकों की भूमिका

स्कूलों और कॉलेजों में विद्यार्थी बिना कुछ अतिरिक्त समय और शक्ति लगाये समाज-सुधार का काफी काम कर सकते हैं। चूँकि इस काम का सम्बन्ध समाज में फैली कई कुरीतियों से होता है, इसलिये वे उनका निवारण कर समाज को गहरी मदद पहुँचा सकते हैं। नीचे कुछ ऐसी समाज-सुधारक प्रवृत्तियों का उल्लेख किया जा रहा है, जिन्हें छात्र और छात्राएँ दोनों आसानी से अपना सकते हैं:—

(१) बाल-विवाह की समाप्ति:—प्रत्येक बालक-बालिका को एक न एक दिन विवाह के प्रश्न का सामना करना पड़ता है। बाल-विवाह से पैदा होने वाली अनेक बुराइयाँ और कठिनाइयाँ हैं। इसके कारण पोषण-द्रव्यों की न्यूनता, स्तावयिक रोग, असामयिक बुढ़ापा आदि अनेक कठिनाइयाँ उठ खड़ी होती हैं, जो राष्ट्र के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिये अनिष्टकारक सिद्ध होती हैं। आर्थिक दृष्टि से भी तरुण पति अपने परिवार के पोषण में अपने आपको असमर्थ पाता है। बेकारी के कारण परिवार का पालन करने में असमर्थ सिद्ध होने पर जो कष्ट भुगतने पड़ते हैं, उनका विवरण देना अनावश्यक है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन बातों को ध्यान में रखते हुए बाल-विवाह की कुप्रथा का अन्त कर दिया जाय। विद्यार्थियों को साहस से काम लेना चाहिये और कम आयु में विवाह करने से मना कर देना चाहिये। माता-पिताओं की ओर से कठोर विरोध होते हुए भी इस बारे में छात्रों को वस्तुस्थिति को समझे रहना चाहिए। मेरा विश्वास है कि यदि छात्र-छात्रा दृढ़ता पूर्वक और आत्म-विश्वास के साथ चलें तो वे बिना किसी प्रकार की विशेष दुविधा के आसानी से अपने माता-पिता को अपने मत का बना सकेंगे। मैंने ऐसे कई भगड़ों को मजे में तसल्ली से हल होते देखा है।



(२) दहेज-प्रथा का अन्तः—दहेज प्रथा हमारे समाज का दूसरा कोढ़ है। विवाह आजकल दो हृदयों के पवित्र एकीकरण के स्थान पर धीरे-धीरे एक व्यावसायिकता का रूप लेता जा रहा है। जिस प्रकार युद्ध के पहले और बाद में चीजों के दाम बहुत बढ़ गये, उसी प्रकार दहेज की देन में भी वृद्धि हो गई है। दहेज की दर के बराबर बढ़ते रहने से विवाह की समस्या बड़ी जटिल हो गई है। जो माता-पिता दहेज में अच्छी रकम नहीं दे सकते हैं, उन्हें बड़ी-बड़ी उम्र तक अपनी कन्याओं को क्वारों ही रखना पड़ता है। यदि किसी प्रकार उन्होंने विवाह की व्यवस्था कर भी दी, तो अक्सर ये विवाह अशांतिमय ही रहते हैं। इसका परिणाम सामने है। दहेज-प्रथा के कारण देश की आन और स्त्री जाति के स्वाभिमान का अपमान हो रहा है। इस माने में भी छात्र-छात्राओं को पक्की इच्छा शक्ति के साथ माता-पिताओं के सामने दृढ़ता रखनी चाहिये। चूँकि इस मसले में आर्थिक हित भी शामिल है, इसलिये कभी-कभी माता-पिताओं की ओर से विरोध बहुत ही कटु हो जाता है। यहाँ तक कि कभी तो संबंध-विच्छेद की स्थिति तक पैदा हो जाती है। लेकिन कुछ भी हो, इस प्रथा को समाप्त कर देने के अतिरिक्त और कोई श्रेय का मार्ग नहीं है।

(३) पर्दा-प्रथा का अन्तः—यह भी समाज का एक अभिशाप है और तरुणों को चाहिए कि वे इसे दूर हटा फेंकें। बालक-बालिकाओं में शिक्षा के प्रसार के साथ पर्दा-प्रथा में बहुत शिथिलता आ गई है। युवकों को चाहिये कि वे अपनी पत्नियों पर पर्दा न लादें।

भारतीय भाषाओं के प्रेमियों की भाँति

दुर्भाग्यवश हमारे देश में राष्ट्र-भाषा का प्रश्न विवाद के चक्कर में पड़ गया है। छात्रों को भाषा सम्बन्धी थोड़े वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिए। देश के नेता हिन्दी या हिंदुस्तानी में से जिस किसी को राष्ट्र भाषा बतायें, छात्रों को उसी के प्रचार का प्रयत्न करना चाहिए। जहाँ कहीं वे जायँ, उन्हें अपने देश की भाषा में बात करनी चाहिये। इन गये दिनों में अंग्रेजी का जो आधिपत्य रहा है, उसे अब धीरे-धीरे समाप्त कर देना चाहिए। चाहे वे अपने मित्रों के साथ हों, चाहे गैरों के साथ, चाहे



वे घर में हों, चाहे स्कूल में या सड़क पर या सिनेमा में या स्टेशन पर, उन्हें अपने भावों और विचारों के आदान-प्रदान के लिए हर हालत में अपनी भाषा का ही प्रयोग करना चाहिए। स्वयं राष्ट्र-भाषा सीख कर और जानकर ही संतोष कर लेना भी ठीक न होगा। इसके विपरीत जितने लोगों को वे राष्ट्र-भाषा सिखा सकें, उतनों को सिखाने का उन्हें प्रयत्न करना चाहिए।

राष्ट्र-भाषा सीखने के यह माने नहीं हैं कि वे अपनी मातृ-भाषा को छोड़ दें, नहीं, उन्हें चाहिये कि अपने क्षेत्र की बोली को अपने यहाँ स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षा का माध्यम बनवाने का यत्न करें। कुछ कॉलेजों और विश्व-विद्यालयों ने अपने यहाँ मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की घोषणा की है, किंतु अभी तक यह निर्णय क्रियान्वित नहीं किया गया है। अब तक भी ऐसे लोगों का एक दल है, जो स्कूलों और कॉलेजों में अंग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम चलने देने का समर्थक है। यदि विद्यार्थी यह निश्चय कर लें कि वे अपनी मातृ-भाषा द्वारा ही पढ़ेंगे, लिखेंगे तो फिर दुनियाँ में ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो उन्हें एक ऐसी भाषा के प्रयोग के लिए बाध्य कर सके, जिसके प्रति उनके मन में कोई आस्था नहीं है।

घर, स्कूल और राज्य का दायित्व

आज जब हमारा देश स्वाधीन हो चुका है तो यह आवश्यक है कि हर साधन को देश की उन्नति के लिए काम में लाया जाय। घर, स्कूल और राज्य को, जो राष्ट्र के जीवन में मुख्य और विशेष स्थान रखते हैं, एक साथ समवेत प्रयत्न करके देश के उत्थान के लिये दत्तचित्त होना चाहिये। इस क्षेत्र में इनमें से हर एक को अपना-अपना फर्ज अदा करना है। भिन्न-भिन्न मामलों में कई तरह से इनको देश की सम्पन्नता बढ़ाने का काम करना है। यहाँ मैं मुख्यतया इसी बात पर विचार करना चाहता हूँ कि देश के पुनर्संज्ञा और पुनर्निर्माण के कार्य में अपनी रोज की पढ़ाई को चालू रखने के साथ-साथ यथा साधन भाग ले सकने की दृष्टि से घर, स्कूल और राज्य वालक बालिकाओं को किस रूप में मार्ग-दर्शन दे सकते हैं।

घर

राष्ट्र के शरीर-गठन में घर का वही स्थान है, जो मानव शरीर के गठन में एक परमाणु का। दूसरे शब्दों में देश के उत्थान का अर्थ है देश के एक-एक घर का उत्थान। यदि एक-एक करके घरों को सामूहिक प्रयत्न से सुधारने का उद्योग किया जाय तो देश की उन्नति होने में कोई विलम्ब न होगा। यदि परमाणुओं में निहित शक्ति का एक विस्फोट हिरोशिमा का नाश कर न कुछ समय में युद्ध का अन्त कर सका तो घरों में केन्द्रित परमाणु शक्ति क्या न कर सकेंगी ? फिर घर तो निर्जीव नहीं सजीव शक्ति का केन्द्र है। गरीबी, भूख, अज्ञान, ईर्ष्या, द्वेष, घुरा स्वास्थ्य, सामाजिक कुरीतियाँ आदि का अन्त घरों की विकेन्द्रित शक्ति के सामूहिक प्रयत्न से ही संभव है। अतः देश की सामान्य उन्नति में एक-एक घर के घरों के योग का बड़ा महत्व है और वे अपनी संतान को सही दिशा की ओर इंगित करके बड़ा काम कर सकते हैं।

देश के पुनर्निर्माण के काम में छात्रों द्वारा सम्भव योग के सम्बन्ध में ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसे ध्यान में रखते हुए अब यह बता-ऊँगा कि वे क्या साधन हैं, जिनके द्वारा घर बालकों को उक्त काम में प्रेरणा दे सकें :—

(१) बालकों के चरित्र-निर्माण में घर का प्रभाव सर्वोपरि है। घर शिक्षण की एक अनियमित संस्था है और इस कारण चरित्र-बल उत्पन्न करने में उससे बड़ी मदद मिल सकती है। पति-पत्नी, छोटे-बड़े और सम्बंधियों के आपसी सम्बंध शिक्षा की दृष्टि से उत्कृष्ट और अनुकरणीय होने चाहिये। माता-पिताओं को चाहिये कि वे अपने बालकों में काम वृत्ति के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण बनायें। विभिन्न दृष्टियों से सैकड़ों ऐसे तरीके हैं, जिनसे चरित्र-निर्माण का काम किया जा सकता है।

(२) घरों में बच्चों को नियमित व्यायाम की सुविधा दी जानी चाहिये तथा व्यायाम करने की आदत डालनी चाहिये। छात्रों के लिये सूर्य नमस्कार एक अच्छा व्यायाम माना जाता है। उससे सारे शरीर को कुछ मशक्कत मिल जाती है। उसके लिये अधिक जगह की जरूरत



भी नहीं होती और उसमें कुछ खर्च भी नहीं होता । धूम्रपान और शराबखोरी रोकना चाहिये और यदि आदत पड़ जाय तो उसे नियन्त्रित करने का प्रयत्न होना चाहिये । मैं कुछ ऐसे माता-पिताओं को जानता हूँ जो अपने बच्चों को काफी जेब खर्च देते हैं और फ़िज़ूल खर्च पर कोई नियन्त्रण नहीं रखते । अच्छा यह हो कि बच्चों को पैसा न दिया जाय और उनकी अधिकतर आवश्यकताओं को घर पर ही पूरा कर दिया जाय । क्योंकि इस उम्र में बच्चे खर्च की कला से विल्कुल अनभिज्ञ होते हैं । यह ठीक है कि ट्रेनिंग भी उपयोगी है, किन्तु समाज के सामान्य हित का ध्यान भी आवश्यक है । माता-पिता को यह भी देखना चाहिये कि उनके घर में रोज का भोजन स्वास्थ्यप्रद और संतुलित हो और व्यर्थ की कोरी सुस्वादु और चरपरी चीज़ों से परहेज किया जाय ।

(३) घर अनुशासन का केन्द्र है, जहाँ बालक को इसकी अच्छी ट्रेनिंग मिल सकती है । भली प्रकार अनुशासित घरों से ही भली प्रकार अनुशासित बालक निकल सकते हैं । जीवन के विविध प्रसंगों में संपर्क से इस तथ्य की सत्यता का बोध होता है । इससे भिन्न प्रकार के उदाहरण मुश्किल से मिलेंगे । इस दृष्टि से आवश्यक है कि प्रत्येक घर में बालकों में अच्छी आदतें डालने का प्रयत्न किया जाय ।

(४) इस समय को देखते हुए साम्प्रदायिक एकता का निर्वाह, लुआलूत का निरोध, जाति-पाँति का उच्छेदन आदि की ओर माता-पिताओं का सबसे अधिक ध्यान जाना चाहिये । जिन वृद्धों ने यावज्जीवन इन दोषों में जीवन बिताया है, उनकी मानसिक कठिनाइयों और मनोभावों को हम समझ सकते हैं । पर तो भी उन्हें इन दुर्बलताओं पर यथासाध्य विजय पाने का प्रयत्न करना चाहिये । यदि वे स्वयं यह न भी कर सकें तो कम से कम उन्हें अपने बच्चों को आधुनिक विचार-प्रवाह में चलने देना चाहिये । कई घरों में ऐसा हुआ भी है कि माता-पिता पक्के धर्म-विश्वासी और परम्परावादी बने रहे और नयी पौध बीसवीं सदी के समय-प्रवाह के अनुकूल, चलती रही और यह सब होते हुए भी नई और पुरानी पौध में कोई विरोध या असामंजस्य की बात पैदा नहीं हुई ।

(५) गाँवों और कस्बों में समाज-सेवा की ट्रेनिंग भी बहुत



महत्वपूर्ण है। यह ट्रेनिंग माता-पिताओं द्वारा बच्चों को कैसे दी जाय— यह एक स्वतन्त्र विषय है और इस पर अलग से प्रकाश डालना ही सम्भव होगा।

(६) बाल-विवाह और पर्दा-प्रथा हमारे समाज के दो ऐसे दोष हैं, जिन्होंने हमारे देश की स्त्री-जाति का बड़ा अहित किया है। यदि तरुण और तरुणी एक बार इस रोग को दूर करने का संकल्प कर लें तो पृथ्वी की कोई शक्ति उनकी राह नहीं रोक सकती। माता-पिताओं को अपनी संतान को इस प्रकार शिक्षित करना चाहिये कि वे बाल-विवाह के विरुद्ध हो जायँ और पर्दा-प्रथा का बहिष्कार कर दें। कभी-कभी कठिनाई यह उठ खड़ी होती है कि विवाह इतनी छोटी अवस्था में हो जाता है कि बालक अपनी ओर से कोई निर्णय कर सकने में समर्थ नहीं होता। इस तरह इन दोषों के परिहार का भार छात्रों की अपेक्षा माता-पिताओं पर ही अधिक है। पर्दा-प्रथा को हटाना कुछ कठिन नहीं है। शिक्षा, उचित मार्ग-दर्शन और भय की भावना को हटा देने से बहुत कुछ बात बन जायगी।

दहेज प्रथा एक ऐसी कुरीति है, जिसके हटाने के प्रश्न पर पिता और पुत्र के बीच रस्साकशी चल सकती है। इस कुरीति के निवारण में कुछ आर्थिक हानि हो सकती है। वास्तव में यह माता-पिताओं का स्वयं कर्तव्य है कि वे इसे समाप्त कर दें। लड़कियों के पिता को किसी न किसी तरह लड़की की शादी करनी पड़ती है। यह ऐसी बात नहीं है, जिसे अनिश्चित समय तक के लिए स्थगित रखा जाय। यदि माता-पिता अपने दायित्व को न समझें तो बालक-बालिकाओं के सामने एक ही मार्ग रह जाता है कि वे स्वयं दृढ़ता से काम लें। ऐसी बातें होने भी लगी हैं।

(७) माता पिताओं को यह विचार भी छोड़ देना चाहिये कि अँग्रेजी ही एक मात्र ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा उनके बच्चों की ठीक-ठीक शिक्षा-दीक्षा हो सकती है।

स्कूल

बालक के शिक्षण-क्षेत्र में अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण स्कूल



विशेष हित-साधक हो सकते हैं। स्कूल ऐसा केन्द्रीय स्थल बन जाना चाहिए, जहाँ से सुधार और पुनर्निर्माण का काम मार्ग-दर्शन और प्रेरणा पा सके। नीचे कुछ ऐसे तरीकों का उल्लेख किया जा रहा है, जिनके द्वारा बालक-बालिकाएँ अपने कर्तव्य का उचित भुगतान कर सकते हैं।

(१) जिस तरह की शारीरिक शिक्षा आजकल स्कूलों में दी जाती है, वह संतोषजनक नहीं है। वह पश्चिमी रंग में रँगी हुई है और कई प्रकार के व्यापक साधनों की अपेक्षा रखती है। सन्ध्या समय दल-खेल, फिजिकल ट्रेनिंग और ड्रिल के अतिरिक्त सवेरे भी कुछ व्यायाम की व्यवस्था रहनी चाहिये। घर वालों की लिखित प्रार्थना पर ऐसे छात्रों को जो घर पर व्यायाम करते हैं, स्कूल में व्यायाम से मुक्त कर दिया जाना चाहिये; क्योंकि अधिक व्यायाम करने से भी हानि की संभावना हो सकती है।

(२) स्कूल की और स्कूल की तमाम गति-विधियों की कसौटी यही है कि उनके द्वारा छात्रों का नैतिक चरित्र-बल कितना अच्छा हो सकता है और इसी दृष्टि से प्रत्येक कार्य का संयोजन भी होना चाहिए। ज्ञानात्मक, विधेयात्मक और प्रभावात्मक सभी प्रकार की आत्म-वृद्धता की भावना बालकों में उत्पन्न करना हमारा कर्त्तव्य है। ठीक-ठीक काम-शिक्षा, अच्छी आदतों का गठन, आत्म-वृत्तियों और भावों का परिष्करण कुछ मूल की उपयोगी और ध्यान देने योग्य बातें हैं।

(३) आत्मानुशासन की भावना को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से स्कूलों में स्वशासन का प्रयोग आरंभ करना चाहिये। साथ ही बड़ों के प्रति सम्मान की भावना के विकास पर भी उचित ध्यान देना आवश्यक है।

(४) स्कूल ऐसा स्थान है, जहाँ भिन्न-भिन्न मत, भिन्न-भिन्न वर्ग और समूहों के बालक एकत्र होते हैं। विविध समाज और धर्मों का वहाँ प्रतिनिधित्व रहता है। स्कूल समाज का एक सूक्ष्म संस्करण सा है। ऐसी अवस्था में इस बात का पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिये कि साम्प्रदायिक विद्वेष, छुआछूत तथा जात-पाँत का भेद-भाव वहाँ न



फैलाने पावे। कई प्रगतिशील स्कूल इस माने में अच्छा काम कर रहे हैं। ऐसे स्कूल से निकलने वाले हर छात्र और छात्रा को एक मिशन की भाँति इस काम को उठा लेना चाहिये।

(५) अब स्कूलों में समाज-सेवा के काम को अधिक महत्व मिलता जा रहा है। समाज-सेवा का किस प्रकार का काम स्कूलों में किया जा सकता है, इस सम्बन्ध में अलग विचार किया जायगा।

(६) बाल-विवाह, दहेज-प्रथा और पर्दा-प्रथा जैसे दोषों को मिटाने में स्कूलों के द्वारा कोई सीधा काम नहीं किया जा सकता। किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से सुधार की प्रेरणा भूमि की तरह स्कूल इन दोषों के परिहार में बहुत कुछ योग दे सकते हैं। छात्रों में इस विषय की अन्तर्दृष्टि उत्पन्न कर उनके विचारों में उत्क्रान्ति लाई जा सकती है, इस प्रकार के सुधारों के लिये उत्साह उत्पन्न किया जा सकता है और वास्तविक जीवन में विरोध का मुकाबला करने की ताकत उत्पन्न की जा सकती है।

(७) स्कूलों और कॉलेजों में अब अविलम्ब शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को बना दिया जाना चाहिये। यदि वे अपना कर्तव्य करने में देरदार करेंगे तो समय अपना काम करेगा। उन्हें छात्रों की साहित्य-मजलिसों को अपनी भाषा के कार्यक्रम रखने के लिये उत्साहित करना चाहिये। विवाद-प्रतियोगिताएँ, भाषण आदि देश-भाषाओं में आयोजित कर बालकों में देशभाषाओं के प्रति निष्ठा उत्पन्न की जानी चाहिये। इस प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ अन्तर्प्रान्तीय या अन्तर्प्रदेशीय रूप में भी आयोजित की जानी चाहिये, जिससे राष्ट्र भाषा को बल मिले।

राज्य

जब देश में जनता की और जनता के लिये हुक्मत हो तो उसके द्वारा राष्ट्र की महत्वाकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व होना चाहिये। ऐसी हुक्मत के द्वारा जनता की आवाज सामने आनी चाहिये। सौभाग्य से आज हमारे देश में ऐसी ही स्थिति है। ऐसी हुक्मत के आधीन राष्ट्र-व्यापी आधार पर भी यदि कोई समाज सुधार का काम प्रारम्भ किया



जाय तो किन्हीं विशेष कठिनाइयों के उत्पन्न होने की कोई सम्भावना नहीं है ।

विद्यार्थी-समाज के कर्तव्य और क्षेत्र के बारे में जो चर्चा ऊपर हुई है, उसमें बाधक बनने वाली अधिकांश विषमताएँ राज्य के उचित योग और ध्यान देने से आसानी से दूर हो सकती हैं । राज्य को इस सम्बन्ध में अपनी सही नीति, राय और निर्देशन देना चाहिये । ऊपर लिखी हर बात में राज्य द्वारा विद्यार्थियों की गतिविधि में सहायता मिलनी चाहिए ।

समाहार

जैसा कि हमने प्रारम्भ में कहा विद्यार्थियों का राष्ट्र के पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण भाग होना चाहिये । हम आशा करें कि देश के नवयुवक और युवतियाँ देश के भविष्य को आत्म-विश्वास के साथ आगे ले चलेंगे और बद्ध-परिकर होकर राष्ट्र के सामने प्रस्तुत समस्याओं के समाधान में जुट पड़ेंगे ।

राजनीति में भाग

विद्यार्थियों के राजनीति में भाग लेने के प्रश्न पर विचार आज जितने उलझे हुए हैं शायद ही उतने किसी दूसरे विषय के सम्बन्ध में हों। जब हम छात्रों के राजनीति में भाग लेने की बात कहते हैं, तो हम साधारणतया दो प्रकार के भागों का भेद करते हैं— एक तो साधारणकाल में और दूसरा असाधारण अवसर पर। इन विभागों को उचित रीति से समझ लेने के बाद ही प्रश्न का सन्तोष-जनक उत्तर मिल सकता है। यह कह देना कि छात्रों को राजनीति में भाग न लेना चाहिए उतना ही गलत है जितना कि उन्हें राजनीति में भाग लेना चाहिए, यह कहना। कुछ राजनैतिक कार्य ऐसे हो सकते हैं कि जिनमें उन्हें भाग लेना चाहिए और दूसरे ऐसे हैं जिनमें नहीं। इसी तरह किन्हीं प्रकार के राजनैतिक कार्य साधारण काल में किये जा सकते हैं, जब कि कुछ कार्य केवल असाधारण अवसर पर ही संभव हैं।

इस धुँधलेपन के लिये अधिकतर राजनीतिज्ञ ही जिम्मेदार हैं। सामान्य काल में वे छात्रों को अपना ध्यान पढ़ाई में केन्द्रित करने तथा अपने आप को भविष्य के लिए अधिक योग्य बनाने पर व्याख्यान झाड़ा करते हैं। जब राजनैतिक नेतागण शिक्षण-संस्थाओं में पधारते हैं, तो छात्र-समाज प्रायः उनसे इस पेचीदा प्रश्न पर प्रकाश डालने के लिये कहते हैं और जो उत्तर मिलता है वह सदैव सक्रिय राजनैतिक भाग लेने के विरोध में होता है। स्कूलों को वे हमेशा विद्या का केन्द्र कहते हैं, जहाँ बालक भावी नागरिक-कर्त्तव्यों के लिये तैयारी प्राप्त करते हैं। प्रायः सारे ही शिक्षक इस सिद्धान्त का प्रवचन करते हैं, और प्रत्येक समझदार व्यक्ति का भी यही विचार होगा। संक्षेप में सब लोग शिक्षा को जीवन का ज्ञान-प्रधान एवं भाव-प्रधान पहलू मानते हैं।



कार्य-प्रधानता को जगह है, लेकिन वह तब जबकि छात्र वास्तविक दुनिया में पदार्पण करता है लेकिन जब कभी राजनीतिज्ञ को स्वेच्छित कार्य-कर्त्ताओं की जरूरत पड़ती है तो वह अपनी दृष्टि छात्रों की ओर दौड़ाता है और उनके मनोवेगों को स्पर्श करने लगता है। वह छात्रों के राजनीति में भाग न लेने के मशविरे को भूल जाता है और अपनी प्राणपण चेष्टा से नौजवान कार्यकर्त्ताओं की एक फौज संगठित करता है। यहाँ मैं दो यथार्थ उदाहरण पेश कर देना चाहूँगा। उनमें से एक तो नवाबजादा लियाक़त अलीखाँ का अर्लींगट विश्व-विद्यालय में दिया गया भाषण है। उनकी पुकार कुछ श्रोताओं तक ही सीमित न होकर हिन्दुस्तान भर के मुसलमान छात्रों के लिये थी। उन्होंने कहा “मैं चाहता हूँ कि मुस्लिम विश्वविद्यालय के ही नहीं किन्तु सारे हिन्दुस्तान के मुसलमान छात्र इस मामले पर अपना हिस्सा बहादुरी और इज्जत के साथ अदा करें, जिसका मतलब होगा आजादी या गुलामी। मैंने पहले कहा था और इसी तरह कायदे आजम ने भी कि छात्रों को अपनी पढ़ाई का मूल्य चुका कर कभी राजनीति में भाग न लेना चाहिए। लेकिन क्रौम के जीवन में एक ऐसा वक्त आता है, जब कि दूसरी सारी चेष्टायें उस बड़े प्रश्न के आधिपत्य में छोड़ देनी होती हैं और वह प्रश्न है मुस्लिम भारत की आजादी। मैं हिन्दुस्तान के सारे मुसलमान छात्रों को आगामी आम चुनावों में सहायता करने को कहता हूँ। आप अपने स्कूलों और कालिजों के बाहर आजायँ, चाहे फिर एक साल जाय या रहे इसका कोई महत्व नहीं। आइये और मुस्लिम लीग का समर्थन कीजिये। “ इस किस्म की दूसरी मिसाल हमें महात्मा गांधी से मिलती है जब उन्होंने सन् १९२० में असहयोग आन्दोलन के आरम्भ में छात्रों का आह्वान किया था, पढ़ाई स्थगित करके पूरे समय राष्ट्रीय कार्य करने और कारागार का सामना करने के लिये। पहले वाला आह्वान छात्रों के चुनावों में प्रचार कार्य करने के लिये था और दूसरा था उस समय सहयोग के लिये जब कि सारा राष्ट्र स्वतंत्रता-संग्राम में निमग्न था। यह स्पष्ट है कि क्रान्ति अथवा युद्ध के ज़माने में छात्र अपने को समाज के अन्य विभागों से अधिक तटस्थ नहीं रख सकते। ऐसे समय में छात्रों के भाग लेने का अर्थ होता है कुछ काल के लिये पढ़ाई का वन्द हो जाना। नवाबजादा का यह



कहना सही था कि यूरोप के छात्र अपने अध्ययन कार्य को स्थगित करके लड़ाई में गोलियों का सामना करने गये थे। अपने छात्रों से देश ऐसी ही आशाएँ कर सकता है, जब वह जीवन और मृत्यु के संघर्ष में जुटा हुआ हो। लेकिन ऐसे कार्यों को करने के लिये कोई बाहरी प्रलोभन या लालच नहीं होना चाहिए। देश के प्रति अपने मार्ग को चुनने की छात्रों को स्वतंत्रता होनी चाहिये। यदि कोई छात्र अपनी पढ़ाई को स्थगित करके सक्रिय राजनीति की ओर प्रेरित होता है, तो मेरी राय में ऐसे छात्र को न रोकना ही संभव है और न यह उचित ही है। लेकिन वह होना चाहिए राष्ट्रीय आन्दोलन ही, न कि कोई सामयिक प्रचार कार्य। ऐसे कामों के लिये तो हम प्रौढ़ लोग काफी हैं। सब तरह के निर्णय भाग लेने वालों को स्वयं ही करने चाहिए। यदि छात्र यह महसूस करते हों कि संघर्ष देश के लिए मृत्यु या जीवन का प्रश्न है तो उन्हें अपनी पढ़ाई वन्द करके देश के नेताओं के आह्वान का उत्तर देने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिये। प्रत्येक व्यक्तिगत हालत में यह एक संघर्ष होगा—छात्र के उत्साह तथा पालक के स्वार्थों के बीच में। एक बार स्वतंत्रता मिल जाने पर दो विरोधी शक्तियाँ प्रायः बराबर हो जाँयगी और केवल कुछ ही लोगों के लिये एक साल खोना संभव होगा जैसा कि नवाबजादा साहब ने हिन्दुस्तानी मुस्लिम छात्रों को करने के लिये कहा था।

वास्तविक कठिनाई तब आती है जब कि छात्रों को स्कूलों में रहते हुए राजनीति में भाग लेने को कहा जाता है। स्पष्ट इसका परिणाम होता है छात्रों का पढ़ाई से हट जाना और यदि इस प्रकार का सहयोग आम और मामूली बात हो जाता है तो इससे स्कूल का कार्य बहुत अधिक सीमा तक बिगड़ जाता है। अतः यह साफ और जरूरी नियम है कि कोई छात्र ऐसे राजनैतिक कामों में न पड़े जिनमें इतना समय तथा शक्ति व्यय हो कि उसके मामूली काम में हस्तक्षेप होने लगे। राजनीति की किस्में विभिन्न रूप ले सकती हैं। यहाँ मुझे अपने छात्र जीवन का एक अनुभव याद आ रहा है, जब कि कालेज के अधिकारियों ने हमें कानपुर के म्यूनिसिपल चुनाव में खड़े होने वाले उम्मीदवार के पक्ष में कार्य करने के लिए कहा था। हाल ही का उदाहरण है, संयुक्त प्रांत की एक महत्वपूर्ण शिक्षण संस्था के करीब ४०० छात्रों ने मुस्लिम



लीग की ओर से मेरठ के चुनाव क्षेत्र में काम किया था। यह भी कहा जाता है कि इस कार्य के लिए छात्रों को महीनों तक शिक्षण और अभ्यास कराया गया। इस प्रकार के कार्यों द्वारा, जिनमें इतना अधिक समय एवं शक्ति व्यय हुई, पढ़ाई में जो हानि उठानी पड़ी, उस पर मैं कुछ नहीं कहना चाहता। यदि हम यह सत्य स्वीकार कर लें कि छात्रों को जब वे स्कूलों में पढ़ भी रहे हों, राजनीति में हिस्सा नहीं लेना चाहिए, तो उनको देश के राजनैतिक दलों में सम्मिलित होना तथा उनकी रोजमर्रा की सभाओं में भाग लेना करीब २ निषिद्ध ही हो जायगा। लेकिन किन्हीं अवसरों पर प्रदर्शनों, जुलूसों तथा सभाओं में भाग लेने की उन्हें पूरी इजाजत होनी चाहिए। प्रायः कहा जाता है कि इस किस्म का भाग लेना भी राजनैतिक कटुता को कच्चा में उत्तन्न कर देने का कारण होता है। मेरी समझ में यह उचित दलील नहीं है। छात्रों को हम विभिन्न मत रखने से रोक नहीं सकते। अपने विचारों को रखते हुए दूसरों के विचारों के प्रति सहनशीलता उन बातों में से एक है जो हमें स्कूल में सीखनी होती है। यदि छात्र अपने राजनैतिक उत्साह को प्रकट करने के लिये उचित मार्ग ढूँढ लेने में समर्थ हों तो यह उन्हें अपने विरोधी विचार रखने वालों के प्रति और भी अधिक सहनशील बनायेगा।

छात्रों की राजनैतिक प्रवृत्तियाँ

छात्रों के राजनीति में भाग लेने की सम्पूर्ण समस्या पर तर्क-वितर्क कर लेने के पश्चात् उन राजनैतिक चेष्टाओं पर विचार कर लेना उपयुक्त होगा जिनमें छात्र साधारणतया सम्मिलित होते हैं। इन चेष्टाओं के पक्ष और विपक्ष पर ध्यान देना होगा।

१. क्या छात्र राजनैतिक दलों में सम्मिलित हों ?

पहले कहा जा चुका है कि किसी राजनैतिक दल का स्थायी सदस्य होना छात्रों का काम नहीं है, विशेष कर जब कि वे स्कूल में पढ़ रहे हों। अपने देश की शीघ्रातिशीघ्र स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये छात्रों की अपेक्षा हम पहली पीढ़ी के लोग कहीं अधिक उत्तरदायी हैं। छात्र-समाज को अपनी शक्ति का रोजमर्रा की राजनीति में अपव्यय न करके

शिक्षणोत्तर काल के लिये संग्रह करना चाहिए। शिक्षण का अर्थ भावी नागरिकता के लिये तैयारी होना चाहिए। छात्र राजनैतिक दलों के सदस्य बन कर नियमित रूप से उनकी सभाओं में भाग लें इसके पढ़ाई से भेद के प्रश्न पर बहुत कुछ कहा जा चुका है; हाल ही में कलकत्ता के प्रमुख काँग्रेस नेता किरणशरण राय ने छात्रों को काँग्रेस में सम्मिलित होने के लिये अपने वक्तव्य में कहा "मैं अपने छात्र-मित्रों से अभ्यर्थना करता हूँ कि वे लोग काँग्रेस में सम्मिलित होकर उसे मजबूत बनायें और अन्तिम संघर्ष के लिए प्रस्तुत रहें।" शायद कोई भी व्यक्ति ऐसे वक्तव्यों को उचित न कहेगा।

२. क्रान्तिकारी राजनीति में भाग

पूर्व विवेचनों में स्पष्ट हो चुका है कि छात्रों के जनता के किसी संघर्ष को जन्म अथवा मृत्यु का निर्णायक प्रश्न मान लेने पर उन्हें अपने अध्ययन को स्थगित करके अपने नेताओं के आह्वान का प्रत्युत्तर देने की स्वीकृति मिलनी ही चाहिए। परन्तु ध्यान रहे कि यह आत्म-प्रेरित हो, किसी बाहरी दबाव या लालच का परिणाम नहीं।

३. रोजमर्रा की राजनीति में भाग (चुनाव आदि)

इस प्रकार के भाग के विरोध में एक वाजिव दलील है—पढ़ाई में पिछड़ जाना। उन सम्पूर्ण चेष्टाओं को, जिनमें समय तथा शक्ति का अत्यधिक व्यय हो, प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिये। अधिकारियों को चाहिए कि वे छात्रों से इस सम्बन्ध में न कोई अपील ही करें न उनके लिए इस कारण कोई सुविधा ही जुटावें।

४. प्रदर्शन तथा जुलूस

इस तरह की सामयिक प्रवृत्तियों को जगह मिलनी चाहिए। ये राजनैतिक उत्साह के लिए मार्ग प्रदान करती हैं। इन प्रवृत्तियों को संगठित करने के लिए मिली हुई स्वतंत्रता मनोवैज्ञानिक वस्तु है। देश-प्रेम पोगण्ड बालक-बालिकाओं में विशेषकर के प्रकृतिगत होता है। सरकार अथवा स्कूल द्वारा इसमें बाधाएँ डालना अवांछनीय है, क्योंकि इनसे विरोध और भी तीव्र होता है। इन बाधाओं से उत्पन्न परिणाम पर मैं

कहीं अन्यत्र विचार कलङ्गा और खास करके उन बाधाओं पर जिन्हें पुलिस ने पैदा किया है। यहाँ तो हमारा प्राथमिक कार्य इतना ही है कि छात्र क्या करें। देश तथा पवित्र अतीत की दिव्य एवं प्रेरणात्मक विधि के नाम पर होने वाली गलत घटनाओं को रोकने के लिये यह आवश्यक है कि ये प्रवृत्तियों के आदर्श संयम से संचालित हो अत्यन्त उत्तेजक परिस्थितियों में भी छात्र हिन्दुस्तान की अभिलाषा, गौरव और कीर्ति के संरक्षक हैं। वे अपने स्वयं के तथा देश के भाग्य-विधाता हैं। गौरव, अनुशासन, तथा आत्मसंयम उनके मूलमंत्र होने चाहिए। राष्ट्र के स्वप्नों को सत्य सिद्ध करने की उन पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। आत्म-संयम उनका स्वतंत्रता की ओर पहला कदम होगा। उन्हें प्रतिकार एवं प्रतिशोध की भावनाओं के प्रति सावधान रहना होगा। हमें ऐसी बातें देख कर खेद होता है कि अलीगढ़ विश्व-विद्यालय के छात्रों ने रेल के स्टेशन पर प्रदर्शन करते हुए अपने संयम को खो दिया और कांग्रेस के सभापति मौलाना अबुलकलाम आज़ाद के प्रति अपमानजनक नारे लगाये। ऐसी घटनायें अत्यन्त निन्दनीय हैं। यह उत्तम है कि भारतीय छात्रों के साहस तथा धैर्य में वृद्धि हुई है, परन्तु अनुशासन के बिना ये बिलकुल व्यर्थ हैं। इनके साथ ही उत्तरदायी नेतृत्व की सलाह के प्रति आदर होना भी आवश्यक है। उन्हें चाहिए कि प्रदर्शन आदि करने के पूर्व वे किसी स्थान पर उपस्थित अनुभवी नेता से परामर्श कर लें। यदि वे अपने नेताओं की आज्ञा का पालन करना सीखेंगे तो संसार में पदार्पण करने पर वे आज्ञा देना भी सीख सकेंगे। किसी भी सेना की शक्ति उसका अनुशासन है और हिन्दुस्तान को अनुशासित कार्यकर्त्ताओं की सेना की बड़ी जरूरत है।

५. सभायें और प्रस्ताव

मैं नहीं देख पाता कि छात्र प्रस्ताव स्वीकार करके क्या वास्तविक योग दे पाते हैं। उनकी यह राजनीति अधिकतर अनुकरणमात्र तथा निरर्थक होगी। परन्तु वे यदि दिखावटी राजनीति ग्रहण करना चाहें तो उन्हें इसकी आज्ञा दी होनी चाहिए; परिणाम होगा कांग्रेस अथवा मुस्लिम-लीग की देखा-देखी प्रस्ताव स्वीकार करना। इसके बजाय तो उन्हें अपने क्षेत्र में वास्तविक राजनैतिक कार्य की गुंजाइश होनी चाहिए



६. कक्षाओं से पृथक् रहना

कक्षाओं से पृथक्ता या हड़ताल के सम्बन्ध में भी उपरोक्त सिद्धान्त सही मालूम होगा। स्कूल के अधिकारियों से मतभेद होने की परिस्थिति में हड़ताल का प्रयोग करने या न करने का प्रश्न हमारे वर्तमान विचार की परिधि से बाहर है। परन्तु सरकार के खिलाफ रोष या अपनी संवेदना प्रदर्शन का यह तरीका अवश्य व्यर्थ है। यदि किसी मिल के श्रमजीवी हड़ताल की घोषणा करते हैं तो दूसरी श्रेणी को बहुत हानि उठानी पड़ती है; व्यापार अस्तव्यस्त हो जाता है और संचालकों को भीषण क्षति पहुँचती है। किन्तु यदि छात्र एक या कई दिन गैरहाजिर रहें तो कोई फायदा नहीं होता और निश्चय ही पढ़ाई में अत्यधिक क्षति होती है।

७. बहिष्कार

बहिष्कार आजकल की साधारण घटना हो चली है। छात्र स्कूल तथा कॉलेजों की आयोजित सभाओं में किसी विरोधी मत के प्रमुख सदस्य का भाषण होने के कारण उन सभाओं का बहिष्कार करते हैं। ऐसी घटनाओं को खोजना कठिन नहीं है। छात्र दूसरे शब्दों में राजनैतिक मतभेद की कटुता को इस प्रकार स्कूल में ले आते हैं। अन्य लोगों के विचारों के प्रति सहनशील रहने की योग्यता एक महान् सक्क है, जिसे हम स्कूल में सीखते हैं। स्कूल की सारी प्रवृत्तियाँ साम्प्रदायिक घृणा से मुक्त रहनी चाहिए। सभाओं का बहिष्कार तथा रोष के अन्य कार्य वर्तमान अवस्था में अधिक सहायक नहीं हैं। मैं तो और भी आगे जाऊँगा और कहूँगा कि छात्रों को स्वयं ही विरोधी विचारों के वक्ताओं को स्कूल के मंच से विचार प्रगट करने के लिये आमंत्रित करना चाहिए। ऐसे भाषण दो विरोधी विचारों की तुलना तथा मूल्य परखने का अपूर्व अवसर प्रदान करते हैं। एक हिन्दू पक्षपाती छात्र को किसी पाकिस्तान के समर्थक का और कांग्रेसवादी को किसी अंग्रेज साम्राज्यवादी के विचार सुनने चाहिए। महात्मा गांधी कभी मि० जिन्ना या वायसराय से मिलने से इन्कार नहीं करते थे न वे उनकी मुलाकातों से ऊँचे ही थे। पक्षपात रहित विचार, निष्पक्ष निर्णय, समता आदि

ऐसी ही मुलाकातों से उत्पन्न होते हैं । एक बात का उल्लेख विशेष आवश्यक है । किसी प्रवृत्ति का वहिष्कार, स्कूल के किसी आमंत्रित व्यक्ति के प्रति असम्य व्यवहार से कहीं अधिक अच्छा है । कहा जाता है कि कुछ वर्षों पहले किसी कांग्रेस पदाधिकारी के साथ मार-पीट हुई, जब वह एक छात्र-संघ की सभा में भाषण कर चुके थे । मार-पीट का कारण विचारों में मतभेद था, छात्रों की ओर से इस प्रकार के वर्ताव को कोई भी ठीक नहीं कहेगा ।

८. 'दिवस' मनाना

राजनैतिक दलों का अनुकरण करने में छात्र अक्सर कुछ 'दिवसों' का आयोजन करते हैं और उन्हें मनाते हैं । जो कुछ प्रदर्शन अथवा जुलूस के विषय में कहा गया है, वही यहाँ भी लागू होता है ।

९. छात्रों के संगठन

इन पिछले सालों में देश भर में कुछ छात्र-संगठन खड़े हो गये हैं । इन अखिल भारतीय छात्र संगठनों के कार्यों से मैं विशेष परिचित नहीं हूँ । विभिन्न प्रान्तों तथा शिक्षण संस्थाओं में पारस्परिक सम्पर्क बढ़ाने की सीमा तक तो वे एक उपयोगी कार्य करते हैं । लेकिन मैं नहीं समझता हूँ कि वे राजनीति में भी भाग ले सकते हैं या उन्हें लेना चाहिए । इन नेताओं के अस्थायी होने के कारण उनकी राजनीति अधिकतर अनुकरण की तथा निरर्थक होती है । प्रायः दिखावटी नेतागिरी और सस्ती प्रसिद्धि प्राप्त करने के अवसर ही प्रबल शक्तियाँ होती हैं । फिर भी ऐसे संगठनों के रास्ते में कानूनी या अन्य बाधाएँ खड़ी करना वांछनीय न होगा क्योंकि उनका परिणाम केवल विरोध को अधिक उत्तेजित करना ही होता है । छात्र संगठनों को अपने क्षेत्र में वास्तविक राजनैतिक कार्य करने के लिए पूरी गुंजाइश मिलनी चाहिए ।

१०. घर, स्कूल और सरकार की जिम्मेदारी

इन तीन शक्तियों की जो छात्र के जीवन का निर्माण करती हैं तथा उस पर प्रभुत्व रखती हैं कुछ निश्चित जिम्मेदारियाँ तथा कर्तव्य हैं । इनमें श्रम का विभाजन है और प्रत्येक श्रेणी पर एक विशेष उत्तरदायित्व



है । घर को छात्रों की प्रवृत्तियों का निर्देशन तथा नियंत्रण करना होगा । स्कूल को शक्ति का संचालन उचित स्रोत में करना होगा, जिसके बिना सारी चेष्टायें व्यर्थ हो सकती हैं और सरकार का कर्तव्य होगा— नियम तथा व्यवस्था को कायम रखना, विशेष कर जब कि छात्र कार्य क्षेत्र में प्रवृत्त हों । इन नियंत्रित शक्तियों में से प्रत्येक पर एक-एक करके आगे विचार होगा ।

घर

जैसा कि कहा गया है, घर का कार्य है—छात्र की प्रवृत्तियों का नियंत्रण एवं निर्देशन । पालक, शिक्षक या पुलिस की अपेक्षा छात्रों का निर्देशन करने के लिये अधिक अन्धी स्थिति में है । यह क्यों ? कारण यह है कि बालक का निर्देशन हृदय से होता है, नेता का मस्तिष्क से तथा पुलिस का हाथों से । शिक्षक की पहुँच मनोवैज्ञानिक होती है और इन चारों प्रकार के दृष्टिकोणों का अन्तर ही इस बात का स्पष्टीकरण करता है कि नवयुवक छात्रों के निर्देशन की जिम्मेदारी अधिकतर पालक ही पर क्यों है ? उनके कहने में स्नेह का तत्व है, जिसका प्रभाव सर्व साधारण छात्रों पर होता है । उनके परामर्श से स्थानापन्न नेताओं तथा सरकार के कार्यकर्त्ताओं की अपेक्षा छात्रों से अधिक कार्यशीलता की आशा की जा सकती है ।

किसी भी बालक के लिए उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखे बिना मेरे दृष्टिकोण को समझ सकना संभव न होगा । प्रथम तो उन्हें राजनैतिक प्रवृत्तियों की किस्मों को समझना होगा, जिनमें छात्रों को भाग लेने दिया जा सकता है अथवा नहीं । पालक के हस्तक्षेप का प्रधान कारण तो पढ़ाई में बाधा है । वे अपने लड़के-लड़कियों को शिक्षण के लिये भेजते हैं और जब उनके इस उद्देश्य को क्षति पहुँचती है तो उनका इस तरफ ध्यान आकर्षित होना या हस्तक्षेप करना अनिवार्य हो जाता है । प्रत्येक दशा में छात्र के उत्साह तथा बालक के स्वार्थ में द्वन्द्व छिड़ जाता है । छात्रों की उत्साहजन्य लम्बी हड़तालों की स्थिति में पालक का एक विशेष कार्य होजाता है । ऐसी दशा में उन्हें अपने संरक्षितों (wards) को स्पष्ट-तया कह देना चाहिये कि वे गलत मार्ग की ओर अग्रसर हैं और न तो इसमें देश का, न उनका ही



कोई लाभ है। यह कई बार हुआ है कि हड़ताल की स्थिति में स्कूल के अधिकारियों ने उनके संरक्षितों को ठीक राह पर ले आने के लिये पालकों के हस्तक्षेप की अपेक्षा की है। इस सम्बन्ध में व्यक्तिगत रूप से पत्र भी भेजे गये हैं, परन्तु यह खेद-जनक है कि पालकों की ओर से प्रत्युत्तर सदा न्यून ही रहा। स्पष्ट ही पालकों के अपने हस्तक्षेप के उपयुक्त मूल्य को समझ लेने से बहुतसारी बुराइयाँ दूर हो जायँगी। यही नहीं, प्रत्युत आरम्भ उनकी ओर से होना चाहिये और उन्हें शिक्षकों से मिल कर कठिनाई हल करने का कोई रास्ता निकालना चाहिये। यह बात हुई छात्रों के पढ़ते रह कर सक्रिय राजनीति में भाग लेने के सम्बन्ध में। शान्तिमय प्रदर्शनों और जुलूसों में छात्रों का अधिक समय व्यय नहीं होता। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानसिक शुद्धि के लिये यह उपयोगी है और शान्तिमय तथा अहिंसक होने की हालत में हमारे लिये चिन्ताजनक भी नहीं है। पालकों की वास्तविक जिम्मेदारी तो तब हो जाती है जब छात्र क्रान्तिमय राजनीति में भाग लेते हैं चाहे मजबूर होकर या लोकप्रिय नेताओं के कहने से। यह पहले ही स्पष्ट हो चुका है कि इसकी उन्हें इजाजत होनी चाहिये वशतः कि वे अपनी पढ़ाई स्थगित कर दें। और यह तो एक विल्कुल ही भिन्न प्रश्न है कि उन्हें एक या दो वर्ष खोने चाहिये या नहीं। यह चीज पालक और छात्र के निर्णय की है। इस पर प्रौढ़ व्यक्ति के भाग लेने की समस्याकी भाँति ही विचार करना चाहिये। यह स्पष्ट हो जाने के पश्चात् केवल उन्हीं लोगों को अपने एक या दो वर्ष खोने पड़ेंगे जिन्हें राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं की तरह त्याग करने को मजबूर होना पड़ेगा। दूसरे लोग स्वभावतः ही अलग हो जायँगे। पालकों को अपने इस प्रकार के लड़के-लड़कियों के लिये आखिर कोई निर्णय कर ही लेना होगा।

मैं पालक की एक विशेष जिम्मेदारी की ओर संकेत करना चाहता हूँ। आजकल कुछ शिक्षण संस्थाएँ उन पर शासन करने वाले अधिकारियों के कहने से राजनैतिक दल-बन्धियों के गढ़ बनती जा रही हैं। इस प्रकार परिस्थिति न्यायोचित नहीं कही जा सकती और इस लिए उसे रहने नहीं देना चाहिए। पालक के लिए इसे सहन कर लेना उचित नहीं है। स्कूल एक ऐसा समाज है, जहाँ जीवन की विभिन्न स्थिति और विभिन्न सिद्धान्तों के छात्र शिक्षण प्राप्त करते हैं। मैं नहीं



समझ पाता हूँ कि क्यों वहाँ एक ही प्रकार की राजनीति का प्रचार होता है। बालक को ऐसी योजनाओं को ध्वंस करने की चुनौती देना चाहिए और अपने प्रयत्नों के अरण्यरोदन सिद्ध हो जाने पर उन्हें अपने बालकों को वहाँ से हटा लेना चाहिए। उनके ऐसे भीषण कदम उठाने के साथ ही अधिकतर बुराइयाँ अदृश्य हो जायँगी।

स्कूल

छात्रों के राजनैतिक उत्साह को उचित स्रोत में संचालित करना स्कूल की एक मुख्य जिम्मेदारी है।

स्व-शासन

छात्रों को अपने ही क्षेत्र में वास्तविक राजनैतिक कार्य कर सकने की गुञ्जाइश मिल सकने के सम्बन्ध में पहले के विवेचन पर हमें दृष्टि डालना चाहिए। मैं नहीं समझता कि स्कूल एक राजनैतिक इकाई की तरह क्यों नहीं काम कर सकता। जिसमें प्रत्येक छात्र को कुछ ही मामलों के सिवा सब ही बातों में मत देने का अधिकार हो। यह हम स्कूलों में अधिक आसान हो सकेगा जहाँ रहना आवश्यक हो। अब भी यूनियन, मेस तथा खेल का अधिकांश प्रबन्ध छात्रों ही के हाथ में रहता है। संसार के अन्य भागों में इस किस्म के परीक्षण छोटे लड़के और लड़कियों के स्कूलों में भी हुए हैं। मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक स्कूल एक स्वशासित इकाई हो। वह स्कूल के अधिकारी को आधुनिक माध्यमिक स्कूल के पाठ्यक्रम के बाहर की प्रवृत्तियों को संयोजित करने में सहायक हो और एक योग्य तथा पूर्ण मनुष्यता की उत्पत्ति और वृद्धि में सचेत उद्देश्य होकर योग दे। हमारा कार्य राज्य प्रबन्ध के द्विजे सहायक लोगों का निर्माण करना नहीं है किन्तु हमें तो अपने देश के शासनकर्ताओं का निर्माण करना है जो राष्ट्र की उन्नति के विभिन्न क्षेत्रों में अग्रगण्य हों एवं संचालन शक्ति के साथ नीति को विचार कर और नियमबद्ध करके कार्यान्वित कर सकें। यह हम शिक्षकों के लिए उचित ही है कि हम आगामी पीढ़ी को मजबूत स्व-शासन की ओर ले जाने वाली राह पर प्रवृत्त करने के लिए भरसक प्रयत्न करें और उन्हें अपनी शक्ति एवं समय को नकली राजनीति में



नष्ट नहीं करने दें। जहाँ स्कूलों में पूर्णतः निरंकुशता है, जहाँ अध्यापक ही समस्त नियमों का विधाता है और जहाँ ऐसी परिस्थितियों में पूर्ण भारतीय मनुष्यता की उत्पत्ति तथा वृद्धि की संभावना नहीं है, यह हमारे लिये अविलम्ब आवश्यक हो जाता है कि स्वतंत्रता प्राप्त करने वाले आज के भावी हिन्दुस्तान को हम शिक्षण-संस्थाओं का सफल शासन प्रबन्ध करने की तालीम दें।

छात्र और अध्यापक

छात्र और अध्यापक का सम्बन्ध भी महत्वपूर्ण है। छात्रों तथा स्कूल के अधिकारियों में संघर्ष अभाग्यवश बहु संख्यक होते जा रहे हैं। हड़ताल, वहिष्कार तथा ऐसे ही असंतोषजनक कार्य इन संघर्षों के परिणाम हैं। अधिकतर अध्यापक अधिकारियों की मनोवृत्ति से सोचने लग जाते हैं जिन्हें आधुनिक छात्र स्वीकार नहीं करते। अनुशासन का अभिप्राय अध्यापक की पूर्णतः आज्ञाकारिता आजकल के लिए पुराने जमाने की वस्तु है। इस खयाल को बड़े और छोटे छात्रों में साथीपन की भावना के आगे परास्त होना पड़ा है। हिन्दुस्तान में अधिकतर अध्यापक लोग नौकरी लग जाने के तुरन्त बाद ही विद्यार्थी रहना छोड़ देते हैं। यदि वे नित्य उन्नतिशील ज्ञान के साथ आगे बढ़ते जायँगे तो वे अपने आप को विद्यार्थी ही महसूस करेंगे और उसी जीने की निम्न सीढ़ियों के नवयुवकों के प्रति अपने में नेतृत्व के वायुमण्डल को स्थान न देंगे। यदि छात्र और अध्यापक राजनैतिक या दूसरी बातों पर स्वतंत्रता पूर्वक बातचीत कर सकें तो हमारी बहुत सी कठिनाइयाँ दूर हो जायँ। हिन्दुस्तान में यह एक विशेष कठिनाई है कि छात्र जगत अध्यापकों को दूसरे बड़े सरकारी अफसरों के अधिकृत समझता है और यथार्थ में यह सन्देह विलकुल अनुचित भी नहीं है।

कक्षा में बाहर होने वाली राजनीति नहीं हो !

यह कहने में किसी प्रमाण की जरूरत नहीं है कि कक्षा में बाहर होने वाली राजनीति को ले आने की जिम्मेदारी अधिकतर अध्यापक पर है। स्कूल के साधारण कार्य में राजनैतिक उत्तेजना ले

आने को उचित नहीं ठहराया जा सकता। यह कैसे आ जाती है? क्रियाशील अचेतन के विद्वान लेखक ने बताया है कि शिक्षण में अध्यापक के अचेतन का प्रमुख भाग रहता है। छात्र और अध्यापक के सम्बन्ध-केन्द्र पर अध्यापक के अचेतन का बड़ा प्रभाव है। अध्यापक को अपनी अचेतन तथा असंतुष्ट अभिप्साओं के संसर्ग से कक्षा में आल्हाद मिलता है। एक उदाहरण से मेरा विचार-विन्दु स्पष्ट हो जायगा। यदि अध्यापक की राजनैतिक कामनायें उसके सार्वजनिक जीवन में संतुष्ट नहीं होती हैं तो वह इस जीवन के अभाव का बालक के मस्तिष्क को प्रभावित करने में दुरुपयोग करता है। इस तरह की घटनायें हमारे स्कूलों में कम नहीं होती हैं। परन्तु इन उदाहरणों से यहाँ निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि इन बातों की तह में केवल अध्यापक का क्रियाशील अचेतन ही है। कभी कभी अध्यापक की ओर से जान बूझ कर भी प्रयत्न होते हैं। दोनों ही अवस्थाओं में अध्यापक की ही जिम्मेदारी है। संक्षेप में बुद्धिमान अध्यापक को चाहिये कि वह बाहर होने वाली राजनीति को कक्षा से सदैव दूर रखे और बालक के मस्तिष्क पर उसका असर नहीं डाले।

स्कूल राजनैतिक दल बन्दी के गढ़ न हों !

स्कूलों के राजनैतिक दलबन्दी के गढ़ बन जाने से बाहर की राजनीति और भी अधिक कक्षा में घुस आयगी। यह मेरी कल्पना के भी बाहर की वस्तु है कि स्कूल एक या दूसरी प्रकार के राजनैतिक विचारों के प्रचारक या समर्थक क्यों बन जाते हैं। स्कूल तो एक ऐसी संस्था है जो इन सब बातों से ऊपर है। सभी प्रकार के छात्र यहाँ शिक्षण प्राप्त करते हैं और उनमें से प्रत्येक को यह अधिकार है कि वह अपने स्वतंत्र विचार रखे और स्वतंत्रता के वायु मण्डल में विषरण करे। यह भी अनुचित है कि भिन्न राजनैतिक विचारों के छात्रों को स्कूल से निकाल दिया जाय।

राजनैतिक कार्य के पश्चात् स्कूल में पुनरागमन

ऊपर कहा जा चुका है कि छात्रों को क्रांतिमय राजनीति में पढ़ाई स्थगित कर देने पर भाग लेने दिया जा सकता है। इस प्रकार के पढ़ाई

स्थगित कर देने के प्रति कोई दण्ड-व्यवस्था न होनी चाहिए। इसके प्रति घरेलू, स्वास्थ्य सम्बन्धी या अन्य कारणों की भाँति ही रख रखना चाहिये। छात्र को राजनैतिक कार्य समाप्त कर लेने या उससे ऊँच जाने की अवस्था में पढ़ाई प्रारम्भ कर सकने की सुविधा होनी चाहिये।

सरकार

सरकार हस्तक्षेप तब करती है जब छात्र राजनीति में सक्रिय भाग ले रहे हों—जब वे जुलूस निकाल रहे हों या प्रदर्शन कर रहे हों। और भी कई कार्य पहले बतलाये जा चुके हैं, जहाँ सरकार हस्तक्षेप किया करती है। मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि हमेशा सरकारी हस्तक्षेप वांछनीय है या उचित ही है। इन समस्याओं पर विस्तृत विचार आगे करूँगा। हमें अभी इन दो श्रेणियों के मतव्यों में भिन्नता करनी है। जब कभी छात्र सार्वजनिक सभा, प्रदर्शन या जुलूस की आयोजना करते हैं तो उनका मकसद किसी राजनैतिक घटना के लिये संवेदना, क्रोध या हितचिन्तन प्रगट करना होता है। राजनैतिक जागृति या उत्साह जनित इन शान्तिमय क्रियाओं में क्या कोई दोष है? जुलूस निकालना या नारे लगाना तो हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और फिर हिन्दुस्तान में तो सरकारी नीति के विरुद्ध आवाज उठाने का और कोई रास्ता भी तो नहीं है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पालक, शिक्षक, या सरकार को इन्हें स्वीकार करना चाहिये क्योंकि इनमें बहुत कम समय खर्च होता है तथा ये लाभदायक, स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक हैं। परन्तु अब हमें दूसरे पक्ष के मत पर भी विचार करना चाहिये। सरकार अपने हस्तक्षेप को व्यवस्था और कानून की आड़ में उचित ठहराती है। किन्तु क्या वह कभी व्यवस्था या कानून को कायम रख सकने में सफल हुई है? प्रथम तो जुलूस या प्रदर्शन में ऐसा कोई प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि ये वास्तव में शान्तिमय ही होते हैं। द्वितीय, दुनियाँ भर में छात्र लोकप्रिय भावनाओं के केन्द्र स्थल होते हैं और जुलूस या प्रदर्शन उनके प्रगट करने के निर्दोष साधन हैं। यदि इन्हें बिना किसी बाधा के होने दिया जाय तो बहुत सी कठिनाइयाँ न रहेंगी। लेकिन जुलूस वालों और प्रदर्शन कारियों को छेड़ने के साथ ही सब तरह की कठिनाइयाँ आ खड़ी

होंगी। लेकिन पुलिस शान्ति को प्रोत्साहन न देकर अशान्ति ही को भड़काती है। यह तो कहा ही जा सकता है कि लाठी चार्ज, निर्दयता पूर्वक आक्रमण और गोली काण्ड छात्रों के कार्यों को शीघ्र समाप्त करने के बजाय उन्हें और उत्तेजित करते हैं। पुलिस की असहनशीलता का परिणाम उत्तरोत्तर कटुता के सिवा कुछ भी नहीं है। कई बार लखनऊ, लाहौर, कलकत्ता और बम्बई में छात्रों पर गोलियाँ चलीं उनसे हमें अध्ययन के लिए काफ़ी चीज़ मिलती है। लखनऊ में एक जुलूस आजाद हिन्द फौज के मुकदमे के विरोध स्वरूप छात्रों द्वारा निकाला जा रहा था। पुलिस ने हस्तक्षेप किया और बुरी तरह किया। नतीजा यह हुआ कि लाहौर के छात्रों में आग भड़की। परिणाम स्वरूप बम्बई और कलकत्ता के छात्रों ने भी उनका अनुकरण किया। विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि आजाद हिन्द फौज के मुकदमे का प्रश्न गौण हो गया और छात्रों का प्रश्न प्रदर्शन का प्रचलन कारण बन गया। इस प्रकार भारतवर्ष में सारे छात्र समाज का क्रोध भड़क उठा। यह हमेशा देखा गया है कि जब कभी हिन्दुस्तान की नौकरशाही इन प्रदर्शनकारियों से चिढ़ जाती है और अभाग्यवश यदि एक दफ़ा भी कोई झड़प हो जाती है तो उसके पीछे प्रतिक्रिया की एक शृंखलासी बँध जाती है। आखिर पुलिस का हस्तक्षेप शान्तिजनक न होकर अशान्तिप्रद ही होता है। पुलिस अपने ही मक़सद को पराजित करती है। कम ही लोगों को मेरी तरह पुलिस और सशस्त्र फौज का दुर्व्यवहार इतना अपमान-जनक महसूस होता है जो कानून और व्यवस्था के नाम पर कई घण्टों तक आवागमन को रोक देते हैं और छात्रों की कतारें बना कर छोड़ देते हैं।

मुझे एक और कारण पुलिस के आक्रमक हस्तक्षेप को अनावश्यक प्रमाणित करने के लिए देना है। आधुनिक उन्नतिशील शिक्षण के प्रकाश में सरकार शारीरिक दण्ड की अवांछनीयता को महसूस करने लग गई है। कुछ प्रान्तों में इस आशय के आज्ञापत्र भी निकल चुके हैं। वे कहते हैं कि अरक्षित बालक-बालिकाओं को पीटना अपराध है। वे बालक को ठीक मार्ग पर लाने के लिये मनोवैज्ञानिक चिकित्सा का समर्थन करते हैं। मैं कहता हूँ कि क्या सरकार, कार्यकर्त्ता छात्रों के लिए भी उसी सिद्धान्त का पालन नहीं कर सकती है? वह कर सकती है। अतएव बिना देरी किए ही अध्यापक तथा सम्पूर्ण सम्बन्धित लोगों को इस



सिद्धान्त का पालन करना चाहिये—चाहे छात्र घर में हो, स्कूल में हो या बाहर हो। छात्र सभी जगहों में वही हैं और वहाँ मनोविज्ञान भी वैसा ही लागू होता है। ऐसा प्रस्ताव रखा जा सकता है कि सरकार को छात्रों के साथ व्यवहार करने के लिये एक विशेष शिक्षित पुलिस का आयोजन करना चाहिए जो पौगण्ड मनोविज्ञान से परिचित हो। जब रूस में युवक अपराधियों के लिये विशेष पुलिस का प्रबन्ध हो सका है तो वह हिन्दुस्तान में भी सम्भव क्यों नहीं हो सकता ?

सरकार का एक बड़ा कर्तव्य यह भी है कि राजनैतिक कार्य करने वाले छात्रों पर कोई प्रतिबन्ध न लगने दे और राजनैतिक कार्य समाप्त हो जाने पर या उससे ऊच जाने की हालत में फिर से पढ़ाई शुरू करने के लिए उनकी सुविधा का ध्यान रखें। आज कल यह साधारण सी बात हो गई है कि राजनैतिक आन्दोलनों में भाग लेने वाले छात्रों का बड़े शिक्षाधिकारियों के कहने से फिर से स्कूलों में प्रवेश रोक दिया जाता है। सन् १९४२ का आन्दोलन सबसे ताजा उदाहरण है। इस सम्बन्ध में विशेष बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

देश की स्वतन्त्रता के साथ इस समस्या का समाधान कई अंशों में स्वयं हो जायगा। साथ ही स्वशासन के विकास के अनुसार हिन्दुस्तान के छात्रों का दृष्टि कोण भी अंग्रेज और अमरीकी छात्रों के अनुरूप हो जायगा और फिर एक गम्भीर समस्या मिट जायगी।

समाज सेवा

यहाँ मैं छात्र और उसके समीपस्थ समाज के साथ उसके सम्बन्ध पर विचार करूँगा। बालक या बालिका का शिक्षण समाज का एक कार्य है और समाज ने उन्हें शिक्षित करने का भार स्कूल को सौंपा है ताकि वे सामाजिक जीवन में प्रभविष्णुता-पूर्वक योग दे सकें। शिक्षण आखिरकार कोई निरपेक्ष रूप से होने वाली क्रिया नहीं है। मेरा अनुमान है कि कोई भी व्यक्ति इस बात का खंडन नहीं करेगा। लेकिन वास्तव में आज ज्ञान और जीवन के बीच एक खाई पैदा हो गई है। मैंने इस बात का उल्लेख स्कूल और जीवन के दूरभ्यान उत्पन्न पार्थक्य को प्रकाश में लाने के लिए किया है, जो आज अभाग्यवश मौजूद है। और मेरा मकसद दोनों के सम्बन्धों को जोड़ देने या सम्मिलित कर देने पर जोर डालना है, जिसके बिना सारे शिक्षण के नियमों के निष्फल, कृत्रिम और समाज के लाभ के लिए निरर्थक सिद्ध हो जाने का भय है। व्यक्तित्व का निर्माण पुराने शिक्षण का चिन्त्य विषय जरूर रहा है, परन्तु जो तरीका काम में लाया गया है, वह भिन्न है। मस्तिष्क की शिक्षा को ही सब कुछ मानने वाला प्राचीन और कठोर शिक्षण अनुचित व्यवहार को दण्ड देकर, सदाचार के नियमों का पालन करा कर, स्वर्ग का लोभ और नरक का भय बता कर व्यक्तित्व निर्माण की चेष्टा करता था। परन्तु नूतन उदार शिक्षण मस्तिष्क तथा हृदय के सहयोग में विश्वास करता है और व्यक्ति तथा उसकी परिस्थितियों के गतिमान सम्बन्धों के द्वारा व्यक्तित्व के निर्माण की ओर संलग्न होता है। जीवन में धारणा, ध्येय जीवन के प्रति रुख तथा उसके मूल्य जिन्हें बालक प्राप्त करता है, येही सब उन परिस्थितियों का निर्णय करते हैं जिनमें वह देशभक्त, सहानुभूतिपूर्ण, स्नेहशील एवं राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय बनता है। अतः हम आगे की ओर देख कर शिक्षा की ऐसी कल्पना कर सकते हैं, जिसमें शिक्षक मस्तिष्क एवं शरीर के विकास की अपेक्षा आत्मा की जागृति में अधिक विश्वास कर के एक प्रभावशाली प्रणाली की स्थापना करेगा तथा बालक के अनुभवों को इस तरह निर्देशित



करेगा कि वह प्रसन्न, पुष्ट और योग्य भावना-मय हो सके । दैवयोग से मानव-भविष्य यदि ऐसे योग्य हाथों में पहुँच जाय तो हम स्थायी शान्ति, मानव-ऐक्य, विविध राष्ट्रों के बीच भ्रातृत्व तथा सारी युद्धोन्मुख प्रवृत्तियों के विनाश की आशा कर सकते हैं ।

इस समस्या की सुलभता हमें छात्रों को और भी अधिक क्रियाशील एवं निर्माणशील बनाने में मिल सकती है । इन दो विशेषणों का पूर्ण आशय प्रगट करना वास्तव में अत्यन्त कठिन है । मैं इन्हें अध्यापकों के स्वयं समझ लेने के लिये छोड़ देता हूँ, क्योंकि वे स्वयं ही योग्य हैं । उपर्युक्त विवेचन द्वारा हम यह देख सकते हैं कि हमें छात्र और समाज में घनिष्ट और विविध लगाव उत्पन्न करने चाहिए । छात्रों के विकास के सामाजिक और भावात्मक पहलुओं को उत्तरोत्तर मान मिलना चाहिए तथा छात्रों और जन साधारण में अधिक सम्पर्क स्थापित होना चाहिए । इसके द्वारा छात्रों का केवल विचार-चिंतन ही विस्तृत न होगा, बल्कि उन्हें उनका अधिक से अधिक ध्यान खींचने वाली समस्याओं को समझने की शक्ति तथा उनके प्रति सहानुभूति पूर्वक वरतने की आवश्यक उत्तेजना भी प्राप्त होगी । जन साधारण के दुखों का एक बृहत् विश्लेषण हमारे सम्मुख उनकी अत्यन्त गिरी हुई, दलित और अस्त-व्यस्त तस्वीर खींच देगा । किन्तु यदि छात्र उनके उत्सवों में शरीक हों और उनकी खुशियों में भाग लें तो इस विस्तृत मानवता का उन्हें उत्तम और यथार्थ ज्ञान होगा । आपत्तियों के सम्मुख उनके चरित्र और शक्ति का पता चलता है और उनके आत्मसम्मान तथा उच्चता की अभिव्यक्ति होती है । अतः इसके द्वारा इन दो श्रेणियों के बीच में अधिक स्वस्थ और प्रसन्न सम्बन्धों की स्थापना होती है । संक्षेप में छात्रों से अपेक्षित समाज-सेवा की यह कुक्षी है ।

अब जो वास्तविक प्रश्न आता है वह यह है कि छात्रों से समाज-सेवा की अपेक्षा करना मनोवैज्ञानिक है या नहीं, अथवा यह उन पर एक बाहर से लादा गया कार्य है । यदि अणुमात्र भाग भी बाहर से लादा गया है तो छात्रों से किसी सामाजिक कार्य की आशा रखना हमारी बुद्धिहीनता ही होगी । साथ ही यहाँ दूसरी बुद्धिहीनता होगी पहले ही से भरे पड़े पाठ्यक्रम में एक और क्रिया से भरे हुए विषय



समुदाय को जोड़ देने की । फिर पढ़ाई से दूर हो जाना भी एक और विचारणीय विषय बन जायगा । इस समस्या का यदि हम बाल मनो-विज्ञान के प्रकाश में अन्वेषण करें तो प्रश्न स्पष्ट और आसान हो जायगा । बालक की रुचि और प्रवृत्तियों के अध्ययन से पता चलता है कि उसका भुकाव कई प्रकार के कार्य करने तथा अपने विचारों को कार्यान्वित करने की ओर होता है । यह निर्माणशील चेष्टा बालक की निर्माण की सभी भूमिकाओं में गुजरती है । समाज-सेवा पौगण्ड अवस्था के बालक की प्राणप्रिय प्रवृत्ति है जिसकी पूर्ति होना बालक के पूर्ण विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक है । इस बात का प्रमाण टीचर्स-ट्रेनिंग कॉलेज हैदराबाद (सिंध) के डी० के० हिंगोरानी का एक प्रयोग है जो उन्होंने एक हाईस्कूल के छात्रों पर किया था । उन्होंने २४० छात्रों को एक छपी हुई प्रश्नावली दी । बहुत सारे प्रश्नों में एक प्रश्न जीवन के उद्देश्यों के सम्बन्ध में भी था । निम्नलिखित दस स्वतंत्र उद्देश्य दिये गये और छात्रों को अपनी अपेक्षाकृत रुचि के अनुसार कोई से तीन उद्देश्य क्रम से लिखने के लिये कहा गया:—१: धन २: प्रसिद्धि ३: स्वास्थ्य एवं दीर्घजीवन ४: शिक्षा और ज्ञान ५: प्रेम और विवाह ६: घर तथा माता-पिता की सेवा ७: देश और समाज की सेवा ८: उत्तम चरित्र ९: भगवद्-प्रेम १०: अध्यात्मिक उन्नति । परिणाम महत्वपूर्ण और सूचना-प्रद थे । देश और समाज की सेवा का उद्देश्य निश्चित ही विशाल मत के साथ विजेता रहा । अपने उद्देश्यों में प्रथम स्थान देने वालों की संख्या ९३, द्वितीय स्थान देने वालों की १०४ और तृतीय स्थान देने वालों की ८४ । कुछ ही लोगों के सिवाय प्रायः सब ही ने समाज-सेवा को अपने तीन चुनावों में से कम से कम किसी एक में तो जरूर चुना । धन (३४) और प्रसिद्धि (३,४,५) जो प्रौढ़ लोगों के संघर्ष में मुख्यतम माने जाते हैं, शायद पौगण्ड आदर्शवाद में विलकुल व्यर्थ ही जान पड़े । शिक्षा और ज्ञान जिनमें हमारा सम्पूर्ण समय और धन व्यय होता है अधिक स्थान न पा सके । दूसरे उद्देश्यों द्वारा प्राप्त मतों पर विचार करना हमारा काम नहीं है । संक्षेप में, यह निर्णय निकला कि पौगण्ड मस्तिष्क में समाज सेवा के लिये उग्र चेतना रहती है और घर, सरकार तथा स्कूल का कर्त्तव्य होता है कि वे उसे जागृत करके लाभ-दायक धाराओं में प्रवाहित करें ।



समाज सेवा की भावना सिखलाई नहीं जा सकती । नागरिक शास्त्र और इतिहास के शिक्षण से किसी प्रकार के सामाजिक आदर्शों को बालक में उत्पन्न करना संभव हो सकता है । परन्तु इसके अतिरिक्त समस्या-केन्द्रित कुछ और वस्तुओं की आवश्यकता है । दूसरे मनुष्यों के दुःख दर्दों को अपने ही समान समझने से इसकी कुछ आशा हो सकती है । छात्रों को उस समाज के अध्ययन का मौका मिलना चाहिये जिसमें वे रहते हैं और बढ़ते हैं । उन्हें बाहर के संसार से और दूसरी समाज-हितेच्छु संस्थाओं से अपना सम्पर्क बढ़ाना चाहिये ।

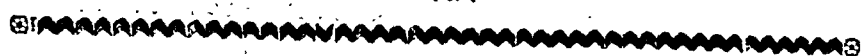
समाज सेवा प्रवृत्तियाँ:—

अब मैं उन प्रवृत्तियों का उल्लेख करता हूँ जो समाजसेवा के अभिप्राय से प्रेरित होती हैं । यहाँ इस विस्तृत विवरण में नहीं उतर सकते कि इस दिशा में क्या संभव हो सकता है । उदाहरण के तौर पर उन प्रवृत्तियों का विशेष उल्लेख हो सकता है जो बहुत से स्कूलों में चलाई गई हैं और जिनका काफी उपयोग हो सकता है । जैसा कि हम देखते हैं, इस समस्या के तीन रूप हैं—(अ) छात्रगण; घर के लिए (ब) स्कूल के लिए और (स) जन साधारण के लिये । पहले दो रूपों को शुमार कर लिया गया है क्योंकि उदारता घर से आरम्भ होती है । यदि छात्र पहले घर और स्कूल के समाज की सेवा करने में सफल हो जाय तो यह निश्चित हो जायगा कि आगे समाज की सेवा करने के लिए उनकी प्रकृतिदत्त चेष्टा अवश्य ही खुल जायगी । मेरे विवेचन के बाहर होने के कारण मेरा मकसद यहाँ उन पहले के दो क्षेत्रों में घुसना नहीं है । अतएव अब मैं तीसरे प्रकार की प्रवृत्ति को लेता हूँ ।

(अ) स्थायी समाज सेवा प्रवृत्तियाँ—

इस शीर्षक के नीचे केवल वे ही प्रवृत्तियाँ सम्मिलित हैं जो अधिक स्थायी हैं और जिन में नियमित व्यय और समय चाहिये ।

(१) जूनियर रेड क्रॉस सोसाइटी:—स्कूल में ऐसी समितियों के उद्देश्य और ध्येय विभिन्न होना चाहिए । समिति अपने सदस्यों में समाज सेवा की भावना वृद्धित करने में अपना भाग प्रदान करती है । ये प्रवृत्तियाँ स्कूल के बाहर या भीतर सीमित रह सकती हैं—गरीब



और जरूरतमंदों की सहायता के मामूली उदाहरणों से लेकर सभी प्रकार की संभाव्य सहायता तक।

(२) दान-कोष:—स्कूल या कई स्कूलों के छात्र एक दान कोष रखते हैं जिसमें सब लोग उदारता से चंदा देते हैं। एकत्रित रुपया गरीब लोगों तथा गरीब किसानों को बीज वगैरा खरीदने के लिये उधार दिया जाता है।

(३) शहर में सेवा-मंडल:—ये संघ अध्यापकजन तथा छात्रों में निकटता उत्पन्न करने की दृष्टि से आरंभ किये जाते हैं ताकि वे एक शुभ कार्य के लिए परस्पर आवद्ध हों। प्रत्येक मंडल में शहर के एक भाग के छात्र तथा अध्यापक आते हैं। विभिन्न स्कूलों के अध्यापकों के सम्मिलित होने की हालत में लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होगी। मंडल आकस्मिक मदद के लिए या किसी स्थायी समाज सेवा के कार्य के लिये प्रवृत्तियों की अपनी ही कोई योजना तैयार कर लेता है।

(४) शुश्रूषा चिकित्सालय:—यह छात्रों के स्कूल के कोष से चलता है। कुछ छात्रों को बाहरी दवा के प्रयोग की शिक्षा मिलती है। स्थानीय निकट के गाँवों में नियत दिनों में उन बीमारों के इलाज के लिए जाते हैं, जिनके रोगों के लिए पूर्ण निदान की जरूरत नहीं होती।

(५) प्रौढ़-शिक्षा:—यह आजकल हिन्दुस्तान की अत्यन्त जरूरी समस्याओं में से है। गाँव और शहर दोनों ही जगह अनेक रात्रि स्कूल प्रौढ़-शिक्षा के केन्द्र बन जाने चाहिए। छात्रों को निरक्षरता के विरुद्ध नियमित रूप से युद्ध करना चाहिए और माता-पिता तथा पड़ोसियों को शिक्षित करना चाहिए; शिक्षा केवल लिखना, पढ़ना, गिनना नहीं प्रत्युत साधारण स्वास्थ्य के उद्गूलों और नियमों में, समाज सङ्गठन में और सहजीवन में होनी चाहिए। बड़े छात्रों को इस कार्य से सम्बन्धित होना चाहिए; क्योंकि यह समाज सेवा में बहुमूल्य अनुशासन प्रदान करता है। एक स्कूल में छात्रों को जेल में कम सजा वाले अपराधियों को पढ़ाने की आज्ञा प्राप्त हुई।

(६) पढ़े-लिखे ग्रामीणों के लिए पत्रिकाएँ:—ये साधारण हिन्दु-स्तानी में लिखी होनी चाहिए और आमतौर से सब पढ़े-लिखे नौकरपेशा

लोगों और ग्रामीणों में वाँटी जानी चाहिए। पत्रिका में गत मास की संचित दुनियाँ की खबरें, स्वास्थ्य कृषि पर लेख और एक या दो साधारण कहानियाँ होनी चाहिए।

(७) स्वास्थ्य सेवा:—गाँव के लोग दवा लेने के आदी नहीं होते। छात्रों को इसलिए रूग्ण व्यक्तियों को (खास करके मलेरिया के) जानने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए और उन्हें चिकित्सा के नये तरीकों से परिचित करने के लिए उनका विश्वास प्राप्त करना चाहिए। पीड़ितों को दवाइयाँ खरीदने में तथा सुलभ हो तो उन्हें बाँटने में सहायता दी जानी चाहिए। स्त्री-छात्रों को बालक और स्त्रियों की देख-भाल रखना चाहिए और आवश्यकता होने पर उन्हें औषधि लेने के लिए कहना चाहिए।

(८) बच्चों के लिए खेल:—छात्रों को गाँव के छोटे बच्चों को खेल सिखलाने चाहिए। नये खेलों को सीखने के लिए छात्रों के पास बच्चे जमा हो जायेंगे। उन्हें अपने शारीरिक व्यायाम-शिक्षक से खेल सीखने चाहिए।

(ब) अवसर-जन्य समाज सेवा प्रवृत्तियाँ:—

(१) धर्मार्थ संस्थाओं में जाना:—छात्रों को वर्ष भर में कुछ बार अनाथालय, कोढ़-पीड़ितों के आश्रम आदि जगहों में जाना चाहिए। उन्हें वहाँ वितरण तथा आमोद के लिए कुछ फल, मिठाइयाँ, पुरानी तस्वीरों के कागज और ग्रामोफोन ले जाना चाहिए। कपड़े भी वितरित किए जा सकते हैं।

(२) मेलों, बाढ़ और सर्वव्यापी रोगों में सहायता कार्य:—इन विशेष अवसरों पर शीघ्र सहायता की आवश्यकता होती है। योग्य अध्यापकों के नेतृत्व में सहायता प्रदान करने के लिए छात्रों को घटना-स्थल पर पहुंचना चाहिए। ये अवसर कार्य के लिए विभिन्न क्षेत्र प्रदान करते हैं।

(३) प्रकाशन और शिक्षा-प्रचार:—छात्रों को दैनिक समाचारों की सही सूचना देने के कार्य में लगना चाहिए। इस प्रकार उनकी नित्य-समाचार पत्र पढ़ने की आदत बनेगी। सबसे अच्छा तरीका यह होगा

कि महत्वपूर्ण विषयों पर निशान कर दिये जायें और फिर उन्हें गाँव के लोगों को समझाया जाय। अशिक्षित प्रौढ़ लोगों को इस बात के लिए तय्यार करना चाहिए कि वे अपने लड़के-लड़कियों को नजदीक के प्रारम्भिक स्कूलों में भेजें।

(४) नाट्य-कार्य और आमोद-प्रमोद:—साप्ताहिक अथवा सामयिक रामायण की कथा और भजन-मण्डली से गाँव वालों को शिक्षा और आमोद प्राप्त होते हैं। ये हमारे गाँव के लोक-प्रिय मनोरंजन हैं और इनके द्वारा दोनों समुदायों में सम्पर्क स्थापित होता है।

(५) गाँव की सफाई:—छात्रों को गाँव के अस्वास्थ्यकर भागों की सफाई करने के लिए स्वयं शिक्षित होना चाहिए। क्रियात्मक रूप में यह ज्ञात हुआ है कि छात्र अपने ही गाँव में कार्य करने में भ्रष्ट होते हैं। अतएव यह योजना होती है कि छात्र कुछ दिन अन्य गाँव में काम करें आखिरकार वे यह समझ लें कि अपने ही भाइयों के लिए कार्य करना गर्व की वस्तु है।

(६) सामाजिक निरीक्षण कार्य:—छात्रों को 'सामाजिक निरीक्षण-कार्य' के लिए कुछ संघ संगठित करने चाहिए, जो आस-पास के समाज के जीवन में खोज करें; जैसे सड़कों की हालत, शहर और गाँवों में नालियों का प्रबन्ध, आस-पास की जगह की स्वास्थ्य और सफाई की दशा, सर्व-व्यापक रोगों के उद्गम, खाद्य पदार्थों का पहुँचाना, स्थानीय उद्योग-धंधे।

इन कार्यों के लाभ के विषय में कुछ कहना अत्युक्ति नहीं है। पुराने अध्यापक इन रुढ़ि हीन कार्यों को व्यंग की दृष्टि से भले ही देखें किन्तु सारे विचारशील मनुष्य धीरे-धीरे यह विश्वास करने लगे हैं कि निकटतम परिस्थितियों का अध्ययन बालक की आरम्भ की शिक्षा का प्रमुख भाग होना चाहिए। इसके सिवाय बालक की स्कूल की पढ़ाई पर इसका प्राण-प्रद प्रभाव पड़ेगा क्योंकि अब उन्हें एक ऐसे ध्येय और वास्तविकता की ज्योति प्राप्त हो जायगी जिनसे वे अब तक वंचित थे।

घर, स्कूल और सरकार का उत्तरदायित्व:—

बालक के जीवन में इन तीन शक्तियों में से प्रत्येक उसके कार्यों को समाज सेवा में परिवर्तित कर देने में विशिष्ट योग प्रदान करती है। घर को प्रारम्भिक परिस्थितियाँ प्रदान करनी होती हैं, स्कूल को आरम्भ, नेतृत्व, निर्देशन और संगठन कार्य करना पड़ता है और सरकार को इनका समर्थन तथा ज़रूरत हो तो धन से पोषण करना पड़ता है। उसे खास तौर से उदार व्यवहार रखना पड़ता है, न कि इन प्रवृत्तियों की ओर, चिन्ता, सन्देह और अविश्वास की निगाह से देखना।

घर:—

‘उदारता का आरम्भ घर से होता है’ वाली सामान्य कहावत छात्र के समाज-सेवी कार्यों की ओर घर के उत्तरदायित्व और कर्तव्य को प्रकट करती है। साधारणतया बालक, बालिकाओं में समाज सेवी संस्कारों की उत्पत्ति घर से अपेक्षित है। घर की समुचित परिस्थिति और अनुकूल वातावरण के जरिये बालक को घर के सदस्यों की सहायता के लिये प्रेरित करना चाहिये। घर का जीवन इस प्रकार ढालना चाहिये कि सहयोग की भावना उसके सदस्यों में प्रबल हो। लड़के-लड़कियों को माता-पिता, बच्चों, घर के बड़े सदस्यों, नौकरों आदि की सहायता करनी चाहिये। परिवार के सदस्यों की बीमारी घर में समाज-सेवा का उत्तम अवसर है। नौकरों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार उच्च वस्तु है। इसी प्रकार बड़ों का आज्ञा पालन है। घर पर शारीरिक श्रम प्रसन्नतापूर्वक करना चाहिये। इस तरह घर में सहस्रों कार्य हैं, जिनके सम्पादन के लिए लड़के-लड़कियों को उत्साह से कार्य करने की इजाजत मिलनी चाहिए। यह एक सैद्धान्तिक बात है कि जो बालक घर पर सामाजिक भावना रखता हो, वह स्कूल में या बाहर भी वैसा ही होगा।

किसी संगठित रूप से समाज-सेवा करने की योजना बनाने के लिये बालक से आज्ञा प्राप्त करना एक दूसरा विचारणीय प्रश्न है। वास्तव में ऐसे कार्य स्कूल के साधारण कार्यक्रम के समय (१० बजे से ४ बजे तक) के बीच में नहीं किये जा सकते। अतः स्कूल के समय को

वढ़ाना पड़ेगा ताकि छात्र सुबह से संध्या तक स्कूल में रह सकें। कुछ स्कूलों ने तो पहले ही से स्कूल के समय को बढ़ाना आरम्भ कर दिया है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ होगा बालक को अधिक लंबे समय तक घर से दूर रखना। यहाँ पालक को आपत्ति हो सकती है। किन्तु उनकी आपत्ति उचित नहीं है। उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि ये ऐसे स्कूल नहीं हैं, जहाँ एक निरंकुश अध्यापक अपनी भयानक शान के साथ छात्रों के दमन और पीड़ा के लिये विराजमान होता है; ये तो स्वतंत्रता-प्रिय स्कूल हैं। अतिरिक्त समय का इस तरह के लाभदायक शिक्षात्मक कार्यों में प्रयोग होता है। निस्संदेह सही तरीके के घर का प्रभाव एक अवर्णनीय वरदान है, किन्तु आजकल अधिकांश भारतीय पिछड़े गरीब घरों के बालक वास्तविक शिक्षात्मक घर के वातावरण से वंचित रहते हैं। पालकों की ओर से दूसरी आपत्ति शारीरिक श्रम और कभी-कभी पढ़ाई के छूट जाने के सम्बन्ध में उठती है। इन आपत्तियों के उत्तर देने के लिये पर्याप्त स्थान यहाँ नहीं है। समाज सेवा न तो कुलीगिरी है और न इससे कहीं पढ़ाई ही छूटती है।

अतः घर का प्रथम कर्तव्य तो बालक में समाज-सेवा और सहयोग की भावना उत्पन्न करने के लिए घर पर उचित अवसर निर्माण करना है। दूसरा, उसको स्कूल के सामाजिक वातावरण में उचित भाग लेने के लिये इजाजत देना है और तीसरा है, उत्साह तथा सहायता प्रदान करना। उत्साह तथा सहायता कई प्रकार की हो सकती है। नीचे सहायता का एक उदाहरण दिया जाता है। क्षण भर के लिये अनुमान कीजिये कि पड़ोस के जिले में प्रलयकारी बाढ़ आ गई है। धन और जन की अपार क्षति के कारण किसी लड़के का हृदय द्रवित हो जाता है; इसलिये यदि वह सहायता-कोष में रुपयों, अनाज, कपड़ों आदि के रूप में चन्दा देता है तो यह बिना किसी रुकावट उसे करने देना चाहिये। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि कभी-कभी पालक पौगण्ड की प्रकृति-गत समाजसेवी प्रवृत्ति का तिरस्कार कर देते हैं। यदि वे ऐसा करते हैं तो लाभ की अपेक्षा बालक की हानि ही करते हैं।

स्कूल:—

आधुनिक शिक्षा का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण आधार रूप में यह

स्वीकार करता है कि स्कूल को अपनी शिक्षण प्रणाली निरन्तर समाज के जीवन और क्रिया पर अवलंबित करनी चाहिये। स्कूल की छोटी सी दुनिया और बाहर के विस्तीर्ण संसार में एक खुला आदान-प्रदान और निरन्तर सम्बन्ध स्थिर रहना चाहिये। बालकों को शिक्षात्मक महत्त्व की सार्वजनिक सेवाओं में भाग लेने के अवसर मिलते रहना चाहिये। पर इस तरह सेवा और सहयोग के क्रियात्मक पाठ का ज्ञान बालक को केवल कर्तव्य-भावना के ज्ञान द्वारा नहीं कराया जा सकता। उसका यथार्थ ज्ञान तो उसे केवल कुछ निश्चित कार्य स्वयं क्रियात्मक रूप से अनुभव करने पर ही हो सकता है, या अपने पालक, स्कूल के साथियों और समाज के सदस्यों के प्रति सेवार्थ कर्तव्यशील रह कर ही हो सकता है। यही बात किसी भी मनुष्य के यथार्थ गुणों के सम्बन्ध में भी लागू होती है। समाज-सेवा के लिए पौगण्ड की प्रकृतिगत वृत्तियों के विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। समाज-सेवा के लिए इस बिन्दु को दृष्टि में रखना पड़ता है। बिना किसी मनोवैज्ञानिक आधार के छात्र की शक्ति के नष्ट होने की संभावना है। वह कभी किसी काम में मन नहीं लगायेगा, जब तक कि वह उसका मकसद स्वयं अपनी दृष्टि से न देख ले, याने उस कार्य को किसी तरह उसके जीवन को स्पर्श करना चाहिये।

जो बात घर की जिम्मेदारियों के सम्बन्ध में कही गई है, वही स्कूल के लिए भी है। यदि स्कूल इस भावना को बनाने में सफल होता है कि स्कूल समाज के लिए है तो वह स्कूल के बाहर की समाज-सेवा के लिए छात्र संगठनों को सफलतापूर्वक संचालित करने में सफल हो सकता है। यदि छात्र अपने साथियों और अध्यापकों के प्रति सेवा-भाव से कर्तव्यशील रहेंगे तो वे अवश्य ही आगे चल कर समाज के प्रति भी वैसा ही भाव रखेंगे।

हमारी पहली समस्या स्कूल को संक्षिप्त समाज के रूप में परिणित कर देना है। जहाँ बालक वास्तविक क्रिया द्वारा सामाजिकता सीखता है। यदि स्कूलों में संयुक्त कार्य के लिए संगठन और दृढ़ता का अभाव है तो छात्रों में समाज-कार्य की भावना का निर्माण करना सम्भव न हो सकेगा।

दूसरी समस्या है स्कूल को विच्छिन्न अवस्था से मुक्त करना और उसको पाठ्यक्रम और अतिरिक्त पाठ्यक्रम की प्रवृत्तियों के द्वारा सामाजिक जीवन के पहलुओं का एक अंग मान कर उनसे संयुक्त कर देना।

अब तक मैंने इस ओर संकेत किया है कि समाज के जीवन और जनता के साथ छात्र का घनिष्ठ सम्पर्क होना चाहिए। किन्तु इसके अतिरिक्त और भी तत्प्राप्त अनेक समस्याएँ हैं जिनका संक्षेप में विचार होना आवश्यक है। छात्रों के समाज सेवाई कार्यों का आयोजन करने में तीनों संस्थाओं (घर, स्कूल और सरकार) में से किसको सबसे अधिक उत्तरदायित्व लेना चाहिये; छात्रों का जनता से सम्पर्क स्थापित करने के लिए किन किन पद्धतियों का आश्रय अब तक लिया जा चुका है तथा और किन का लिया जा सकता है, तथा इन पद्धतियों की व्यवस्था किन मार्गों से हो सकती है आदि इन प्रश्नों का उत्तर उपर्युक्त क्रम के अनुसार दिया जायगा। छात्रों का जनता से सम्पर्क स्थापित करने के लिये स्कूल को सबसे अधिक जिम्मेदारी उठानी चाहिए क्योंकि उसने बालक के शिक्षण कार्य का जिम्मा लिया है, जो पहले घर और चर्च का कार्य था। दूसरे प्रश्न का विवेचन पिछले पन्नों में अच्छी तरह हो चुका है। स्कूल की स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार इन समस्त सम्भव प्रवृत्तियों में से कुछ चुनी समाज सेवाई प्रवृत्तियाँ स्कूल के अपठित पाठ्यक्रम के रूप में संचालित होनी चाहिए और यह स्कूल की एक स्थायी विशेषता समझी जाय। छात्रों के मार्ग दर्शन के लिये निम्न लिखित पंक्तियाँ लिखी जाती हैं:—

१. छात्रों का इच्छा के विरुद्ध उन्हें किसी समाज-कार्य के लिए नहीं कहा जायगा।

२. छात्रों को किसी समाज-कार्य में चन्दा देने के लिये नहीं कहा जायगा जब तक कि वे स्वयं उस कार्य में सक्रिय रूप से दिलचस्पी न लें।

३. आरंभ में छात्रों को निश्चित कार्य और छोटे कार्यक्रमों में ही भाग लेने दिया जाय।

४. छात्रों को पहले बालकों और प्रौढ़ लोगों के लिए मनोरंजन और क्रीड़ा का आयोजन करने को कहा जाय।

५. छात्र पहले लोगों को स्वास्थ्य सुधारने, साक्षर बनाने और सुन्दरतम जीवन बनाने में सहायता दें। पेचीदा कार्यक्रम बाद में लेना चाहिये।

यह स्पष्ट है कि समाज सेवा का कार्य छात्रों को करना पड़ेगा, परन्तु यह शिक्षकों के विशेष निर्देशन में होगा। अतएव उत्तरदायित्व अप्रत्यक्षरूप से शिक्षकों के कंधों पर रहेगा। यह खेदजनक बात है कि पुराने रुढ़िवादी अध्यापक इन प्रवृत्तियों को स्कूल-कार्य के बाहर की बात समझते हैं और उनका स्वागत नहीं करते तथा इनका शिक्षण के ध्येयों की पूर्ति के लिये उपयोग नहीं मानते। यह क्षुद्र दृष्टि भौतिक किताबी पन्नों से आगे नहीं बढ़ती। अध्यापकों के रुख के बदले बिना हमें किसी अच्छी सफलता की आशा नहीं है। इसलिये स्कूल के सम्पूर्ण ढाँचे तथा अवयवों को विछिन्न अवस्था से निकाल कर संगठित रूप से देश की प्रमुख सामाजिक-बौद्धिक चेष्टा के मेल से स्थापित करना चाहिए। जब तक स्कूल उपर्युक्त प्रदर्शित भावनाओं का प्रत्युत्तर कार्य-रूप में नहीं देगा, तब तक छात्र-समाज के जीवन पर ठोस प्रभाव डालने में सफल नहीं होगा। यदि स्कूल कार्यरूप में प्रत्युत्तर देंगे तो छात्र और समाज को बहुत लाभ पहुँचेगा।

सरकार

छात्रों द्वारा संचालित समाज सेवा प्रवृत्तियों से सरकार का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं रहता है, परन्तु जब संदेह, भ्रम और गलत धारणा-वश वह हस्तक्षेप करती है तो वह उस कार्य में मुख्य बाधा बन जाती है। हम हिन्दुस्तान के लोगों पर विदेशी शासन है। हम लोगों पर सरकार अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिए किसी भी रचनात्मक कार्य को नहीं होने देना चाहती। यदि सरकार छात्रों के क्रांतिकारी राजनीति में भाग लेने में हस्तक्षेप करती है तो वह एक दूसरा प्रश्न है और यहाँ हमारा उससे संबंध नहीं है। परन्तु जब वह समाज-सेवा-कार्य को राजनीतिक कार्य समझ कर हस्तक्षेप करती है तो यह अवश्य अनुचित है। ये कार्य शिक्षा के समाज सम्बन्धी वैज्ञानिक उद्देश्यों की पूर्ति में बहुत

बड़ी सीमा तक सहायक होते हैं, जिन्हें हमने वास्तव में पश्चिम से पाया है। यह देखा जाता है कि यदि कोई प्रगतिशील स्कूल देश के जीवन में सक्रिय दिलचस्पी लेता है और समाज-सेवा कार्य को किसी व्यवस्थित तथा बड़े पैमाने पर आयोजित करता है तो सरकार उसकी ओर संदेह की दृष्टि से देखती है और उस पर क्रांतिकारी होने की छाप लगाती है। अध्यापकों को या तो सजायें मिलती हैं या उन्हें अस्वामिभक्त का विशेषण। इस बात को सिद्ध करने के लिये अन्य किसी भी उदाहरण की जरूरत नहीं है कि सरकार का यह रुख न्यायोचित नहीं है।

इसके विपरीत सरकार को शिक्षा और जीवन का अधिक प्रगतिशील विचार रखना चाहिए। क्या ही अच्छा हो, यदि सरकार और स्थानीय संस्थाओं में इस कार्य को सक्रिय रूप से सम्पादित करने की कल्पना हो सके। छात्रों को इन कार्यों को करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए और उनका सहयोग प्रत्येक दिशा में बढ़ाना चाहिए। यदि ऐसा होने लगे तो कर चुकाने वाले भी महसूस करेंगे कि वे अपने रुपये का उचित बदला पा रहे हैं और तब वे स्कूल तथा छात्रों के हितों में वास्तविक दिलचस्पी लेंगे। सरकार भी प्रत्यक्ष रूप से निम्न प्रकार की सहायता कर सकती है:—

- (१) इस कार्य के लिए स्कूलों के सहायता-धन में वृद्धि करना।
- (२) छात्रों को स्कूल के बाहर समाज-सेवा करने के लिए धन प्रदान करना।
- (३) आवश्यकता होने पर छात्रों को सरकारी संस्थाओं में समाज सेवा कार्य करने के लिए आज्ञा प्रदान करना; जैसे जेल में प्रौढ़-शिक्षण, स्टेशन पर लोगों को लाइन में व्यवस्थित करना।
- (४) समाज-सेवा-कार्य के लिए अन्य प्रकार की सुविधाओं का आयोजन करना।

टीचर्स-ट्रेनिंग-कॉलेज

अध्यापकों की शिक्षण-संस्थाओं का छात्रों के समाज-कार्य में भाग लेने की समस्या से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं रहता है। उन्हें तो स्कूल में



उपयोगी स्थानों के लिए उपयुक्त अध्यापकों के शिक्षण की जिम्मेदारी उठानी पड़ती है। यदि अध्यापकों से बालकों की समाज सेवा-प्रवृत्तियों का निर्देशन अपेक्षित है तो ट्रेनिंग कॉलेज में भी उन्हें इस क्षेत्र में शिक्षण मिलना चाहिये। इस आवश्यकता के अलावा देश को अल्प समय और पूरे समय के शिक्षित समाज सेवा कार्यकर्ताओं की अधिकाधिक—सरकारी और सार्वजनिक दोनों ही प्रकार की संस्थाओं के लिये जरूरत पड़ती रहेगी। यद्यपि शिक्षण स्वयं ही समाज सेवाओं से सर्वश्रेष्ठ सेवा है, फिर भी अध्यापकों को अपने बालकों के समाज सेवा संगठनों और अपने पेशे के अतिरिक्त संगठनों में भी भाग लेना होगा इसलिए प्रत्येक ट्रेनिंग कॉलेज को समाज सेवा के शिक्षण को अल्प पाठ्य-काल में आयोजित करना चाहिये जो कम से कम छः सप्ताह का हो। सबसे अधिक सुविधा जनक समय शिक्षण काल के अन्त में होगा जब छात्राध्यापकों की परीक्षा हो चुकेगी। भाषण के विषय, समाज विज्ञान, अर्थशास्त्र, ग्राम्य समस्याएँ, कुटुम्ब और बालक के हित, सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता इत्यादि होने चाहिये। इसी काल में अध्यापकों को समाज सेवा क्षेत्र में काम करने के लिये समाज सेवा संस्थाओं से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये। शिक्षण जितना भी संभव हो सके क्रियाशील हो और साथ ही पूर्ण भी हो। यह उल्लेख करने योग्य बात है कि हमारे कॉलेज ने छात्राध्यापकों के समाज-सेवा शिक्षण के लिये ऐसी ही पाठ्यक्रम की योजना आरंभ कर दी है। यह आशा की जाती है कि यह पाठ्यक्रम सामाजिक दृष्टिकोण बढ़ायेगा और अध्यापकों में समाज सेवा के प्रति दिलचस्पी जाग्रत करेगा।

सिनेमा में

बालक के घर और स्कूल के जीवन के सम्बन्ध में पूर्णतः अध्ययन हो चुका है। उनके शारीरिक और मानसिक विकास में जितनी बाधाएँ इन दो स्थलों पर आती हैं, उनको हटाने के लिये आधुनिक नवीन विद्यालयों में पूर्ण प्रयत्न किया जा रहा है। बालकों की जितनी समस्याएँ पाठशालाओं में दृष्टिगोचर होती हैं उनको सुलझाने के लिये कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा जा रहा है। इन सम्पूर्ण प्रयत्नों के कारण क्या हैं? कारण केवल यही हो सकता है कि स्कूलों की बालकों की ओर दृष्टि बदलती जा रही है। पहले पाठशालाओं में बालक के जीवन पर किंचित मात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता था। केवल लिखना-पढ़ना सिखा देना ही उनका विशेष ध्येय था। पर अब शिक्षा में नवीन धाराएँ उत्पन्न हो चुकी हैं। आजकल संयुक्त जीवन, सामाजिक शिक्षा, नागरिक शिक्षा और बालक के पूर्ण विकास पर अत्यधिक जोर दिया जा रहा है। इस नवीन दृष्टिकोण से स्कूलों का बालकों को अधिक समझने के लिये उनके घर की ओर झुकाव बढ़ता जा रहा है। इस बात का पूर्ण रूप से प्रयत्न किया जाता है कि स्कूल घर से और घर स्कूल से पूर्ण लाभ उठाये। इस घर और स्कूल के नवीन सम्बन्ध से बालकों के विकास में जो सफलता मिल सकती है और जो मिल रही है, उसके कहने की आवश्यकता नहीं। किन्तु इतना अवश्य कहना पड़ता है कि घर और स्कूल के बाहर भी बालकों की बहुत सी समस्याएँ हैं जिनको हम भूल नहीं सकते। इन दो स्थलों के अतिरिक्त और भी बाह्य शक्तियाँ हैं, जो बालकों के चरित्र पर पूर्ण प्रभाव डालती हैं और जिनको समझना और हल करना अत्यन्त आवश्यक है।

यह प्रसन्नता का विषय है कि वर्तमान समय में मनुष्य बालकों के जीवन में आमोद-प्रमोद एवं मनोरंजन को पूर्ण स्थान देते हैं। इस सम्बन्ध में प्राचीन दृष्टिकोण बदलता जा रहा है और नवीन दृष्टिकोण स्थान पाता जा रहा है। वह समय गया जब पिता अपने बालकों के आमोद-प्रमोद एवं खेल-कूद को विषय समझते थे। यह वह समय था जब बालकों को उनके बाल्यकाल में ही खूब पढ़ लिख कर प्रौढ़ कर्तव्यों की शिक्षा देना एक विशेष वस्तु समझी जाती थी; और यदि बालक

लेशमात्र भी मनोरंजन की ओर ध्यान देता, तो उसे बुरी दृष्टि से देखा जाता था और उसकी रोक-थाम की जाती थी।

वर्तमान समय में बालकों को सिनेमा और ड्रामा देखने से नहीं रोका जाता है। जब उन्हें सिनेमा देखने की इच्छा होती है तो पिता को बुरा नहीं लगता। सिनेमा और ड्रामा शराव इत्यादि की तरह उन्हें बुरा नहीं प्रतीत होता। अब जितना ही शिक्षा का प्रचार होता जा रहा है, उतनी ही शिक्षित पिताओं की दृष्टि बच्चों की ओर बदलती जा रही है। सिनेमा को शिक्षा में वही स्थान दिया जा रहा है जो एक अच्छे घर और स्कूल का है।

चूँकि इस देश में बालकों के मनोरंजन के लिए कोई अन्य साधन नहीं है, इससे वे सिनेमा देखना ही अपने मनोरंजन का साधन समझते हैं और उन्हें जाने की अनुमति भी मिल जाती है। यह अधिकतर देखने में आता है कि बालक खेल-कूद की अपेक्षा सिनेमा से विशेष प्रेम रखते हैं और यह किसी हद तक ठीक भी है। इस वस्तु को फिल्मों के बनाने वाले बहुत अच्छी तरह समझ सकते होंगे और वे इसका पूर्ण प्रयत्न भी करते होंगे कि स्कूल और कॉलेज के नवयुवकों की चीज पसन्द आये। बड़े-बड़े शहरों में यही देखने में भी आता है कि सिनेमा वालों को इस श्रेणी से अधिक आमदनी होती है।

पिछले कुछ वर्षों से स्कूल और कॉलेज के छात्रों का झुकाव सिनेमा की ओर अत्यधिक बढ़ता जा रहा है, किन्तु वे पिता जो अपने बच्चों को प्रसन्नतापूर्वक सिनेमा जाने की आज्ञा दे देते थे और उनके लिये सिनेमा देखना लाभदायक भी समझते थे, अब वे ही सिनेमा के दुष्परिणामों को देखकर अत्यन्त कठिनाई में पड़ गये हैं। उनके बालकों पर सिनेमा का जो प्रभाव पड़ रहा है, यह लाभप्रद होने की अपेक्षा हानिकर दृष्टिगोचर हो रहा है। यही कारण है कि आजकल बालकों में चरित्रगत लुप्तता का भीषण प्रकोप हो रहा है। शहरों में इसके अनेक उदाहरण देखने को मिलेंगे जहाँ लड़के सिनेमा से प्रभावित होकर प्रेम लीला के पथ पर अग्रसर होते हैं। वे पढ़ना लिखना समाप्त कर सिनेमा को ही अपने जीवन का एक आवश्यक अंग बना लेते हैं। बहुधा देखने में आता है कि वे केवल



अभिनेत्रियों के छाया चित्र को ही देखकर उनसे मन ही मन प्रेम करने लगते हैं और उनके प्रेम में पागल होकर अपना सर्वनाश तक कर लेते हैं। उदाहरणतः कुछ वर्ष पूर्व एक लड़का, जो कानपुर में इन्टरमीजियेट में पढ़ता था, सिनेमा देखने गया। इसे सिनेमा से बड़ा प्रेम था। उस फिल्म में स्नेहप्रभा नाम की अभिनेत्री का अभिनय था। वह उसके सौन्दर्य एवं हाव-भाव को देखकर मुग्न हो गया और उसके प्रेम में पागल सा रहने लगा। यदि ध्यान से देखा जाय तो केवल एक परदा, एक मशीन और कुछ फिल्म की रीलों के अतिरिक्त वहाँ कुछ नहीं था। केवल धोखे की टट्टी अवश्य थी। घर लौटने पर उसने अपने पिता को एक पत्र लिखा और उसमें २००) की माँग की। अपने पत्र में उसने यह इच्छा प्रगट की कि वह स्नेहप्रभा से मिलने बम्बई जाना चाहता है। उसके पिता ने कहा कि मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि मैं तुमको २००) दे सकूँ और न मुझको तुम्हारी यह बात ही अच्छी लगती है। उसने लड़के को खूब डाँटा फटकारा। अन्त में फल क्या हुआ? लड़के ने प्रेम से पागल होकर आत्मघात कर लिया और इस प्रेमलीला से अपने को सर्वदा के लिए समाप्त कर दिया। ऐसे हृदय-विदारक उदाहरण सुनने में कम आते हैं किन्तु आते अवश्य हैं। सिनेमा से प्रभावित होकर यदि लड़के किसी के प्रेम बन्धन में नहीं भी बँधते तो भी उनमें अनेक बुराइयाँ आ जाती हैं जिनसे उनके जीवन और चरित्र पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। इस विषय पर जितनी ही खोज की जाय उतनी ही अधिक बुराइयाँ दृष्टिगोचर होंगी।

जो मनुष्य बाल-शिक्षा के प्रेमी हैं, वे यह अवश्य चाहेंगे कि कुछ ऐसे उपाय प्रयोग में लाये जायँ, जिनसे बालकों के चरित्र पर बुरा प्रभाव न पड़े। यह विचार लोगों में उत्पन्न होने लगा है। कोई भी कर्तव्यशील पिता अथवा शिक्षक यह नहीं चाहेगा कि लड़कों को हर प्रकार की फिल्म देखने की स्वतन्त्रता दी जाय। स्वतन्त्रता अवश्य देनी चाहिए, किन्तु केवल उन्हीं फिल्मों को देखने की स्वतन्त्रता, जो उनके वय के अनुसार हो।

अभाग्यवश भारत में उन्हीं चित्रों का अधिक प्रचार है और साधारणतः वे ही अच्छी भी मानी जाती हैं, जिनमें प्रेम-लीलायें और उनके भिन्न-भिन्न सोपान दिखलाये गये हों। कोई भी ऐसा चित्र नहीं



होता जिसमें स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध—एक दूसरे का अचानक मिल जाना—दोनों में प्रेम प्रवाहित होना, एक का दूसरे के पीछे पागल होना—प्रेम पत्र में अनेक कठिन हँसियाँ उठाना, घर के व्यक्तियों, माता-पिता, भाई-बहिन इत्यादि से अप्रसन्न होना और उनसे विछुड़ना और अन्त में एक नवीन और विचित्र जीवन में प्रवेश करना आदि न दिखलाया गया हो। अधिक संख्या में रुपया कमाने के लिये फिल्म के बनाने वाले तथा उनकी कहानियाँ लिखने वाले भी उपर्युक्त ढंग की प्रेम सम्बन्धी फिल्म बनाते तथा कहानियाँ लिखते हैं।

अतः जिन के कन्धों पर बालक के चरित्र निर्माण का भार है, और जो राष्ट्र की इस बढ़ती हुई पौध को सही रास्ते से ले जाना चाहते हैं, वे अब तालीम की दृष्टि से बालक और सिनेमा पर सोचने लगे हैं। सिनेमा की शिक्षात्मक कीमत तो अब शिक्षण में स्वीकार की जा चुकी है; पर फिल्म और वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा इसका वर्गीकरण नहीं हो पाया है। सिनेमा की ठीक वैसी ही स्थिति है, जैसी पाठ्य-पुस्तकों की। पाठ्य-पुस्तकों की समस्या अब बहुत धीरे-धीरे पर फिर भी सुलभ होने लगी है; पर सिनेमा की समस्या की ओर तो हमारा ध्यान तक नहीं गया है। अब सिनेमा बड़ी तीव्रता से हमारे बच्चों और जवानों पर असर करता जा रहा है। बात इस हद तक पहुँच गई है कि अच्छे से अच्छे स्कूल या कॉलेज का काम एक पिक्चर पैलेस के आकर्षण से परास्त होता जाता है। बालक इधर तो इस्तहान देता, केम्प में जाता और सोशल्लों में शामिल होता रहता है, उधर प्रेम-कहानियों की फिल्में देखता रहता तथा अपनी वृत्तियों के परिष्कार का मार्ग वन्द करता चलता है।

सिनेमा की समस्या नैतिक समस्या ही नहीं है, यह शिक्षण की समस्या पहले है। बच्चे के शिक्षण और विकास के क्षेत्र तथा क्रम पर इसके घुरे प्रभावों को कैसे रोका जाय, यह अब शिक्षाविदों को सोचना पड़ेगा। सिनेमा में बालक पर असर करने वाली वस्तु (१) कहानी (२) अभिनय तथा (३) वयानुसार तन्मय करने वाली वृत्तियों की अभिव्यक्ति है। हमारे वर्तमान सिनेमा-सृजन का ध्यान वृत्तियों का परिष्कार तथा ज्ञान-वृद्धि की ओर कम है। इसीलिये बालक के साथ जहाँ तक उसका आज सम्बन्ध है, बड़ा भारी खतरा हमारे सामने है।

सिनेमा में घर, स्कूल और सरकार की जिम्मेवारी

इस विषय में घर की बहुत-सी जिम्मेवारियाँ हैं। बालकों को सिनेमा जाने की अधिकता से रोकने की अपेक्षा प्रथम उनके उस मार्ग को रोकना आवश्यक है, जिससे उन्हें बार-बार सिनेमा जाने में सहायता मिलती है। और यह मार्ग रुपया है। कुछ लोगों का विचार है कि लड़कों को जेब-खर्च देना पिता के लिये आवश्यक है। इसके अनुयायी सर्वदा यह आशा करते हैं कि लड़कों को रुपये दिये जाँय, जिससे वे उनकी शक्ति और लेन-देन के विषय में अपने आप आय-व्यय करके अनुभव प्राप्त कर सकें। किन्तु यह केवल उस सीमा तक उचित है जब तक लड़का उससे कुछ अच्छी बातें सीख सके। यदि हम किसी लड़के को उसकी अवस्था एवं आवश्यकता के अनुसार अधिक जेब-खर्च देते हैं तो भय है कि लड़का उस पैसे का अपव्यय करे और उसके ऊपर बुरा प्रभाव पड़े। अतः आवश्यक यह है कि लड़कों को उतना ही जेब खर्च दिया जाय जितना उनके पिता उनकी अवस्था और इच्छाओं के अनुसार आवश्यक समझते हों। यह कहना कठिन है कि किस अवस्था के लड़के को कितना जेब-खर्च देना चाहिये; क्योंकि यह मुख्यतः घर के वातावरण और स्थिति पर अधिकतर निर्भर है। एक निर्धन पिता उतना नहीं दे सकता जितना एक धनी। एक शहरी लड़के की आवश्यकताओं की अपेक्षा एक गाँव के लड़के की आवश्यकतायें कम होती हैं। और साधारणतः एक निर्धन किसान एक शहर वाले की अपेक्षा कम ही दे भी सकता है। अतएव यह हर पिता को अपने अनुभव से जान लेना चाहिये कि उसके लड़के को कितना जेब-खर्च प्रत्येक माह में मिलना आवश्यक है, जिससे वह उसका अपव्यय न कर सके।

कुछ पिता यह पूछ सकते हैं कि लड़कों को उनके माँगने के पूर्व रुपये दिये जायँ या नहीं? उचित यही है कि पिता अपने लड़कों को सर्वदा प्रति सप्ताह अथवा प्रति माह जेब-खर्च देते रहते हैं। और यदि लड़कों को कोई नवीन अभिलाषा पूर्ण करनी आवश्यक है तो जितना पैसा वे चाहते हैं, देना चाहिए। जिस प्रकार उनके खाने-पीने और पहनने की आवश्यकताएँ पूर्ण की जाती हैं, उसी प्रकार उनकी इन



इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूर्ण करना नितान्त आवश्यक है। किन्तु रुपया देने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि वे रुपया उन्हीं आवश्यकताओं के लिए व्यय करते हैं अथवा नहीं। बहुत से लड़के अपने माता-पिताओं के साथ विश्वासवात करते हैं और रुपया किसी ब्रह्मणे से अन्य कार्यों में व्यय कर डालते हैं। यदि उन्हें सिनेमा देखने की अधिक चाट है तो वे उसी में व्यय करते हैं। बहुत से लड़के घर में चोरी करते हैं और बहुत से पुस्तकों के ब्रह्मणे रुपये ले लेते हैं। बड़े-बड़े शहरों में ऐसी घटनायें बहुधा सुनने में आती हैं। सबसे अच्छा तो यह होगा कि लड़कों को सिनेमा जाने से रोकने की अपेक्षा वहाँ उनके जाने के मौके जेब-खर्च के रुपये से कन्ट्रोल किये जाय।

इस स्थल पर यह वाद-विवाद करना कि 'लड़कों' को जेब-खर्च दिया जाय अथवा नहीं और यदि दिया जाय तो कितना दिया जाय आवश्यक नहीं प्रतीत होता। कुछ लोगों की राय है कि दिया जाना चाहिये। घर के बजट में लड़कों के जेब-खर्च का भी स्थान होना चाहिये। जेब-खर्च की मात्रा के विषय में यही उचित है कि यह पिताओं के अनुभव पर निर्भर रहे कि उनके लड़कों को प्रति माह कितना मिलना चाहिये। किन्तु यह आवश्यक है कि वे जेब-खर्च नियत करने के पूर्व यह ज्ञात कर लें कि लड़के की उम्र के अनुसार कितना पैसा मिलना चाहिये। जब तक लड़का छोटा हो और उसकी इच्छायें साधारण और कम हों तब तक जेब-खर्च भी कम होना चाहिये। लेकिन जब वह बड़ा हो जाय तो उसी के अनुसार जेब-खर्च भी बढ़ाना चाहिये। पिताओं के लिये सबसे आवश्यक कार्य यह है कि इस बात का पूर्ण ध्यान रखें और कभी-कभी जाँच भी करते रहें कि सचमुच जेब-खर्च काफी है अथवा नहीं। क्योंकि जेब-खर्च की न्यूनता भी उतनी ही हानिप्रद होगी जितनी उसकी अधिकता।

पिताओं के लिये दूसरी आवश्यक बात यह है कि वे अपने लड़कों के स्कूल से आने के बाद के समय का एक कार्य-क्रम बना दें। उनको खेलने, टहलने और मित्रों से मिलने का समय विश्रय मिलना चाहिए। किन्तु कुछ निश्चित समय के पश्चात् लड़कों को घर लौट आना आवश्यक



हैं । इससे दो लाभ होंगे । एक तो यह कि उन्हें सन्ध्या समय पढ़ने का पूर्ण समय मिल जायगा और दूसरे यह कि उनको सिनेमा जाने से रोकने का एक अच्छा अवसर प्राप्त होगा । यह सम्भवतः देखने में आता है कि जो लड़के सिनेमा देखने के अभ्यस्त होते हैं वे घर-घर से लौटते हैं और जब पिता पूछते हैं कि आने में क्यों देर की, तो उत्तर मिलता है कि आज स्कूल में जलसा था अथवा सब लड़के पिकनिक को गये थे । कहने का तात्पर्य यह है कि वे इसी प्रकार पिता को चकमा देकर सिनेमा देख आते हैं । इसलिए पिताओं को यह चाहिए कि वे कभी २ स्कूल के अध्यापकों से मिलते रहें और लड़कों की पढ़ाई तथा उनके चरित्र के विषय में बात-चीत करते रहें । इस प्रकार अध्यापकों तथा पिताओं दोनों को लाभ होगा और लड़कों के विषय में जानने में पूर्ण सहायता मिलेगी ।

इस विषय में स्कूल भी पूर्ण भाग ले सकता है । लड़कों के सिनेमा जाने की भूल स्कूल में अच्छी तरह से कम की जा सकती है । यदि लड़कों को स्कूल में फिल्म देखने का पूरा अवसर मिले तो वे पूर्ण संतुष्ट हो सकते हैं । सौभाग्यवश आजकल के नवीन स्कूलों में फिल्म का बहुत महत्व है । बहुत-सी शिक्षा विषयक फिल्में बनाई जा चुकी हैं, जो स्कूलों में पढ़ाने के काम में लाई जा सकती हैं । भूगोल, इतिहास इत्यादि के शिक्षण में इनको अधिक स्थान दिया जाने लगा है । लड़कों का फिल्म से प्रेम होना स्वाभाविक है । हम लोगों को चाहिए कि इस शक्ति को अति उत्तम रूप से व्यवहार में लावें । इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए हमको कुछ सीमा तक स्कूल ही की ओर देखना चाहिये । इसमें सफलता भी प्राप्त हो सकती है ।

पिताओं को चाहिये कि वे कभी २ मास्टर्स से मिलते रहें और लड़कों के विषय में जानकारी प्राप्त करते रहें । इसी प्रकार मास्टर्स को भी पिताओं से कभी २ मिलते रहना चाहिये । वे पिताओं से पूछ सकते हैं कि उनके लड़के सन्ध्या समय क्या करते हैं ? उनके पढ़ाई के साधन क्या हैं ? घर तथा मुहल्ले में उनके मनोरञ्जन का क्या प्रबन्ध है ? वे अपने मित्रों के साथ टहलने जाते हैं अथवा नहीं, इत्यादि बातें उन्हें सरलतापूर्वक ज्ञात हो जायेंगी । वे पिताओं को लड़कों के विषय में

प्रकार की राय दे सकते हैं। बहुत से पिता अपने पेशों के कार्य में इतना मग्न रहते हैं कि वे अपने लड़कों पर किंचित् मात्र भी ध्यान नहीं देते। इससे लड़कों में जो बुराईयाँ उत्पन्न हो जाती हैं, वे किसी से छिपी नहीं हैं। जिस तरह स्कूल के छात्रालय में लड़कों को सर्वदा सिनेमा नहीं जाने दिया जाता या कुछ स्कूलों में माह में कुछ वार जाने की अनुमति दी जाती है, उसी प्रकार स्कूल का कर्तव्य है कि वह उन लड़कों पर अपनी दृष्टि रखे जो अपने-अपने घरों पर रहते हैं। उन्हें चाहिए कि लड़कों के पिताओं को बतलायें कि आपके अपने लड़कों के प्रति क्या कर्तव्य है और आपको भी लड़कों के साथ वही रीति चलानी होगी जो बोर्डिंग के लड़कों के साथ व्यवहार में लाई जाती है। यह कार्य तभी भली-भाँति हो सकता है, जब अध्यापक-गण लड़कों के पिताओं से सर्वदा मिलते रहें।

इन तीनों शक्तियों में सब से बड़ी शक्ति गवर्नमेन्ट की है। गवर्नमेन्ट शक्तिशालिनी है और उसकी शक्ति से फिल्मी संसार में विशेष उन्नति हो सकती है। निम्नांकित रीतियों से गवर्नमेन्ट पूर्ण सहायता कर सकती है।

१. भारतवर्ष के लिये सर्व प्रथम आवश्यकता इस बात की है कि गवर्नमेन्ट को इस विषय में पूर्ण भाग लेना चाहिये। लोगों को ज्ञात होगा कि फिल्म बन जाने के बाद उसे एक विशेष कमेटी के सदस्यों को दिखलाया जाता है और वह कमेटी यह निश्चित करती है कि यह फिल्म भारतवर्ष में दिखलाने योग्य है अथवा नहीं। इस कमेटी को बोर्ड आफ सेंसर्स (Board of censors) कहते हैं। भारतवर्ष में ऐसी कमेटियाँ एक बम्बई तथा दूसरी कलकत्ता में हैं, जिन प्रांतों में फिल्म अधिक बनती हैं। मेरी राय में प्रत्येक Board of censors में किसी शिक्षा-विद्वान की भी सदस्यता होनी चाहिए। इस सदस्यता द्वारा यह सफलतापूर्वक निश्चित किया जा सकेगा कि वह फिल्म जिसकी जाँच की जा रही है, लड़कों के लिए लाभप्रद होगी अथवा नहीं। पश्चिमी देशों में इस विषय में बहुत कुछ हो चुका है। वहाँ सम्पूर्ण फिल्मों को दो भागों में बाँटा जाता है। एक वह जो प्रौढ़ों को दिखाने योग्य होती है और दूसरी वह जो लड़के-लड़कियों को दिखाने योग्य होती है। यदि

हमारे देश में उन्हीं रीतियों का व्यवहार किया जाय तो बहुत सहायता मिल सकती है। पश्चिमी देशों में कोई भी लड़का-लड़की एक अवस्था के नीचे उस फिल्म को नहीं देख सकते जो प्रौढ़ों के लिए बनाई गई है, जब तक कि उनके पिता साथ न हों।

२. वर्तमान कानून के अनुसार प्रत्येक जिले के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को यह पूर्ण अधिकार होता है कि वह यदि यह समझे कि अमुक फिल्म दिखाने से उसके जिले में राजनैतिक हलचल मच जायगी तो वह उसे दिखाने से रोक सकता है। मेरी राय में उसे यह भी अधिकार मिलना चाहिए कि वह फिल्म जो लड़कों के चरित्र पर बुरा प्रभाव डाले, कानून द्वारा दिखाने से बन्द कर दी जाय। इसके लिए प्रत्येक जिले में कुछ शिक्षाविदों की कमेटी बनाई जा सकती है, जो डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को भिन्न-भिन्न फिल्मों के विषय में परामर्श दे सके। और जब तक वह उसे स्वीकार न कर ले तब तक कोई फिल्म लड़कों को न दिखाई जाय।

३. लड़कों में सिनेमा जाने की अधिकता एक दूसरे तरीके से भी कम की जा सकती है। वर्तमान समय में लड़कों के मनोरंजन के कोई स्थान नहीं हैं जहाँ सन्ध्या समय जाकर वे अपना मनोविनोद कर सकें। प्रत्येक शहर और कस्बे में लड़कों के लिए पार्क, खेलने के मैदान और उनके साधन जिमनैशियम (Gymnasium) इत्यादि का प्रबन्ध होना चाहिए जहाँ लड़के सन्ध्या समय जा कर अपने दिन भर के थके हुए मस्तिष्क को ताजा कर सकें। इससे केवल उन्हीं लड़कों को, जो स्कूल में शिक्षा पाते हैं, लाभ नहीं होगा; अन्य लड़कों को भी जो पढ़ने से वंचित रहते हैं, इस प्रकार की योजना बहुत लाभप्रद हो सकती है। यदि गवर्नमेंट और अन्य सामाजिक शिक्षण-केन्द्र इस विषय में अधिकाधिक ध्यान देने लगे तो लड़कों का फिल्मी पागलपन भलीभाँति दूर किया जा सकता है।

रेडियो पर

शिक्षाविदों ने शिक्षा-क्षेत्र में 'रेडियो प्रोग्राम' को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है; क्योंकि यह बालक के ज्ञान को विकसित और व्यापक बनाने में बहुत अधिक सहायता पहुँचाता है। यह निरन्तर होनेवाले कार्यों और व्यापारों से अवगत कर बालकों में एक नई और स्वाभाविक चेतना और विचारधारा को जन्म देता है; अतः बालक के विकास के लिये यह जरूरी तथा लाभप्रद है।

अमेरिका और इंग्लैण्ड में बालक और रेडियो में निकटस्थ और घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित किया जा रहा है, जिससे बालक दुनियाँ को समझ कर उससे अपना गहरा सम्बन्ध जोड़ सकें। कुछ दक्षियानूसी आलोचक यह कह सकते हैं कि पश्चिमी विचार-धारा का अनुकरण हमारे देशवासियों के लिए मुफीद न होगा और हमारे देश में रेडियो सेट अधिक न होने से इसका लाभ व्यापक रूप से सब बालकों को नहीं मिल सकता। इन आलोचकों की दूसरी बात कुछ सीमा तक सही है। अमेरिका में ८० प्रतिशत घरों में रेडियो सेट होने से शिक्षा की दृष्टि से इसका पूरा लाभ लिया जा सकता है। पर भारतवर्ष की ४० करोड़ जनता के लिए चन्द हजारों की संख्या में रेडियो सेट होने से शिक्षा-जगत में इससे इतना लाभ नहीं हो सकता। इस पर भी बहुत से हैसियत वाले व्यक्तियों तथा स्कूल संस्थाओं के जिम्मेदार अधिकारियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि इस महत्वपूर्ण साधन का शिक्षा में उपयोग करें। जिस प्रकार स्कूल में अच्छा फर्नीचर, पुस्तकालय तथा योग्य अध्यापकों का होना अनिवार्य समझा जाता है ठीक उसी तरह रेडियो का होना भी उतना ही आवश्यक है। प्रत्येक सेट के लिये केवल ३००) का अस्थायी खर्चा ही होता है। इस सम्बन्ध में गाँवों के प्रश्न को हल करने के लिये यू. पी. की जनतान्त्रिक हुकूमत ने इस महत्व को समझ कर गाँवों के लिये कई हजार रेडियो सेट खरीदने का प्रस्ताव स्वीकार कर बहुत सीमा तक इसे कार्यान्वित भी किया। जिन गाँवों में स्कूल न थे, वहाँ उनके पटवारी और पटेलों के घरों पर



रेडियो सेट रक्खे गये जिससे बालक और प्रौढ़ सभी लाभ उठा सकें। रेडियो का दैनिक कार्यक्रम कब और क्या होना चाहिये ? रेडियो का कार्यक्रम दिन के दो बजे के स्थान पर प्रातःकाल १०-३० बजे होना चाहिये, जिससे सब स्कूल के विद्यार्थी उसे स्कूल में ही सुन सकें। विशेष रूप से रविवार का सायंकाल ७½ बजे का कार्यक्रम दिलचस्प और श्रमसिद्ध होना चाहिये, जिससे बालक अपने माता-पिताओं के साथ इस कार्यक्रम का आनन्द उठा सकें। गाँव वालों के लिये उनके अनुकूल कार्यक्रम का संचालन होना अत्यन्त आवश्यक है। यह कार्यक्रम १५ मिनट से अधिक का न हो तथा साथ ही साथ यह कार्यक्रम भारत के प्रमुख २ स्टेशनों से उनके आसपास बोली जाने वाली भाषा में हो।

बच्चों के कार्यक्रमः—

साधारण रूप से सारी दुनियाँ में और विशेषतया भारतवर्ष में ऐसे कार्यक्रमों के लिए अभी नये रूप से ही कदम उठाये जा रहे हैं। माता-पिता, शिक्षक, शिक्षण-शास्त्री तथा रेडियो के अधिकारी-गण बालक की शिक्षा और मनोरञ्जन के लिए इसका अच्छा मापदण्ड स्थिर नहीं कर सके। इस ओर घरों, स्कूलों और राज्यों द्वारा कुछ प्रयत्न जरूर हुए हैं, पर अच्छाई और परिणाम की दृष्टि से इस बारे में कई प्रश्न मस्तिष्क में चक्कर लगा रहे हैं। क्या आज के रेडियो-कार्यक्रम बच्चों के लिए हितकर हैं ? यदि नहीं तो क्यों नहीं ? अच्छे और लाभप्रद कौन और कैसे हो सकते हैं ? कितना और कब २ सम्भव है ? भिन्न २ रुचि और आयु के विभेद के समन्वय का मार्ग क्या है ? और इन परिस्थितियों में जिम्मेदार घरों, स्कूलों और राज्यों द्वारा क्या २ और कैसे कदम उठाये जा सकते हैं ?—आदि कई महत्वपूर्ण प्रश्नों का हल जरूरी है। शिकागो में रेडियो पर बच्चों द्वारा हँसी के कार्यक्रमः—शिकागो की नेशनल ब्राडकास्टिंग कम्पनी से ८ से १४ वर्ष के बच्चों को 'क्रिज क्रिडज' (बाल विदूषक) कहे जाते हैं। वह बालकों को माता-पिताओं तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों का उत्तर देने के लिए रेडियो पर आमंत्रित करती है। प्रत्येक कार्यक्रम के विजेताओं के नाम घोषित किये जाते हैं। एक दूसरे की सफलता पर आनन्द मनाना उनकी



मित्रता के विकास का सबूत होता है। ये बालक-विदूषक कई विषयों में दिलचस्पी लेने वाले होते हैं, उनकी कई अन्य अच्छी प्रवृत्तियाँ होती हैं, वे किताबी कीड़े नहीं होते वरन् स्कूल के जिन्दादिल बालक होते हैं। वे स्कूल की सभी प्रकार की गति-विधि में भाग लेते हैं।

इन लोगों को चुनने या पसन्द करने के कई तरीके होते हैं। सर्व-प्रथम देश के सभी भागों में समाचार-पत्रों तथा बालकों के मेगजीनों द्वारा रेडियो पर बोलने के लिए प्रार्थना-पत्र देने की सूचना निकाली जाती है। उसके बाद कई प्रार्थियों से मुलाकात होती है। स्कूलों, माता-पिताओं, मित्रों तथा शिक्षकों द्वारा भी कभी २ नाम प्रस्तावित किये जाते हैं।

कुछ मनोवैज्ञानिक तथा शिक्षाविद् इस प्रकार के कार्यक्रम को दोष-पूर्ण बतलाते हैं क्योंकि इसमें चुनने वाले बालकों के दिलों में हीनता के भाव बढ़ते हैं, जिससे लाभ के स्थान पर हानि होती है।

कुछ शिक्षा-शास्त्रियों का मत है कि यह कार्यक्रम सब प्रकार से कई प्रकार के बच्चों के कार्यक्रम की पूर्ति करता है। इनका कहना है कि ऐसे कार्यक्रम में ज्ञान, वृद्धि और विवेक का द्वन्द्व बालकों में उतना ही आनन्द और सम्मान का भाव विकसित करता है, जितना खेलों में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त अन्य कई फायदे हैं, जैसे बालक-सम्मेलन में एक दूसरे का सहयोग और अपने विचारों तथा अनुभवों का सर्व-साधारण में आदान-प्रदान। शिकागों के तीन हजार स्कूली बच्चों में से २००० ने सर्व-सम्मति से इसकी प्रशंसा की और कुछ ने हीनता की भावना से दूर रह कर प्रतियोगिता में आने के लिए अवसर माँगा।

इस कार्यक्रम के लाभों को आँकने लगना अभी शीघ्रता होगी। अभी ऐसे कार्यक्रम और इनमें सम्मिलित होने वाले बालकों का अधिक अध्ययन जरूरी है। यह एक नया तथा दिलचस्प प्रयोग है, जिसमें अमेरिकन बालक बड़ा रस लेते हैं। ठीक ऐसा ही प्रयत्न भारतवर्ष में होना चाहिए, जिसमें बालक प्रमुख भाग ले। कुछ कार्यक्रम प्रौढ़ों के ढंग पर किया जा सकता है, पर बालकों के ढंग और बोली में।

बालकों के क्या २ कार्यक्रम हो सकते हैं :—

(१) समाचार—रेडियो पर बोलने वाले बच्चों की अवस्था ६ से १५



वर्ष की होनी चाहिये। बोलते समय पुस्तकें, मानचित्र व लिखित सामान का सहारा नहीं लेना चाहिये। यदि वे स्कूल के बालक हैं तो स्कूल के विद्यार्थियों की गति-विधि का अवश्य ध्यान रक्खा जाना चाहिये। समाचार में उनके कार्यक्रमों की व्याख्या, भौगोलिक व्याख्या तथा कक्षाओं को सजाने की स्वतन्त्र प्रवृत्तियों का उल्लेख होना चाहिये। समाचार का समय ५-७ मिनट का होना चाहिये। भाषा सरल, स्पष्ट तथा सीधी होनी चाहिये। अधिक समय लेने वाले विषयों का बहिष्कार होना चाहिये। कहने का ढंग रोचक, प्रवाहमय तथा उपयुक्त होना चाहिये, जिस से कम समय में अधिक लाभ पहुँचाया जा सके। विषयों का चुनाव एक महत्वपूर्ण बात है। विषय तर्क-संगत और रुचिकर हो और साथ ही साथ समाचार के सामान्य तत्व के महत्व को स्वीकार करता हो। बालकों को यह नहीं मालूम होने देना चाहिये कि उनके द्वारा गलत और खराब सूचनायें दी गई हैं। समाचार रोचक ढंग से सुनायें जाने चाहिये, जिसमें बच्चों को बहुत आनन्द मिले। यदि समाचार में किसी बात को समझाई और स्पष्ट की जाय तो उसके संकेत बिन्दु ठोस, वास्तविक और स्पष्ट होने चाहिये, जिससे उनके साथ में ठीक २ काल्पनिक चित्र आ सके और उसका मस्तिष्क उन चित्रों के आधार पर कुछ काम करने में प्रवृत्त हो सके। बच्चों को किसी भी बात पर शीघ्र फैसले देने से बचना चाहिये। खबरें इतिहास, भूगोल तथा विज्ञान के पाठों से सम्बन्धित होनी चाहिये, खबरें स्थायी मूल्य रखती हों जैसे भूगोल और विज्ञान की खोजों और आविष्कारों की ताजा कहानियाँ।

रेडियो खबरें भेजने का नया ही साधन होने से इसकी समाचार पत्रों व अन्य साधनों से तुलना नहीं की जा सकती। इन खबरों में महिलाओं तथा बालकों से सम्बन्ध रखने वाले अन्य तत्वों के संगठन का भी समावेश होना चाहिये।

(२) साहसिक कहानियाँ और कार्य:— कहानियाँ उत्साह-वर्धक, सच्ची तथा सरल हों। बच्चों के कोमल साहस पूर्ण कार्य निस्सन्देह सुनने वाले बच्चों के लिये स्फूर्तिप्रद, उत्तेजक तथा दिलचस्प साबित होंगे।

(३) बच्चों द्वारा अभिनय के रूप में संवाद-प्रधान कहानियाँ:— अमूर्तक व सुन्दर ढंग से तैयार किये हुये मौखिक, काल्पनिक



उपाख्यानों का अभिनय बच्चों के रेडियो कार्यक्रम के विकास का उज्ज्वल भविष्य है। ऐसा कार्यक्रम कुछ ऊँची उम्रवालों के लिए ठीक रहेगा।

(४) वेराइटी शोज़:— यह कार्यक्रम कम प्रतिभाव कुन्द बालकों के लिए उपयुक्त है, जिसमें अस्तव्यस्त गाने व अनुपयुक्त संगीत तथा मस्ती से किये गए हाव-भावों द्वारा बालकों को आनन्द प्राप्त होता है।

(५) खेल गति:— संयम के साथ खेला गया खेल, पहेली तथा संवाद का सम्मेलन बच्चों को रुचिकर तथा उत्तेजित करने वाला सिद्ध होगा।

(६) वाद्य यन्त्रों पर संगीत:— वाद्य यन्त्रों पर संगीत, सहगीत और वोकल म्यूज़िक आदि कार्यक्रम दिए जा सकते हैं।

(७) बच्चों के आसपास का जगत:— समुद्रों में, आकाश में, भूमि पर, किनारों पर, वर्ष पर तथा जंगलों में जल-जीवों, पशुओं, चिड़ियाओं, कीड़े मकोड़ों आदि द्वारा किए गए या होने वाले साहसिक कार्यों का उल्लेख लाभप्रद तथा मनोरञ्जक होगा। ये बच्चों के लिए शिक्षा-क्षेत्र में मोहक, आश्चर्यप्रद बातें होंगी। इस बारे में प्रमुखता ऐसे बच्चों को दी जानी चाहिए, जिनमें अपने जीवन के अनुभवों का विस्तार अधिक हो, नहीं तो उन प्रौढ़ों को अवसर दिया जाना चाहिए जो ऐसी जिन्दगी के अनुभवों से क़ाफी अच्छी जानकारी रखते हों। इन जीव जन्तुओं की जिन्दगी को देखने की गहरी और ठीक रूप से देखने की आदत पर जोर डालना चाहिए। इस बारे में यदि पहले से तैयार की हुई कहानियाँ कही जाएँ तो वे भी बालकों द्वारा कही जानी चाहिए।

(८) भिन्न २ देशों के बालकों का वर्णन:— भिन्न २ देशों के हाल सुनने के लिए बालक बड़े उत्सुक रहते हैं; अतः इस प्रकार का कार्यक्रम बालक के हृदय को स्पर्श करने वाला होगा।

(९) प्रश्नोत्तर:— बालकों के रोजमर्रा के जीवन से उत्पन्न प्रश्नों का उत्तर दिया जाना चाहिए, जिससे सुनने वाले बच्चों को अपनी कठिनाइयाँ सुलभाने की प्रेरणा तथा साहस मिले।

(१०) कला का महत्व:— कला की ओर सर्व साधारण की प्रवृत्ति, अच्छे चित्रों, कहानियों, खुदाई के कामों के ठीक २ महत्व को समझने का प्रयत्न तथा साथ ही साथ कलाकारों की कृतियों तथा उनकी कार्य-प्रणाली पर बातचीत करना बालक में कला की प्रवृत्ति पैदा करने का अच्छा साधन होगा।

(११) संगीत, स्पोर्ट्स, होबीज कार्यक्रम:— ये कार्यक्रम बच्चों के ऊपर विशेष प्रभाव डालने वाले होंगे।

इसके अतिरिक्त वे अन्य कार्यक्रम जो बालकों की चेतना को जगाने में समर्थ, दिलचस्प, शिक्षाप्रद तथा मनोरंजक हों, लिए जा सकते हैं। अभी रेडियो पर बच्चों द्वारा कार्यक्रम प्रारम्भ करने के पहले इस तरह के कई कार्यक्रमों पर अच्छी तरह से विचार विनिमय करना जरूरी है।

घर स्कूल तथा राज्य की जिम्मेदारियाँ:—

घर में ऊपर कह चुका हूँ कि भारतवर्ष अपनी गरीबी के कारण रेडियो सेट रखने में असमर्थ है। इसके बावजूद कुछ अच्छी स्थिति वाले घर भी हैं, पर वे अशिक्षित होने से और इसके महत्व को न समझने के कारण नहीं खरीदते। यह सौभाग्य की बात है कि धीरे-धीरे रेडियो जिन्दगी के प्रत्येक क्षेत्र में अपने महत्व को स्वीकार कराता जा रहा है। पर इसके द्वारा बच्चों के सम्भाव्य कार्यक्रमों पर विचार करना काफी जरूरी है। भारतवर्ष के गरीब होने और अशिक्षित होने से राज्य का यह कर्तव्य हो जाता है कि यदि प्रत्येक घर रेडियो न रख सके तो कम से कम प्रत्येक गाँव में जनता की लाभ की दृष्टि से एक रेडियो सेट अवश्य रखा जाय। भारत से अशिक्षा को दूर करने में अभी समय लगेगा, अतः मेरा उन हैसियत वाले घरों से अनुरोध है, जो रेडियो सेट रख सकते हैं कि वे अवश्य रखें। यह एक दुर्भाग्य की बात है कि इसका प्रारम्भ उच्च श्रेणी वाले लोगों से हुआ। रेडियो पर बालकों का कार्यक्रम अभी शैशव अवस्था में ही है, फिर भी मैं प्रत्येक माता-पिता से कहूँगा कि वे इन बच्चों के कार्यक्रमों के मूल्य को आँकने में बुद्धिमानी और सहानुभूति से काम लें। वे रेडियो पर बच्चों के साप्ताहिक कार्यक्रम में भाग लेने के लिये अन्य माता-पिताओं को बच्चों



सहित आमन्त्रित करें और सुन चुकने के बाद इसपर सहानुभूति से विचार करें—ग्रहस करें। ऐसा करना राष्ट्रवासियों के लिए बहुत विकास प्रद होगा। माता-पिताओं को अपने दलों में ही उसके अध्ययन की योजना बनानी चाहिए।

स्कूल:—

रेडियो के मापदण्ड को ऊँचा उठाने में स्कूल की बड़ी जिम्मेदारी है। स्कूल को बराबर देखते रहना चाहिए कि रेडियो शिक्षा जगत में अपना उचित सहयोग प्रदान कर रहा है या नहीं। प्रत्येक मिडिल-स्कूल में एक रेडियो अवश्य रहना चाहिए। रेडियो कार्यक्रम स्कूल के बालकों के सामान्य ज्ञान और आपसी मेल-जोल आदि के बढ़ाने में तथा उनकी बुद्धि और विवेक को सोचने और जानने के लिए काफी अवसर देता है। संक्षेप में स्कूल और शिक्षक को सब से ही ज्यादा इस आन्दोलन का नेतृत्व और संचालन करना है।

राज्य:—

भारत में रेडियो पर सरकार का आधिपत्य होने से सरकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि रेडियो पर बच्चों के कार्यक्रम से सम्बन्धित माता-पिता, शिक्षक, लेखक, निर्देशक और शिक्षा-शास्त्रियों का संगठन करें, जिससे सरकार द्वारा इस योजना को कार्यान्वित किया जा सके। इसके लिए निम्न साधनों से भी काम हो सकता है:—

(१) एक 'अखिल भारतवर्षीय रेडियो परिषद्' बनाना, जिसमें माता-पिताओं, शिक्षकों, लेखकों, शिक्षाकारों, निर्देशकों तथा अनुभवी शिक्षा-शास्त्रियों के प्रतिनिधि हों और ये सम्मिलित रूप से विचार कर जनरल इण्डियन रेडियो ब्राडकास्टिंग के डायरेक्टर को राय दे सकें।

(२) अखिल भारतीय रेडियो—शिक्षक पदाधिकारी नियुक्त किये जायें तो स्कूलों और घरों से सम्पर्क स्थापित कर शिक्षकों, माता-पिताओं तथा बालकों से सूचनायें प्राप्त करें। इससे बालकों को अभिरुचि के अनुकूल कार्यक्रम बनाने में मदद मिल सकेगी।

(३) बच्चे क्या सुन रहे हैं तथा इनके माता-पिताओं तथा शिक्षकों को बच्चों के लिए किन २ की आवश्यकताएँ अनुभव हो रही हैं ? आदि बातों को बताने वाला नेशनल सर्वे होना चाहिए, जिससे बच्चों के रेडियो-प्रोग्राम को उठाने में निर्णयात्मक निर्णय किया जा सके ।

राज्य का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि प्रत्येक स्कूल में रेडियो है या नहीं । इस आधार को ध्यान में रख कर वह उसे शिक्षा का काम करने की अनुमति दे ।

इस बारे में प्रत्येक राज्य को यू. पी. जनतान्त्रिक हुक्मत की मिसाल का अनुकरण करना चाहिए, जिससे गरीब और अशिक्षित गाँवों में एक-एक रेडियो सेट द्वारा राष्ट्र के पुनर्निर्माण में प्रचार किया जा सके तथा सहयोग लिया जा सके ।

खेल के मैदानों, क्रीड़ागृहों तथा विहार-वाटिकाओं में

खेल बालक के विकास का यथोचित रूप से स्वीकृत सर्वोपरि महत्वपूर्ण अंग है। खेल उसको आनन्द एवम् स्वतन्त्रता से युक्त वातावरण प्रदान करता है, जो उसके विकास के लिये अत्यावश्यक है। खेल की प्रवृत्ति का समाधान बालक के मानसिक, नैतिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिये वांछनीय है। अवस्थावस्था से लेकर आगे तक बालक अपने चतुर्दिक एक प्रकार का सम्पर्क-वैविध्य दिखाता हुआ खेल ही खेल में अपने ऐन्द्रिय तथा निर्वाहक प्रतिव्यापारों को विकसित करता है, जिससे उसके अंग-प्रत्यंग को एक प्रकार की गति-शीलता का अभ्यास मिलता है। पर्यवेक्षण एवम् निर्णय-क्षमता, दक्षता, सहयोग, दलनिष्ठा, कर्तृत्व, साहस, युक्तिचातुर्य, निस्वार्थपरता, आत्म-नियंत्रण, आत्मोत्सर्ग, आदि इन सबका उपार्जन बालक क्रीडास्थलों में ही भली प्रकार करता है।

बहुजनाकीर्ण नगरों में क्रीडाभूमि की आवश्यकता

ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसी भूमि काफी होती है, जहाँ बालक खेल सकें, परन्तु हमारे वर्तमान बहुजनाकीर्ण नगरों में क्रीडाभूमि की सुलभता एक विकट समस्या के रूप में सामने आती है। गलियों के संकीर्ण मार्गों को छोड़ कर बालकों के खेलने को कोई स्थान बाकी नहीं बचता और वहाँ भी बालक को मोटरों आदि के आवागमन का भय बना रहता है। यह भी पाया गया है कि बिना किसी मनोरंजनात्मक और व्यावसायिक व्यापार के गलियों में खेलने वाले बालक उद्दण्ड टोलियों के संगठन में अग्रणी हो जाते हैं, जो अनेक प्रकार के दूषणों की शिकार होती हैं। कहा जाता है कि बड़े-बड़े नगरों के बहुजनाकीर्ण भागों में बाल-दूषणता का उत्तरदायित्व भी इसी संगठन पर है। इन्हीं परिस्थितियों के कारण क्रीडास्थलों के निर्माण की आवश्यकता है और इन स्थलों का नगर के विभिन्न भागों में इस प्रकार वितरण होना चाहिये कि उनसे समस्त बाल-युवक लाभ उठा सकें। उनसे अधिकाधिक लाभ उठाने के लिये



यह आवश्यक है कि क्रीड़नमितयोजन-खेलों का आविष्कार हो और बालकों का संगठन भी ऐसा हो कि प्रत्येक प्राप्त हो सकने योग्य भूअंश का कुछ न कुछ उपयोग हो सके।

क्रीड़न—एक ग्रामीण आवश्यकता भी

नगरों में खेल की आवश्यकता के लिये बड़े जोरों की माँग और चिल्लाहट है, लेकिन जब कोई इस सम्बन्ध में ग्रामीण-समाज का उल्लेख करता है तो यह उत्तर दिया जाता है कि ग्रामीण बालकों के खेलने को प्रचुर भूमि उपलब्ध है तथा उन्हें अपने दैनिक खेलों और घर के कामों में ही काफी व्यायाम मिल जाता है। यह सत्य है कि नगरों में खेल के लिये भूमि की बड़ी आवश्यकता है तथा इस बात के भी ठोस प्रमाण हैं कि खेल-आन्दोलन का ग्रामीण वस्तियों में भी विशेष महत्व है। प्रगटतः ग्रामीण बालक एक स्वस्थ प्राणी होता है, लेकिन उसके शरीर का विकास प्रायः आकर्षण हीन और भद्दा होता है। ऐसे बालक जब पाठशाला में प्रवेश करते हैं, तो वहाँ शारीरिक सम-नियमन के अभाव में वे अच्छी तरह व्यायाम भी नहीं कर सकते। अतः सामाजिक उपयोगिता के नाते ग्रामीण बालकों को भी खेल की आवश्यकता है। ग्रामीण बालक अपने समवयस्क अन्य युवकों के मैत्रीपूर्ण सम्पर्क में जब तक नहीं लाया जाता तब तक वह संकोची और संकीर्ण मस्तिष्क वाला ही बना रहेगा। ग्रामीण वस्ती में हर तरह से एक ऐसे जनपदीय स्थान की आवश्यकता रहती है, जहाँ युवा एवम् वृद्ध समान रूप से एकत्रित हो सकें और आनन्द उठा सकें।

पाश्चात्य देशों में बाल-क्रीडास्थल—आन्दोलन

गत शताब्दी के अन्तिम वर्षों में पाश्चात्य देशों के वर्तमान बहुजनाकीर्ण कस्बों और नगरों में विहार-वाटिकाओं, क्रीडास्थलों, और क्रीडा-केन्द्रों की व्यवस्था की माँग तथा मानसशास्त्रियों और शिक्षाविदों की क्रीडा के महत्व के सम्बन्ध में स्वीकृति ने बाल-क्रीडास्थल-आन्दोलन को जन्म दिया। यूरोप और अमेरिका के विभिन्न देशों में क्रीडा-आन्दोलनों का अधिक जोर रहा। कुछ उदार आश्रयदाताओं की देन पर निर्भर रहने के बजाय आज क्रीडास्थल-आन्दोलन उस सीमा तक बढ़ गया



है कि इसकी स्थिरता और विकास के लिये सैकड़ों प्रकार के सार्वजनिक कर उगाहे जा रहे हैं। यह परिवर्तन कई अन्य पहलुओं से भी विचारणीय है। क्रीडा क्षेत्र का विस्तार वहाँ पुरुषों और महिलाओं के लिये समान रूप से हुआ है। प्रारम्भिक अवस्था में कार्यक्रमों की सूचियों में कुछ साधारण खेलों का उल्लेख मात्र रहता था, किन्तु आज उनके कार्यक्रम में नाना प्रकार की प्रवृत्तियों का समावेश है, जिनमें संगीत, उद्यान क्रीडा, हस्तकला, शिल्प सहचारिता, विनोद क्रीडा केन्द्र तथा अन्य कई बातें जिन्हें हम घर और पाठशाला के क्षेत्र से ही सम्बन्धित सोचा करते थे, सन्निहित हैं। सन् १९३४ में अमेरिका के ६८० नगरों में लगभग १३०००० क्रीडास्थल थे और २५००० खेल के शिक्षकों की, बालकों के मनोरंजन की क्रियाओं का नेतृत्व करने तथा उनके साथ खेलने कूदने की दृष्टि से व्यवस्था थी। ब्रिटेन की राष्ट्रीय क्रीडन परिसरीय संस्था की स्थापना सन् १९२५ ई० ही में हुई थी।

भारतवर्ष में बाल-क्रीडा स्थल आन्दोलन

साधारण भारतीय नगर बालकों के इस अत्यधिक सारभूत कार्य में पिछड़े रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि बम्बई और कलकत्ता जैसे विशाल नगरों में स्विंग, सी साज, स्लाइड जैसे मनोरंजन के उपकरणों से युक्त विहार वाटिकाओं और क्रीडास्थलों की व्यवस्था की गई है, परन्तु साधारणतया भारतवर्ष में क्रीडास्थल व्यवस्थित और आवश्यक साधन सामग्रियों से सम्पन्न नहीं है। अधिकांश प्रांत तो इस सम्बन्ध में अभी तक पिछड़े हुए हैं तथा स्थानीय म्युनिसिपैलिटियों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को अभी तक राष्ट्र निर्माण की दृष्टि से बाल-क्रीडास्थलों के महत्व को भली प्रकार समझना बाकी है। बाल संस्थाओं, की दौड़धूप के फलस्वरूप कुछ सार्वजनिक संस्थाओं, उदार नागरिकों तथा अभिरुचि रखने वाले व्यक्तियों ने म्युनिसिपैलिटियों द्वारा संचालित विहार-वाटिकाओं, तथा खुले स्थानों में मनोरंजनपूर्ण सामग्री जुटाने में कुछ सहयोग प्रदान किया है, वह इस क्षेत्र की भारी आवश्यकता को देखते हुए नगण्य सा है।

बाल-विहार-वाटिकाएँ

विहार-वाटिकाएँ, वृत्तों और दूर्वादल के आकर्षक आच्छादनों से



सुशोभित होती हैं—जहाँ मनुष्य विश्राम कर सकते हैं, मन-बहलाव के लिए चहल-कदमी कर सकते हैं तथा एकान्त में लम्बी चौकियों पर बैठ कर पढ़-लिख सकते हैं। विशेषतः लम्बी चौकियों का विहार-वाटिकाओं में मित्रों की गपशप से अभिन्न सम्बन्ध होता है। मगर विशेष में वायु-वेग से स्पन्दित जलस्रोत तथा मनमोहक जलाशय बनाये जाकर प्राकृतिक पर्यटन का सौन्दर्य बढ़ाया जा सकता है। उनमें बगुले, बतकें और मछलियाँ स्वच्छन्द विचरें, जिन्हें चुगा देकर बालक-बालिकाएँ विशेष आनन्द प्राप्त करें। यदि विहार-वाटिकाओं में एक चिड़ियाघर भी हो, जहाँ कुटुम्ब समेत बालक चित्र-विचित्र पशु-पक्षियों का पर्यवेक्षण कर सकें तो उत्तम है। विहार-वाटिकाओं के कुछ कोने झोंपड़ी से लेकर कॉलेजों तक विभिन्न आयु वाले बच्चों के लिए मनोरञ्जन के उपयुक्त उपकरणों से सजित होने चाहिए। विहार-वाटिका के प्रबन्धक को कल्पना-जगत में विचरण करने वाले बालकों के मन में इस ओर एक प्रकार का विलोभन पैदा करना चाहिए। वहाँ एक या दो चरखे या गुफाएँ, चौड़ी जड़ों के फैलाव वाले वृक्ष-ठूठ, बालू से भरे गड्ढे, छोटी-छोटी दीवालें और सम्भव हो तो एक कम गहरा जलाशय भी होना चाहिए।

बाल-क्रीड़ा-केन्द्र

हमारी योजनाबद्ध क्रीडन विषय वातचीत के सम्बन्ध में दो प्रकार के क्रीड़ा-केन्द्र मुख्यतः विचारणीय हैं। इनमें एक तो वे क्रीड़ा-स्थल हैं जो चौदह वर्ष तक की आयु के बालकों के लिए खोले जाते हैं और दूसरा स्थान उन क्रीडन-परिसरों का है, जो चौदह वर्ष से ऊपर की आयु वाले तरुणों और प्रौढ़ों के लिए होते हैं।

स्थापना और आकृति

क्रीड़ा-स्थानों में यदि पर्याप्त साधन-सामग्री हो पर बालकों के लिए वे सुविधाजनक न हों तो वे विशेष उपयोगी नहीं हो सकते। बालक उनमें सुविधापूर्वक पहुँच सकें, इस दृष्टि से उनके स्थान के निश्चय करने में दूरी का ध्यान रखना आवश्यक है। आदर्श दूरी आधा मील है, जहाँ बालक आसानी से जा सकते हैं, परन्तु बालकों की आयु की दृष्टि से

बालकों के प्रतिद्वन्द्विता-निर्मित खेलों के लिए अधिक स्थान की आवश्यकता होती है, अतः ऐसे आकार वाले क्षेत्रों की व्यवस्था करनी चाहिए कि उपकरण सामग्री का जमघट न हो और विभिन्न खिलाड़ी दल एक दूसरे से पर्याप्त दूरी पर रहें। चौदह वर्ष से ऊपर की वय वाले बालकों तथा प्रौढ़ों के लिए क्रीडन-क्षेत्रों का विस्तार कुछ अधिक बढ़ा होगा। यह सूचित किया जाता है कि १० से २० एकड़ तक विस्तार वाला क्षेत्र, विविध रुचियों की दृष्टि से यथेष्ट सामग्री जुटा सकने की दृष्टि से यथेष्ट होगा।

छोटे बालकों को बड़े खिलाड़ियों के मार्ग से बचाने के लिए क्रीड़ा-स्थलों को कुछ भागों में बाँट देना होगा । क्रीड़ा-स्थलों को सामान्यतया तीन भागों में बाँट देने से काम चल सकता है :—उसका आधा भाग १० वर्ष से ऊपर की आयु वाले बालकों के लिये, $\frac{1}{3}$ भाग के लगभग १० वर्ष से ऊपर की आयु वाली बालिकाओं के लिये (अगर बालिकाओं को बाहर आने-जाने की सामाजिक स्वतंत्रता हो), और शेष $\frac{1}{3}$ के लगभग रहा भाग १० वर्ष से नीचे की आयु वाले बालक-बालिकाओं के लिए निर्धारित कर दिया जाय । रात्रि का समय बालकों के आकर्षक पर्यटन की सौन्दर्यानुभूति की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । छायादार वृक्ष, लताएँ, पौधे, पुष्प और दुर्वाच्छादित भूमि क्रीड़ा-स्थल की सुन्दरता में वृद्धि करते हैं । क्रीड़ास्थल के प्रवेश-द्वार पर, किनारों पर, मार्गों के दोनों बाजुओं पर तथा भवनों के समीप इन्हें रोपा जा सकता है ।

क्रीड़ा-केन्द्रों की चहारदीवारी महत्वपूर्ण है। इससे बालकों का गलियों की आमद-रफ्त से बचाव रहता है, निरीक्षण का काम सहज हो जाता है, अनुशासन की समस्या सुलभ जाती है, अवांछित व्यक्तियों को परे रखा जा सकता है तथा केन्द्र की साधन-सामग्री भी सुरक्षित रहती है। रात्रि के समय क्रीड़ा-स्थल खुले रखे जाने चाहिए। सम्भवतः दिन का यही भाग ऐसा होगा, जिसमें चहल-पहल अधिक रहेगी क्योंकि इसी समय माता-पिता अपने-अपने बालकों को अपने साथ लाते हैं और सारा का सारा परिवार क्रीड़ा में रत होता है। इस अवस्था में क्रीड़ा-स्थानों में प्रकाश का प्रबन्ध भी आवश्यक हो जाता है।

सजाव-साधन

सामान्यतः सजाव की समस्या चार शीर्षकों के अन्तर्गत विचारी जा सकती है:—(१) स्थलीय सौन्दर्य, (२) खेलने की सामग्री, (३) खेलने के लिए अन्य आवश्यक सामग्री तथा (४) अन्य विविध आवश्यक वस्तुएँ। बालकों तथा माता-पिताओं की सुख-सुविधा के लिए यथेष्ट सामग्री होनी चाहिए। एक व्यवस्थित क्रीड़ा-केन्द्र की सजाव-सामग्री निम्न प्रकार की होगी:—

स्थलीय-सौन्दर्य

विश्राम-गृह, तैरने की तलैया, दौड़पथ, पोट मारने या कूदने फाँदने के पोखर व गड्ढे, खेल के लिये अलग-अलग मैदान आदि।

खेल की सामग्री

स्विंगज, जाइएट स्ट्राइड, होरिजैण्टल बार, सी सॉज, स्लाइड्स, पैरेलल बार्स, ट्रेवलिंग रिंगज, स्पिनिंग रिंगज, भेरी गो राउण्ड, वेलेसिंग बोर्ड, स्लाईडिंग पोल, सैण्डविन आदि आदि।

खेल के लिये अन्य आवश्यक वस्तुएँ

खेल की गेंदें तथा दौड़, कूद, संधान आदि के लिये अन्य आवश्यक सामग्री।

अन्य विविध

प्रारम्भिक चिकित्सा सामग्री, वेखें, बेलन, रचक यंत्र, फीता, सुइयाँ
आदि आदि ।

तैरने के जलाशय, डाँड चलाने की तलैया और अखाड़े

साधन सामग्री से भली प्रकार सुसज्जित क्रीड़ा-केन्द्रों से युक्त नगरों में तैरने के जलाशय, डाँड चलाने योग्य तलैयाँ, बालकों के लिये क्रीड़ा-मण्डप और अखाड़े आदि की सुविधा करनी चाहिये । बालकों की सुरक्षा की दृष्टि से इनकी सँभाल व देख-रेख निरोंचकों द्वारा होनी चाहिये । तैरने के जलाशयों तथा अखाड़ों की स्थिति और आकार-प्रकार से जनता का परिचय होना चाहिये । प्रत्येक बालक जलाशय के पार जाना और उसकी थाह लेना चाहता है । तैरने की तलैया सामान्य-तथा वृत्ताकार या आयताकार ठीक रहती है । उसका विस्तार अधिक नहीं होना चाहिये और गहराई बीच में दो फीट से अधिक न हो— इसका ध्यान रखना चाहिए । तलैया चूना, सीमेन्ट आदि से मजबूत बनाई जानी चाहिये परन्तु नदी या झील के तटों से समता मिलाने की दृष्टि से इसके किनारों पर इर्द-गिर्द बालू बिखेर दी जा सकती है । अक्सर कभी-कभी तलैया का पानी बहा देना चाहिये और उसे फिर से भरने के पहले उसे अच्छी तरह सूखने देना चाहिये ।

खेल-शिक्षक

यह स्पष्ट है कि अगर मनोरंजन और क्रीड़ा के केन्द्र योग्य निर्देशन में न रहें तो, उनके उद्देश्यों की हत्या ही हो जायगी। एक अनिर्देशित क्रीडास्थल की तुलना किसी बड़ी गली या किसी ऐसे बहुजनाकीर्ण स्थान से की जा सकती है, जहाँ गुण्डागिरी, स्वार्थपरता, स्वेच्छाचारिता और क्षेत्रीय सम्पत्ति की तोड़-फोड़ का बोलबाला हो। कोई भी विचारवान माता-पिता अपने बालकों को ऐसे स्थान पर नहीं भेजेंगे, जहाँ वे गाली-गलौच बकने, दोषपूर्ण आदतें ग्रहण करने, अस्वच्छ रहने तथा अशिष्ट व्यवहार करने आदि की बातें सीखें। दूसरी ओर क्रीडाकेन्द्र एक कार्यन्वस्त और विशेषतापूर्ण स्थान है, जहाँ



समस्त श्रेणियों के बालक क्रीड़ा में भाग लेने एकत्रित होते हैं। शिक्षक की उपस्थिति अनुशासन और आज्ञा पालन को प्रोत्साहन देती है। विभिन्न प्रकार के खेलों का समय और स्थान व्यवस्थित बने रह सकते हैं। नाना प्रकार की विविध प्रक्रियाएँ सिखाई जा सकती हैं, ताकि बालकों पर स्वयं व्यवस्था का भार पड़े तो वे उसे संभाल सकें। विभिन्न खिलाड़ियों में अपनत्व की भावना को उनके परिचित खेलों को अच्छी तरह से खेलना सिखाया जाकर उत्साहित किया जा सकता है। संगठित दल स्पर्धा भी सफल क्रीड़ास्थलों में नियमित रूप से प्रारम्भ की जा सकती है।

क्रीड़ास्थलों में खेल-शिक्षक का दायित्व एक अभिभावक से भी बढ़कर है। खेल-शिक्षक क्रियाप्रवण शक्ति का मूर्तिमान रूप होना चाहिये। उसे अपनी सामर्थ्य के भीतर बालकों की आदतों का संस्कार करने तथा उनमें आदर्शों के परिशीलन की भावना जागृत करने की पूरी चेष्टा करनी चाहिए, क्योंकि आदर्शों के परिशीलन की भावना समाज की सर्वोपरि आवश्यकताओं में से है। मनोरंजन-क्षेत्र में नेतृत्व स्वास्थ्य और व्यक्तित्व सन्बन्धी कुछ विशेष बातों की माँग रखती है, जिनके बिना वह सफलता की आशा नहीं रख सकता। वह एक ऐसा नेता होना चाहिये, जिसको बालकों की इच्छाओं का पूर्वबोध हो सके और इस सम्बन्ध में वह उनकी स्वयं की आत्माभिव्यक्ति के लिये उनसे मिल-जुल सके। वह सन्तोषी, एक रस मनोवृत्तिवाला, सहिष्णु, विचारवान, कुशल, भद्र, नियम-पालन में यथार्थ, निष्कपट, उत्साही एवम् प्रेरणाप्रद व्यक्ति हो। उसको क्रीड़न-प्रक्रियाओं का शास्त्रीय ज्ञान होना चाहिये। मनोरंजन एवम् क्रीड़न-प्रक्रियाओं का शास्त्रीय ज्ञान के लिए सावधानी से चुने हुए विश्वविद्यालय से उपाधिधारी व्यक्तियों के लिये एक या दो वर्ष का पाठ्यक्रम संयोजित करने वाले विशिष्ट महाविद्यालयों की बहुत अधिक आवश्यकता है। अगर भारत-वर्ष जैसे विशाल राष्ट्र में योग्य खेल-शिक्षकों को एक अच्छी संख्या में तैयार किया जाय तो इस क्रीड़न-प्रक्रियाओं का बहुत प्रचार कर सकते हैं। बिना नेतृत्व के मनोरंजन के क्षेत्र में हमारी अच्छी से अच्छी योजनाएँ भी बेकार हो जायँगी।



घर, स्कूल और राज्य का दायित्व

क्रीड़न हमारे जीवन का एक अति व्यावक और महत्वपूर्ण अंश है, जिसकी स्थिति हमारे शिक्षालयों और जन-क्रीड़ास्थलों कोसँभालनी है। यह हमारे दैनिक जीवन का इतना आवश्यक अंग है कि जन-करोँ पर निर्भर रहने वाली या स्त्रैवलम्बी हमारी कई संस्थाएँ जैसे धार्मिक संस्थाएँ, कारखाने तथा अन्य कई संगठन इन सबको अपने सामाजिक सिद्धान्तों का प्रवर्धन करने की धारणा से अपने कार्यक्रमों में इसका समावेश करना चाहिए। इस सम्बन्ध में राज्य भी इतना ही उत्तरदायी है। और भी अधिक स्पष्टीकरण के लिये इस विषय में पृथक विचार कर लिया जाय :—

घर

क्रीड़न घर से प्रारम्भ होता है और अब तो हमें यह भी स्वीकार करना चाहिये कि हाल के वर्षों में भारत में प्रमुखतः शहरी क्षेत्रों के घरेलू जीवन में एक परिवर्तन आ गया है। बात यह है कि वहाँ कुछ सीमा तक क्रीड़न अब भी पाया जाता है तथा जनता और माता-पिता की उचित शिक्षा के साथ-साथ और भी अधिक मात्रा में पाया जा सकता है। घरेलू क्रीड़न के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिये संक्षेप में यों कहा-जा सकता है:—

बालकों के खेलने-कूदने के लिये पर्याप्त भूमि और सुख-सुविधाओं सम्बन्धी नियमों को प्रोत्साहन देना, अपने बालकों के साथ माता-पिताओं के खेलने-कूदने को भी महत्वपूर्ण समझ कर इस बारे में घरेलू वन्धनों को सामर्थ्यशाली बनाना, घर में बालकों के लिये सामाजिक प्रक्रियाओं के आकर्षक कार्यक्रमों की व्यवस्था करना, बाल-क्रीड़न-प्रक्रियाओं के शैक्षणिक मूल्य को हृदयगत करने के लिये विशाल पैमाने पर समाज की ज्ञान-वृद्धि करना और बालकों के लिये ऐसी प्रक्रियाओं की विचारपूर्ण छँटनी करना आदि बातों का विचार किया जाना चाहिये। घरेलू क्रीड़न-आन्दोलन का भारतवर्ष में तेजी से प्रसार होना बहुत आवश्यक है। घरों में क्रीड़न-कच्चों, बाहर चौक में बालू की विछायात, भूलों तथा अन्य आवश्यक सामग्री के लिये स्थान-

व्यवस्था सम्बन्धी नियम बनाये जाने चाहिये। बहुजनाकीर्ण क्षेत्रों में घर की छतें इस काम के लिये प्रयोग में लाई जा सकती हैं। माता-पिताओं को बाल-विहार-वाटिकाओं तथा क्रीड़ा-मण्डपों, अखाड़ों, क्रीड़ा-केंद्रों और क्रीड़ा-स्थलों के निर्माण में मुक्तहस्त से सहायता देनी चाहिए। उत्कर्षण-ट्रस्टों, म्युनिसिपैलिटियों, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों एवम् राज्य के सम्मुख उन्हें बाल-क्रीड़न की उन्नति की ओर यथाविधि ध्यान देने की अपनी माँग आग्रहपूर्वक रखनी चाहिए।

विशेषकर उन्हें अपने बालकों को क्रीड़ा-केंद्रों में पर्यवेक्षण करने तथा सक्रिय भाग लेने की छूट देनी चाहिए।

स्कूल

क्रीड़ा-स्थलों की स्थिति की दृष्टि से सबसे निकट स्कूल पड़ता है। यह पड़ोस में ही स्थित होता है तथा बालकों और पड़ोसी परिस्थितियों से समीपस्थ सम्पर्क रखने में अन्य कोई ऐसा संस्थान नहीं दिखाई देता, जिसकी तुलना इससे की जा सके। शैक्षणिक महत्व की प्रक्रिया के रूप में क्रीड़न पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है और इसलिए ऐसा भान होता है कि सामान्य रूप से शिक्षण के लिए उत्तरदायी संस्थान ही क्रीड़न का भी प्रमुख संस्थान होगा। स्कूल के अंतर्गत अध्यापक वर्ग में प्रक्रियाओं के विस्तृत वैविध्य को दृष्टिगत रखते हुए विशेषज्ञ तथा अभ्यस्त कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति की जाती है, जो मनोरञ्जनात्मक कार्यक्रम के साथ उसमें शिक्षण-विधियों के बौद्धिक ज्ञान तथा बालकों की सँभाल से सम्बन्धित अपना अनुभव प्रस्तुत करते हैं।

सामान्य रूप से चरित्र और आदर्शों की दृष्टि से अध्यापकों में क्रीड़न नेतृत्व के लिए अपेक्षित उच्चस्तरीय योग्यता होनी चाहिए। स्कूल की जब यह स्थिति है तो वह उस समाज में जिसकी सेवा में वह संलग्न है, बाल-क्रीड़न को प्रोत्साहन देने के दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में स्कूल की जिम्मेदारियों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है:—

(१) स्कूल को अपनी सामर्थ्य के भीतर युवक और प्रौढ़ दोनों प्रकार के बालकों के लिए क्रीड़न-प्रक्रियाओं की विविध सामग्री प्रस्तुत करने का



प्रयत्न करना चाहिए । क्रीड़न की सुविधाएँ आदि भिन्न-भिन्न वय वाले बच्चों द्वारा जिनके लिए कि वे प्रयोजनीय हैं, निश्चित की जानी चाहिए ।

(२) स्कूल को क्रीड़ा-स्थलों की व्यवस्था करनी चाहिए तथा अपने दैनिक कार्य के अंतर्गत एक क्रीड़न-कार्यक्रम का नियोजन करना चाहिए ।

(३) स्कूल के क्रीड़ा-स्थलों का अन्य बालकों और प्रौढ़ों द्वारा उस समय जब वे स्कूल के बालक-बालिकाओं के काम में न आ रहे हों प्रयोग किये जा सकने की अनुमति दी जानी चाहिए ।

(४) स्कूल को अन्य संस्थाओं द्वारा संचालित बाल-क्रीड़न-शालाओं के विकास और प्रबंध में सहायता देना चाहिए ।

(५) शैक्षणिक प्रवृत्तियों को माता-पिताओं तक समाचारपत्र, प्रवचन, प्रदर्शन, अभिभावकीय सम्पर्क, घरेलू-क्रीड़न-प्रक्रियाओं के सम्बंध में बौद्धिक सुझाव लिखित रूप में या अन्य प्रकार से पहुँचाने का यत्न करना चाहिए ।

राज्य

राज्य हम सब के लिए एक सामुदायिक संस्था है और इसी के द्वारा प्रजातन्त्र को अपने स्वयं के मनोरञ्जन-पक्षीय जीवन की व्यवस्था सर्वाधिक रूप से अर्थपूर्ण करनी चाहिए । हमारे प्रजातन्त्र के अधिकांश नागरिकों के लिए केवल राज्य द्वारा प्रस्तावित सामुदायिक कर्तृत्व से विहार-वाटिकाएँ, क्रीड़ा-केन्द्र, क्रीड़ा-स्थल, तैरने की तलैयाँ, अखाड़े आदि सुरक्षित करवाए जा सकते हैं । मनुष्य स्वभावतः राज्य की ओर निहारेंगे, जो उन्हें शिक्षित बनाएगा, जिससे उनको अनुभव और नेपुण्य प्राप्त होगा तथा जो अवकाश का बुद्धिमानी पूर्वक उपयोग करने के लिए उनकी अवकाशोपयोगी शिक्षा में सहायक होगा । मनोरञ्जन क्षेत्र में राज्य की ओर से निम्न लिखित उपायों द्वारा सहायता पहुँचाई जा सकती है:—

१. राज्य को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि क्रीड़ा-स्थल का प्रभाव प्रत्येक नगर, गाँव तथा ग्रामीण क्षेत्र में घर कर जाता है ।

२. बाल-क्रीड़न के महत्त्व में जनता को शिक्षित करने के लिए क्रीड़ा-स्थल-सजाव-सम्बंधी प्रदर्शनियों की व्यवस्था राज्य को करनी चाहिए ।



प्रचार के अन्य साधनों का उपयोग किया जा सकता है जैसे:—रेडियो, छाया, भाषण, चलचित्र आदि ।

३. म्यूनिसिपैलिटियों, उत्कर्ष-ट्रस्टों, तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को अपनी शक्ति के अनुसार समस्त सम्भव सुख-सुविधा प्रदान करनी चाहिए ।

४. इस बात की तत्काल आवश्यकता है कि राज्य की ओर से नगरों में उपलब्ध समस्त पड़त तथा खुले हुए स्थानों को अधिकृत किया जाकर उनमें जन-साधारण के लिए विहार-वाटिकाएँ, क्रीड़ा-केन्द्र आदि स्थापित किये जायँ । राज्य इस ओर जितनी शीघ्रता से ध्यान दे उतना ही उचित है, अन्यथा ये समस्त स्थान शीघ्र ही पूँजीपतियों के हाथों में चले जायँगे और सामान्य मनुष्य को उनके लिए उस परिणाम में धन खर्च करना कठिन होगा ।

५. परोक्ष या अपरोक्ष रूप से क्रीड़न प्रक्रियाओं के प्रबन्ध तथा नियंत्रण के लिए राज्य उत्तरदायी होना चाहिए । क्रीड़न-प्रक्रियाओं की किसी भी मूल्य पर राज्य द्वारा उचित व्यवस्था की जानी चाहिए ।

६. उचित संख्या में खेल-शिक्षकों की तैयारी के लिए राज्य को देश के विभिन्न भागों में कुछ मनोरंजन तथा खेल-शिक्षण महा-विद्यालयों की स्थापना भी करनी चाहिये ।

७. राज्य को बहिस्तात मनोरंजन के लिए परिपदों का संगठन करना चाहिए और मनोरंजन-क्षेत्र में उनके विकास के लिए कमीशनों की स्थापना भी की जा सकती है ।

अन्य संस्थान

उपरोक्त संस्थानों के अतिरिक्त अन्य संस्थान और हैं, जो मनोरंजन क्षेत्र की उन्नति में कुछ योग दे सकते हैं । कुछ प्रमुख संस्थानों का वर्णन यहाँ किया जाता है:—

धार्मिक संगठन

धर्म का सम्बन्ध मनोरंजन से बराबर रहा है । सम्पूर्ण इतिहास में अनादिकाल की असम्भाव्यता से लेकर वर्तमान समय तक मनोरंजन



का सम्बन्ध धर्म से रहा है। अन्य संस्थानों के होते हुए भी प्रत्येक धार्मिक संगठन मनोरंजन-क्षेत्र की आवश्यकताओं की पर्याप्त पूर्ति कर सकता है। धार्मिक संस्थानों में कुछ क्रीडन-प्रवृत्तियाँ सदा बनी रहेंगी और इनको बने रहना चाहिए। अगर वह बालकों की आध्यात्म शिक्षा को अन्तिम सीमा तक सफल बनाना चाहें तो यह आवश्यक है। छोटे कस्बों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में धार्मिक संस्थान अपने समाज के बालकों के लिये मनोरंजनपूर्ण जीवन के केन्द्र एवम् नेतृत्व की व्यवस्था प्रदान करने को सारे जिले का सम्मिलित रूप से एक उत्सव मनाते हैं। चरम आशय यह है कि इन धार्मिक संगठनों का समाज के मनोरंजन पक्षीय जीवन से निश्चित तथा अत्यधिक महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। अधिक क्या कहें, मनोरंजन क्षेत्र में ये संगठन आदर्श उपस्थित कर सकते हैं, जिनके अनुकूल मनोरंजन के प्रकार का अभिसन्धान होता रहे और लोग उसका अनुसरण करते रहें।

औद्योगिक संस्थान

आधुनिक क्रीडन आन्दोलन में औद्योगिक संस्थानों को योग देना चाहिये तथा अपने कार्यकर्त्ताओं के बालकों के लाभार्थ अभिरुचि दिखाना चाहिये। स्पष्ट है कि कुशलक्षेम से सम्बन्धित सर्व प्रथम वस्तु शारीरिक स्वास्थ्य है, अतः विशेष प्रकार के मनोरंजन की उन्नति के लिए बहुत कुछ किया गया है। अधिकांश औद्योगिक संस्थाओं ने क्रीडन-आन्दोलन के विकास को हृदयंगम किया है और इसीलिये वे अपने जनहित विभागों द्वारा क्रीडास्थलों की व्यवस्था करवा रही हैं।

खेल-समितियाँ

इसके लिये बड़े नगरों में दान तथा चन्दे से प्राप्त रकम पर निर्भर रहने वाली खेल-समितियों की स्थापना की जा सकती है। मनोरंजन के लिये आवश्यक सुविधाओं को जुटाने तथा उनकी व्यवस्था करने के लिये धन इकट्ठा करने की उनकी सामर्थ्य होनी चाहिये। जब कई अच्छे संगठित समुदाय अपने निज के उत्साह पर स्कूल चला रहे हैं, तब ऐसी लाभप्रद समितियों के होने में कोई असम्भव बात नहीं



दिखाई देती। इस तरह के पार्क बोर्ड, प्लेग्राउण्ड-समितियाँ, मनोरंजन-समितियाँ आदि की स्थापना की जा सकती हैं।

सांरांश

इन कई वर्षों में मैंने सैकड़ों बाल-क्रीडास्थलों और क्रीडा-केन्द्रों को देखने के स्वप्न देखे हैं। सौभाग्य से यदि ये स्वप्न सत्य हो सकें तो क्या कहने हैं? आज बालक शोकपूर्ण कोलाहलों से पूर्ण घरों, फेक्टरियों, खानों, अनाथालयों, और यहाँ तक कि स्कूलों में भी कारागृह का जीवन बिता रहे हैं। अगर बालक इनसे मुक्त किया जाकर इस योग्य बनाया जाता है कि वह बाल-क्रीडास्थलों में स्वतन्त्र वातावरण में साँस ले सके तो निश्चित है कि मनुष्य जाति भारतीय बालकों तथा आगे आने वाले राष्ट्र के लिये एक नये युग का आह्वान कर सकेगी।



अंग हैं। माता-पिताओं और शिक्षकों का ध्यान इस तरफ आकर्षित कराया जाना चाहिये कि स्कूलों के बन्द होने पर शिक्षा रुक नहीं जाती है बल्कि घर और स्कूल के बाहर भी शिक्षा का सिलसिला अच्छा या बुरा बराबर चलता ही रहता है।

इसका यही सार है। हमारे भारतवर्ष के बालक इसी क्षतिग्रस्त मानवता में शुमार हैं। यह महज किताब व परीक्षा से ही दी जाने वाली शिक्षा का परिणाम मात्र है। जब मैं क्षतिग्रस्त मानवता ऐसे शब्दों का प्रयोग करता हूँ तो मेरा मतलब शहरों और बड़े-बड़े नगरों के उन बच्चों से है जो आजकल की मौजूदा सभ्यता के शिकार बन चुके हैं। जब स्कूल गर्मियों में दो महीने के लिये बन्द हो जाते हैं तब हमारे सामने फुर्सत के समय की समस्या उपस्थित हो जाती है। जैसा कि हम कह चुके हैं, शिक्षा तो स्कूल के बाहर भी बाह्य वातावरण के संपर्क से बराबर चलती ही रहती है। इसलिये क्या यह उचित है कि बालकों को जो कि पहले से ही क्षतिग्रस्त हैं इन दो महीनों में भी गलियों और बाजारों में शारीरिक, मानसिक और भावनाओं की क्षति के लिए खराब मित्र-मंडली में विचरने दिया जाय ? हमें आगामी क्षति को रोक देना चाहिए और उसे सुधारने को भी यथासाध्य कोशिश करना चाहिये। चूँकि शिक्षा निरन्तर चलती ही रहती है इसलिये छुट्टियों को बेकार खोना नहीं चाहिये बल्कि इन दिनों में भी रिक्रीएशन (Re-creation) की योजना तैयार कर लेनी चाहिये। बालकों को आठ महीने तक लगातार स्कूल या घरों में रहने के पश्चात् रिक्रीएशन (Re-creation) की काफी आवश्यकता रहती है।

(१) मेरा विश्वास है कि अच्छे कैम्पिंग में रिक्रीएशन और मानव विकास की और दूसरे किसी तरीके से ज्यादा सामग्री मौजूद है। बालक कैम्प में चौबीसों घण्टे के लिए रहना चाहिए। एक अच्छा कैम्प बच्चों व युवाओं के लिए एक काफी अच्छी सामग्री होगा। इसके अलावा कैम्प में आनन्द, नई-नई भावनाओं की जागृति, अमननिवारण, सामाजिक विकास एवं रचनात्मक कार्य के लिए काफी अच्छा मौका मिलेगा।

(२) अगर हम गर्मियों में मन बहलाव के साथ कई एक विपर्ययों को नहीं मिला दें तो हमें इससे काफी फायदा होगा। मेरा खयाल है—
खुशियों के मुख्य तीन विषय हैं—तमाशे, विश्राम और रिक्रीएशन



(Re-creation) दूसरे शब्दों में खुशी, विश्रान्ति और रीक्रीएशन (Re-creation) दूसरे विषय सिर्फ इसके अंगमात्र हैं। हमको यह देखना चाहिए कि उद्देश्य और नतीजे में क्या फर्क है। ऊपर बतलाये हुए विषय उद्देश्य हैं और बकाया विषय गतिविधियों से होने वाले नतीजे हैं। हमें इन Activities से होने वाले नतीजों को भी निरादर की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

(३) प्रगाढ़ विचार विमर्श के बाद यह अत्यन्त आवश्यक जान पड़ता है कि बालक को लम्बी छुट्टियों में कैम्प में भेज देना चाहिए। वहाँ पर उसे अपने आपको बिना किसी तकलीफ के एक ओर विकास करते जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाना चाहिए। घर के अन्दर काफी देख-रेख से बचने वाले खाद्य-पदार्थों की जगह कैम्प में काफी बड़े रसोई-घर में तैयार किये हुए पदार्थ दिये जाने चाहिये। घर के अन्दर शान्ति-पूर्वक भोजन की जगह कैम्प के रसोईघर के शोरगुल के बीच खाने की क्रिया को स्थान मिलना चाहिये। स्कूल के कमरे में चारों दीवारों के अन्दर पढ़ने के बजाय खुले में जाने का मौका दिया जाना चाहिये। बालक सारा साल अपने कार्य में जुटे रहते हैं इसलिये यह जरूरी है कि उन्हें छुट्टियों में एक आनन्दमय, रचनात्मक व काफी अच्छे व खुले वातावरण में ले जाया जाय।

(४) कैम्प में बालकों को काफी अच्छा लंच, काफी विश्राम, नहाना व तैरना या यात्रा करना या अपने हाथों से चीजें तैयार करने का काफी मौका मिल सकता है।

(५) उन्हें जब थकान हो आती है और गर्मी भी काफी पड़ती है तब कैम्प में उन्हें काफी आनन्द प्राप्त होता है।

(६) यह बात समझने में कोई देर नहीं होगी कि कैम्प से बालकों को साफ-सुथरे वातावरण और अपने माता-पिताओं से अलग रहने के अलावा महत्वशील महान सामाजिक विकास का मौका भी मिलता है। इसके अलावा भी कैम्प करने वालों को व्यवहारिक अनुभव और फायदेमन्द कामों की जिम्मेवारी से काफी नतीजे हासिल होते हैं।

(७) कैम्प बालकों के लिये उनकी भावनाओं के जाग्रत करने के लिये और अपने आपको समझने के लिये एक आदर्श चीज है। इससे



उनकी मानसिक भावनाएँ “यह कैसे होता है और इसे कैसे किया जाता है?” तृप्त होती हैं कि शिक्षा का यह एक खास अंग बन जाता है। बालक के लिये यह एक महत्ती आकांक्षा की चीज होती है। इससे हर इन्सान की जिन्दगी में बड़े-बड़े फायदे पहुँचते हैं।

(८) दूसरी सबसे बड़ी बात जो कैम्प से होती है वह यह है कि बच्चा जनतन्त्रात्मक वातावरण में रहना सीख जाता है। आजकल के जमाने में यह अनुभव खास तौर से जरूरी है जब कि हम जनतान्त्रिक जीवन चाहते हैं।

डेमोक्रेसी का खास मतलब एक दूसरे के साथ मिल-जुल कर रहने से ही है। कैम्प इस बात को कायम करने में काफी फायदे की चीज हो सकता है। इसके अलावा भी काफी बातें पैदा हो सकती हैं, मगर यदि यह डेमोक्रेसी में मिल-जुल कर रहने की शिक्षा ही प्रदान करे तो एक काफी बड़ी बात हो सकती है।

फायदे (घर में कैम्प)

यह एक “घर में कैम्प” के फायदों का अनुभव करने का प्रश्न है। घर और माता-पिताओं से काफी समय के लिये दूर चले जाने से हृदय के अन्दर काफी अनुराग उत्पन्न हो जाता है। इससे घर के लोगों के साथ प्रगाढ़ सम्बन्ध उपस्थित होता है। अनजान व्यक्तियों के साथ भावात्मक तृप्ति का अनुभव बच्चे के लिये अपने माता-पिताओं के साथ के सम्बन्ध से अधिक विश्रांतिदायक और प्रगाढ़ होता है। इसलिये बच्चे पारिवारिक घटनाओं को यथापूर्वक चलाने के लिये काफी सुयोग्य बन जाते हैं। यदि कैम्प के अच्छे अनुभवों का निरीक्षण किया जाय और माता-पिता कैम्प में खुद जायँ और कैम्प के संचालकों से बातचीत करें तो उनको अपने बालकों को समझने में काफी सुगमता हासिल होगी। कुछ माता-पिता इस बात का अनुभव करेंगे कि उनके बच्चे के विषय की जानकारी हासिल कर लेने के बाद उन्हें पता चला है कि वे अपने बच्चे के साथ स्कूल संबंधी मामलों में काफी सख्ती का वर्ताव करते रहे हैं। वास्तव में यह बात जरूर है कि ऐसे अनुभव का असर हर इन्सान पर कुछ समय से लगा कर कुछ महीनों तक रहता है।



फायदे (स्कूल से घर)

कैम्प वच्चे और शिक्षक के एक अच्छे सम्बन्ध का मौका है अगर शिक्षक खुद कैम्प में शरीक रहा हो तो वच्चे की उसके प्रति कैसी भावना रही है यह बहुत जल्द ही समझ में आ जाती है। वच्चे को ऐसा एक आदमी मिल जाता है जिसे वह अपने डर, अपनी निराशा या अपने विचार बता सकें। उसे एक ऐसा आदमी मिलता है, जो उसे धमकाता नहीं बरञ्च जो उसके काम को दिलचस्प बनाने की कोशिश करता है। यह संभव है कि बालक कैम्प के बाद अपने आपको स्कूल की परिस्थिति के अनुकूल बनाने में जरा मुश्किल का अनुभव करे, मगर उसे यह बात साफ समझ में आ जाती है कि इसका उसके खुद के लिये या किसी अपने ग्रुप के बालक पर क्या असर पड़ता है। उसकी "क्षतिग्रस्त मानवता" में लाभ पहुँचता है और अब वह स्कूल के कामों में काफी जोश व दिलचस्पी के साथ लग जाता है।

कैम्प में किस किसम के बालकों को भेजना चाहिये ?

कैम्प से फायदे और उसके अवसरों की कोई सीमा निर्धारित नहीं है। मगर इस प्रश्न पर कि कैम्प में किस किसम के बालकों को भेजना चाहिये, मैं विश्वास करता हूँ कि कैम्प साधारणतया सभी वच्चों के लिये मुफीद हो सकता है सिवाय उन वच्चों के कि जिनका यह ख्याल होता हो कि उन्हें माता-पिता से अलग कर दिया गया है और वे उसके (कैम्प के) बिना ही अच्छा समय बिता रहे हैं। शर्म रखने वाले, चित्त के अन्दर ही अन्दर विचार रखने वाले व कसरत नहीं करने वाले बालकों को ऐसे कैम्पों में भेजना चाहिये, जहाँ ज्यादा कम्पीटीशन का मौका नहीं मिले और वच्चे को वाज वक्त अकेला रहने का अवसर भी प्राप्त हो।

कैम्प कैसा होना चाहिये ?

पुराने ढंग व ख्याल के आधार पर बने हुए अथवा पेचीदा प्रोग्राम वाले कैम्प—जिनमें मुकाबले की टीमों हिस्सा लेवें और बाकायदा पारितोषिक वितरण किये जायँ—नहीं होने चाहियें। कैम्प इस किसम

का होना चाहिए, जिसमें बालक की आशाइशें पूरी की जा सकें और समझी जा सकें। कम्पीटीशन बहुत कम रखा जाना चाहिए और पारितोषिक द्वारा उसे और घना नहीं कर देना चाहिए। बच्चे को अपने आप ही में काम करने देना चाहिए और उसे अपने आपको सम्भालने देना चाहिए।

हिन्दुस्तान के योग्य कैम्प

अलग-अलग किस्म और ताकत वाले कैम्प रखे जा सकते हैं। इनका विवरण निम्न प्रकार है। इनकी मुफीदगी और इस्तिथार करने की चर्चा हर किस्म के कैम्प के साथ की गई है।

कौटुम्बिक कैम्प

एक परिवार ही अपना कैम्प छुट्टियों में और खास कर गर्मी की छुट्टियों में रख सकते हैं। इसमें मुश्किलों के साथ-साथ फायदे भी काफी हैं। बड़ी-बड़ी मुश्किलें हैं उसको चलाना और कैम्प करने की मियाद, क्योंकि उसे ज्यादा दिन चलाने का खर्चा बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है। खास तौर से यह इसलिये भी मुश्किल है कि माता-पिता इसके लिए इतना समय नहीं लगा सकते हैं और इतना पैसा भी खर्च नहीं कर सकते हैं। इसके लिए यही सुविधाजनक हो सकता है कि परिवार अपना कैम्प कुछ दिन या एक पखवाड़े तक के लिये चला सकते हैं। लेकिन यदि किसी कुटुम्ब की आर्थिक हालत ठीक है तो कैम्प को चलाने में जरूर तत्परता दिखलाना चाहिये।

एक से ज्यादा परिवार का कैम्प

अगर कई एक परिवार मिल कर किसी कैम्प को चलावें तो काफी मुश्किलें हल हो सकती हैं। हिन्दुस्थान में यह बात बड़े-बड़े शहरों या छोटे-छोटे कस्बों में भी आसानी से हो सकती है। महज इसकी शुरुआत की जरूरत है। इसमें काफी कामयाबी हासिल की जा सकती है, यदि माता-पिता यह समझें कि यह उनकी खास जिम्मेदारी है कि वे बालकों के लिए ऐसे अनुभवों का रास्ता खोलें। अगर सब मिल कर इस गुत्थी को हल करें तो कैम्प चलाना बहुत आसान है। ऐसी हालत



में कैम्प चार से छः हफ्ते तक चलाया जा सकता है। माता-पिता उसके संचालन का भार जब-जब उन्हें फुर्सत मिले, बारी-बारी से अपने ऊपर ले सकते हैं। बालक और माता-पिता को अलग-अलग करने के बजाय ऐसे कैम्पों में उन्हें साथ-साथ रहने का मौका मिल सकता है। किसी सु-योग्य आदमी के नेतृत्व में खेल-कूद के ग्रुप बनाये जाकर बालकों को अपने-हम उम्र बच्चों के साथ खेलने का मौका दिया जा सकता है। छोटे बच्चों के ग्रुप का प्रोग्राम ठीक उसी किस्म का होना चाहिये जैसा कि नर्सरी स्कूल के बच्चों के लिए होता है। बड़े बच्चों को ट्रिप, कला या ड्रामा जैसे मनोरंजन कराने चाहिये। शान्ति और फुर्सत के तरीकों से की जाने वाली बातों का असर वाक्यादा संचालित कैम्प के वनिस्वत ज्यादा अच्छा पड़ता है।

निश्चय ही इसमें असुविधायें उपस्थित होंगी। विलकुल गुप्त रूप में रहने की पुरानी रुढ़ियों से, जिनसे हिन्दुस्थान के काफी कुटुम्ब आक्रान्त हैं, एक दूसरे को काफी पास-पास रहने में काफी बाधा पहुँचाती है। इसके अलावा कुछ कठिनाइयाँ इसमें भी खड़ी होंगी कि बच्चों की चाल, उनका मिजाज व उनको सुस्त बनाने के तरीके कुछ अलग-अलग हों। लेकिन जब हमें किसी जीवन और उसके सम्बन्धों का विचार आता है तो ये मुश्किलें उसके सामने कुछ नहीं के बराबर नजर आती हैं। अगर कुछ समय एक दूसरे के साथ रह कर दिलचस्प कामों को करते हुए बिताया जावे तो दूसरे कुटुम्ब के अनुभव भी जल्द ही हासिल किये जा सकते हैं। बालक और माता-पिता के एक घनिष्ठ सम्बन्ध का मौका भी पेश किया जा सकता है और इसी प्रकार कैम्प-जनित कई एक और भी फायदे हैं।

सुचारु रूप से संचालित कैम्प

आजकल के जमाने के कई एक कुटुम्ब जिनकी आय काफी है, वे अपने बालकों को डाइरेक्टरों के द्वारा संचालित कैम्पों में भेजना पसन्द करेंगे। बड़े-बड़े शहरों और कस्बों में ऐसे कैम्प चलाये जा सकते हैं।

यह बात निश्चित है कि इस तरह से सुचारु रूप से चलाये जाने वाले कैम्प काफी मुश्किलों का सामना कर सकते हैं। प्रोग्राम से भी काफी

तब्लीलियाँ की जा सकती हैं। यह एक शिक्षा सम्बन्धी प्रवृत्ति हो सकती है। लेकिन इसमें भी एक असुविधा है। वह यह कि अपने बच्चों को डाइरेक्टरों के चार्ज में रक्खा जावे तो वे अपने माता-पिता से अलग रह जावेंगे। खेल-कूद के दायरे में माता-पिता का रहना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि वे इसमें काफी समय खर्च कर सकते हैं। यह इस जमाने में काफी महत्व की बात है।

ग्रीष्मकालीन खेल के स्कूल

अमेरिका में सन् १९१७ की लड़ाई की वजह से लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ कि बालकों के लिये लम्बी छुट्टियों में किस चीज की आवश्यकता है। उनके माता-पिताओं के बाहर काम पर रहने की हालत में बहुत से बालक अपने लिये वस्तुतः कोई जगह जाने के लिये नहीं होने की वजह से इस वक्त को फालतू खर्च करते थे। इसमें दिलचस्पी लेने वाले लोगों के एक समुदाय ने एक सेटलमेन्ट हाउस में इस किस्म के एक ले-स्कूल को चलाया और उसमें जितने बालक आ सके उतने लेने की कोशिश की। इस तत्कालीन प्रयास की वजह से यह धारणा काफी जोर पकड़ गई कि खास तौर से बड़े-बड़े शहरों और कस्बों में बालकों के लिये ग्रीष्मकालीन स्कूलों की आवश्यकता है। धीरे-धीरे कार्य की रूप रेखा बढी और उसी किस्म से प्रोग्राम भी। इसकी फिलासफी और विशिष्ट-कला खास तौर से ग्रीष्मकालीन समस्याओं के लिये लगाई गई और बच्चों की आवश्यकताओं के लिये कार्यान्वित की गई। कहा जाता है कि अमेरिका में करीब दो करोड़ बालक ग्रीष्मकाल में ले-स्कूलों का फायदा उठाते हैं।

ले-स्कूल, सेटलमेन्ट हाउसों या स्कूल की बिल्डिंगों या मकानों में चलाये जाते हैं। ऐसे स्कूलों को इनमें आने वाले बालकों का और उनके माता-पिताओं का पूरा पता मालूम होता है, इसलिये जब स्कूल खतम होता है तब वे विविध प्रकार से बालकों और उनके माता-पिताओं से खतो-कितावत द्वारा मिलते रहते हैं।

इन स्कूलों में ट्रेन्डमास्टर बालकों के छोटे-दलों से मिलते हैं। दिन अक्सर बाहर पार्कों में, ट्रिप में, या छोटे तालाबों में तैरने में बीतता है।



मकान पर ज्यादातर लंच, विश्राम, ड्रामा, गाना इत्यादि होता है। ग्रीष्मकालीन से-स्कूल ही हफ्ते में छः दिन के लिये सारे ग्रीष्मकाल में खुलते हैं। भरती करने के पहले ही बालक की शारीरिक परीक्षा होती है। बालकों को दलों में विभक्त कर दिया जाता है और दल अपना-अपना खेल-कूद का प्रोग्राम बनाता है। सारांश यह कि ग्रीष्म कालीन से-स्कूल बालकों, माता-पिताओं, स्कूलों और समस्त जाति के लिये काफी फायदे की चीज साबित हुई है।

हिंदुस्तान में इसका औचित्य

कोई भी शख्स पहले पहल यह कह सकता है कि ऐसे स्कूल भारत-वर्ष में उपयुक्त नहीं होंगे क्योंकि हमारे यहाँ पर बालकों को इनकी अदम-मौजूदगी में भी घर के बाहर के काफी अनुभवों और आनन्दों को हाँसिल करने का मौका मिलता है। मैं इस बात से तो सहमत हूँ कि यह चीज ऐसे बालकों के लिये कोई खास तबज्जोह की चीज नहीं है, जो अक्सर छोटे-छोटे गाँवों में रहते हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि “क्षतिप्रस्त मानवता” का एक काफी बड़ा हिस्सा बड़े-बड़े शहरों में नजर आता है। किसी को भी सिर्फ उस बात पर विचार करना चाहिये कि आगामी तैयार होने वाली पौध के लोग “क्षतिप्रस्त मानवता” वाले और मुरझाये हुए चेहरे वाले हों तो उनके लिये किस किस प्रकार से कुछ किया जा सकता है और कैसे सफलता मिल सकती है। यदि मनुष्य या एसोसियेशन जो इसमें काफी दिलचस्प है; वे ऐसी यनी आवादी के शहरों से कुछ दूर पर ऐसे से-स्कूल चलावें जो बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, लाहौर, अहमदाबाद, कानपुर प्रभृति शहरों में तो ऐसे स्कूल खोलना चाहिये। अगर इसमें कुछ भी सफलता प्राप्त हुई तो ये स्कूल छोटे शहरों और कस्बों के लिये एक उदाहरण की चीज साबित होंगे। ऐसे मामलों में प्रोपेगेण्डा काफी फायदा नहीं पहुंचा सकता है। लोगों को अपना फायदा होते हुए खुद देखना चाहिये।

खास दिलचस्पी के कैम्प

नर्सरी-स्कूल के बालकों से लगाकर १५ वर्ष की आयु तक के बालकों के लिये कैम्प और कैम्पिंग मय उनके विभिन्न प्रोग्रामों के फायदों को

सोचने के लिये कुछ क्षणों की आवश्यकता है। खास-खास जरूरतों या मतलबों के लिये इससे आगे की उम्र के बच्चों के लिये भी कैम्प किये जा सकते हैं। मिसाल के तौर पर गाने के कैम्प को ही ले लीजिये, यह बालकों के एक छोटे से दल के लिये ही चलाया जाता है चाहे वे शुरू-शुरू के बालक हों या आगे की उम्र के। इसमें हर एक बालक को अलग-अलग काम करने के असाधारण मौके मिलते हैं और गाने के साथ-साथ नाच और ड्रामा की भी हिदायतें मिलती रहती हैं। बालिकाओं के लिये नृत्य के कैम्प भी दूसरी मिसाल है।

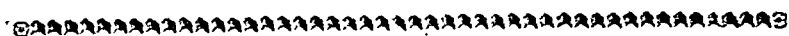
खास-खास कैम्पों के दूसरे प्रकार में निम्न बातें होना चाहिये:—

(अ) ऐसे कैम्प जो मानसिक और शारीरिक दृष्टि से पिछड़े हुए बालकों के लिये किये जाते हैं या म्यूटोरियल कैम्प जो ऐसे बालक या बालिकाओं के लिये किये जाते हैं कि जिन्हें गर्मी के दिनों में उनके स्कूल के काम में खास तौर से मदद देने की आवश्यकता रहती है।

(ब) एक तीसरे किस्म का कैम्प भी है जिसका भी मैं वर्णन करना चाहता हूँ। यह कैम्प खास तौर से उस उमर के बालक या बालिका के लिये होता है जो बचपन की उम्र को पार करके यौवन की सीमा पर पहुँच चुके हैं। माता-पिता अपने बालकों के लिये ऐसे कैम्प की आवश्यकताओं को नहीं समझते हैं। ऐसे बालकों के दलों के कैम्प से जो फायदे होते हैं उनमें एक यह है कि बालक बहुत से अपराधों से बच जावेगा। अपराधों के विप्लव करने वाले सभी विशेषज्ञ इस बात को मंजूर करते हैं कि अपराध युवा वा युवती के खेल कूद के सहज भाव को दबा देने से उत्पन्न होते हैं। शुरू शुरू में ये अपराध एक वृत्ति के रूप में पैदा होते हैं व क्रमशः भयानक अपराधों में परिवर्तित हो जाते हैं। यौवनकाल की यह विशेषता है कि उस वक्त मनसनीपूर्ण विचार, बाह्य अनुभव-जनित प्यार और जत्था बनाकर कोई कार्य करने की आदत सी हो जाती है। इसलिये अगर कैम्प चलाये जाकर इन लोगों को अपना समय फालतू खर्च करने से रोक दिया जाय तो वे इन बातों से बच सकते हैं।

कैम्प के लिये किसी उपयुक्त स्थान का चुनाव

कैम्प के लिये खास स्थान के चुनाव के लिये काफी सोच विचार कर लेना चाहिये। माता-पिताओं या डॉइरेक्टरों को अड़ोस-पड़ोस के



स्थान का भ्रमण करके उपयुक्त स्थान का चुनाव करना चाहिये। खास खास बातें जिनका विचार करना चाहिये वे ये हैं—सुगमता से पहुंचने जैसी जगह, काफी पानी, डेरे लगाने के लिए समतल भूमि, व स्थान की प्राकृतिक छटा। अगर कई कुटुम्बों के लिये कैम्प करना है तो उससे और भी कई एक मुश्किलें दर पेश आ सकती हैं। मसलन एक कुटुम्ब का मालिक जंगल को पसन्द करता है, एक अच्छा मछली-मार है और तीसरे कुटुम्ब की माता जरा ज्यादा सामाजिक जीवन बीताना चाहती है वगैरह वगैरह। इसलिये कोई ऐसी जगह तलाश करना चाहिए जो सबके लिये फायदे की चीज साबित हो सके। अगर बालक किसी संचालित कैम्प में भेजे जावें तो ये सब मुश्किलें रद्द की जा सकती हैं। इससे जिम्मेवारी माता-पिताओं से हट कर डाइरेक्टरों पर आ जाती है अगर किसी शहर में एक से ज्यादा कैम्प होते हों तो माता-पिता अपनी रुचि व दिलचस्पी के मुताबिक किसी भी कैम्प को चुन सकते हैं।

एक अच्छे कैम्प की विशेषताएं

कैम्प में किसी भी बालक के लिए प्रभुतापूर्ण वातावरण हानिकारक होता है। शिष्टा में कुछ बालकों के लिए औरों के वनिस्वत ज्यादा प्रभुत्व की आवश्यकता है। लेकिन किसी बात के लिए प्रभुत्व जो एक चरम सीमा तक पहुंचाया जाता है वह उसका उलटा और हानिप्रद असर देता है। निरन्तर प्रोग्राम के मुताबिक चलने वाली एकटिविटी के बारे में भी यही बात कही जा सकती है इससे भी शान्ति का मौका हट जाता है। इसी तरह से ऐसे कैम्प भी हैं जिनमें कम्पीटीटिव प्रोग्राम रक्खे जाते हैं और इनाम वगैरह दिये जाते हैं कुछ बालकों के लिए कि जिन्होंने पारितोषिक पाये हैं वे फायदे की चीज बन सकते हैं, वरना इनसे उन बालकों के लिये काफी नुकसान पहुंचता है जो कि नतीजे में सफल नहीं हो उन बालकों पर से कि जिन्हे पढ़ने में मुश्किल मालूम पड़ती है जब दवाव हटा दिया जाता है तो उन्हें काफी मदद पहुंचती है। किसी भी एकटिविटी में दक्षता तभी हासिल की जा सकती है, जबकि उसमें दिलचस्पी ली जावे।

घर, स्कूल व सरकार की जिम्मेदारियाँ

घर:—

(१) यह सोचना ठीक ही होगा कि उन्नतिशील धारणाओं वाले माता-पिताओं को अपने बाल बच्चों की उन्नति के लिये कैम्पिङ्ग के फायदों की महत्ता को सोचना चाहिए। ऐसे कई एक तरीके हैं जिनमें माता-पिताओं को तो अपने बालकों को अवश्य ही कैम्पों में भेजना चाहिए जो बड़े शहरों में रहते हैं और कैम्पों का खर्चा बर्दाश्त कर सकते हैं क्योंकि शहरों में बच्चे को मकान के बाहर की जिन्दगी का मौका काफी नहीं मिलता है। कुछ माता-पिता जिनकी परिस्थिति अच्छी है अपने खुद के कैम्प चला सकते हैं। मगर यह हमेशा उपयुक्त होगा कि बच्चों को डाइरेक्टरों द्वारा संचलित कैम्पों में ही भेजा जावे। इन कैम्पों में स्वास्थ्य, प्राकृतिक चीजों का संपर्क, सादगी, विश्राम एवं दृष्य तथा एक्टिविटीज का बदल जाना प्रभृति कुछ ही बातें हो सकती हैं। बाज-बाज वक्त यह सभी काफी नहीं होता है। क्योंकि बालक को अपने हम उम्र बालकों के साथ मिलने जुलने की जरूरत रहती है। उसे साफ हवा और सूर्य के प्रकाश की भी काफी आवश्यकता रहती है। डाइरेक्टरों द्वारा संचलित कैम्पों में ये सब बातें उन कैम्पों के बनिस्वत जो कि माता-पिताओं द्वारा चलाये जाते हैं ज्यादा तादाद में दी जा सकती हैं। बालक कई तरह से कई एक मनुष्यों के संपर्क में आता है।

(२) घर के अन्दर बालकों को खास भोजन देना या ज्यादा मिर्कदार में देना या ज्यादा नौकर रखना इस बात की सीमा निर्धारित की जा सकती है। किसी बालक के साथ अपेक्षाकृत ज्यादा वर्ताव किसी बात के लिए किया जाता है तो उसे खुद को तो हानि पहुंचती है मगर वह अपने कैम्प में साथियों के लिए भी क्लेश कारक होता है। इसलिये होना यह चाहिये कि बालकों के लिये अपेक्षाकृत अधिक व्यवहार किसी भी बात में नहीं किया जाय।

(३) माता-पिताओं की तीसरी ड्यूटी यह है कि जब बालक कैम्पों में हों उन्हें अपने बालकों के सम्पर्क में आना चाहिये। उनको वहाँ जाकर दिन वितानो या अपने बालक को देखना ही नहीं चाहिये बल्कि



उन्हें यह देखना चाहिये कि कैम्प उनके बच्चे की जरूरतों को कहाँ तक पूरा कर रहा है, वह वहाँ के आदेशों का पालन कहाँ तक कर रहा है कैम्प के उपयुक्त वह कहाँ तक हो रहा है तथा कैम्प में वह क्या भाग बढ़ा कर रहा है। माता-पिताओं की गलत धारणाएँ कैम्प के सुचारुरूप से चलने में काफी बाधाजनक हो सकती हैं।

(४) माता-पिताओं की चौथी ड्यूटी यह है कि वे डाइरेक्टरों और कैम्प के सलाहकारों की समिति में मिलकर आधुनिक कैम्प विज्ञान को समझें। यह बात कैम्प के डाइरेक्टरों व शिक्षकों के साथ पहले, बाद में या कैम्प के वक्त ही में सभायें करने से की जा सकती है।

स्कूल—

स्कूल की खास तौर से यह ड्यूटी है कि बालकों में कैम्प करने की आदत पैदा करे। बालकों और बालिकाओं को कैम्प और कैम्पिंग की आदत डालना चाहिए। इसके तरीके निम्नलिखित हैं:—

(१) कुछ प्रगतिशील स्कूलों में (जिनका कि नम्बर काफी कम है) बालकों को दलों में विभक्त कर दिया जाता है। हर दल एक २ दल-पति के नीचे रहता है, जिससे हर एक बच्चे का खयाल, दल का काम और उसके चलाने के तरीके सोचे जा सकें। दल के सामाजिक जीवन की रूप-रेखा बालक ही बनाते हैं और उसे चलाते हैं। दलों में विभक्त करने का यह तरीका अक्सर होने वाले कैम्पों के लिए काम में लाना चाहिये। साथ ही साथ एक्सकर्सन और ट्रिप के लिये भी यही बात करना चाहिए। मिसाल के तौर पर विद्याभवन में हर दल से उम्मीद की जाती है कि वे साल के अन्दर कम से कम चार कैम्प करें। इस तरीके को उनके स्कूल में प्रोत्साहन देना चाहिए।

(२) स्कूलों में उदयपुर विद्याभवन के वनशाला के प्रोग्राम का भी प्रयोग करना चाहिए। यह कैम्प से ज्यादा फायदे की चीज है। सारा का सारा स्कूल, स्कूल की इमारत के अन्दर से वनशाला में उठा दिया जाता है। कैम्प के साथ ही साथ वहाँ पर स्थानीय जानकारियें भी हासिल की जाती हैं और इसीलिये मैं इसे खाली कैम्प से ज्यादा फायदे की चीज मानता हूँ। इसमें शिक्षा सम्बन्धी काफी महत्व की बातें भरी रहती हैं। ऐसे कैम्प स्कूल के कामों में काफी फायदा पहुंचाते हैं और



बालकों की आदतों में काफी सुधार होते हैं। यह ग्रीष्मकाल के प्ले-स्कूल के मुताबिक तो नहीं है मगर इसमें उसके मुताबिक कई एक बातें हैं।

(३) ग्रीष्मकाल में कैम्पों को चलाने के लिए स्कूल को उसमें अग्र-गामी हिस्सा लेना चाहिए और उन्हें चलाना चाहिए। स्कूल को उसे चलाने की जिम्मेदारी लेना चाहिए और वही एक काफी अच्छी बात हो सकती है। स्कूल को अपने स्टॉफ में से ही डाइरेक्टर और कैम्प को सलाह देने वालों को ट्रेनिंग देना चाहिए, ताकि उनके दिमाग में हर वक्त बच्चों की आवश्यकता का ध्यान बना रहे। जब तक शिक्षक लोग उसमें पूरा हिस्सा नहीं लेंगे, तब तक बालकों के रखन का कार्य पूर्ण रूप से नहीं चल सकता है। समाज को हर वक्त मास्टर्स से इस बात की उम्मीद रखना चाहिए।

सरकार:—

बिना सरकार की सहायता के शिक्षा सम्बन्धी कोई भी काम आसानी से हल नहीं हो सकता। शिक्षा के लिए सरकार की तरफ से धन, जन और अनेक जरूरियों की इमदाद मिलना चाहिए। सरकार का यह फर्ज है कि वह यह देखे कि तमाम शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाले महकमे मसलन पब्लिक हेल्थ डिपार्टमेन्ट, सिटी डिपार्टमेन्ट, म्युनिसिपल बोर्ड, शिक्षकों एवं माता-पिताओं के संघ वगैरह मिल कर इस काम की उन्नति में साधन बनते हैं या नहीं। सरकार को चाहिए कि किन्हीं अच्छे कैम्पों के चलाने वालों का सहयोग हासिल करें।

(२) सरकार की सहायता से ग्रीष्मकाल के प्ले-स्कूलों को चला कर यह अनुभव करना चाहिए कि इसमें बालकों की कहाँ तक दिलचस्पी है और इनसे किस किस के बालकों को फायदा पहुंच सकता है।

(३) सरकार की यह जिम्मेदारी है कि नगरों और शहरों के आस-पास कैम्पिंग के लिए खुली जगह की योजना करे। हिन्दुस्थान में सरकार के द्वारा शहरों और नगरों के बाहर ऐसी सुविधायें करीब २ विल-कुल नहीं दी जाती हैं।

जब सरकार कैम्पिंग के फायदों को समझ लेगी तो कैम्पिंग की योजना अपने आप चल निकलेगी।

यात्रा, ट्रिप और सैर

बालक के शिक्षण के लिए बाहर जाना एक अच्छा साधन है। यात्रा में रीक्रीेशन और शिक्षण दोनों का समन्वय हो जाता है। बालक में दृष्टिकोण के विस्तार तथा रुचियों के विकास के लिए यात्रा एक बड़ा प्रभावशाली साधन हो पड़ता है। आमोद-प्रमोद को जीवन के एक विभाग में रखना और शिक्षण को दूसरे विभाग में रखना गलत है। उन सभी प्रवृत्तियों को, जिनके द्वारा यात्रा और शिक्षण का एका हो सके, बालक के शिक्षण में प्रयोग करना चाहिये।

यात्रा, ट्रिप और सैर से बालक को घर और स्कूल के बाहर के जीवन के अनुभव मिलते हैं। प्रकृति का विशाल प्राद्वरण उसके सामने खुल जाता है और वह दिमाग के बजाय हाथ पाँव एवं आँख से अधिक सीखता है। जो सत्य अनुभव से प्राप्त किया जाता है, वह जिन्दा रहता और फलता-फूलता है। ज्योंही वह पहाड़ी पर चढ़ता या जंगल में घूमता है या पानी में तैरता है, त्योंही वह मानों उस अनुभव में जीता है, केवल देखता भर नहीं। समुद्र-तट पर ज्वार-भाटा देखते हुए बैठने से बालक सजीवता पूर्वक ज्ञान प्राप्त करता है। एक सूखी जानकारी द्वारा वह यह नहीं जानता कि ज्वार-भाटा कब-कब आता है। यात्रा द्वारा बालक को स्वतः ही यह अनुभव होता रहता है कि वह जीती हुई जाति का पौधा है। साथ ही उसे जीवन के गुणधर्मों के बारे में भी एक सूक्ष्म-समझ मिलती रहती है। अपना जीवन बिताने के लिये भी उसे एक तरह की समझ आती है।

घर के बाहर प्रकृति है, जिसके सम्पर्क में वह आता है; ऋतुयें, दिवस और रात, तारे, हवा इत्यादि। ऋतु परिवर्तन से बालकों को बड़ा सजीव आनन्द आता है। बालक ऋतुओं के परिवर्तन का वास्तव में अनुभव करते हैं। आदर मिश्रित आश्चर्य के साथ-साथवे इनका अनुभव करते और इनको समझने की कोशिश करते हैं। प्रकृति के तत्वों को



जैसे वे अपनी ज्ञानेन्द्रियों के घने सम्पर्क में लाते और अपने तन-मन को उनके मुआफिक करने की पूरी कोशिश करते हैं। यही सच्चे शिक्षण का तरीका है। इसीलिये बालक बाहर घूमना अधिक पसन्द करते हैं। प्रकृति की सैर से बढ़ कर सजीवता के साथ बालक का शिक्षण और कौन कर सकता है? बालक तितलियों से, कीट-पतंगों से, प्राणी-मात्र से मानों बातें करता है। मकड़ी के जाले से बालक बात करता है और उसमें रहने वाली जिन्दगी से नाता जोड़ता है। रात और दिन से, सूर्य, चंद्र, तारों से बच्चे एक दिल हो सकते हैं। उनकी भाषा कभी शब्दों की, कभी अनुभवों और हलचलों की अथवा संगीतों की बनी होती है। कुछ तो सहजानुभूति द्वारा भी वे बातें करते हैं। कुछ वे अनुकरण भी करते हैं। ये स्थायी आमोद हैं। बालकों की ये भाषायें परिपूर्ण हृदय और आतुरता से उत्पन्न होती हैं। इनके मन आप से आप अपना मनन एवं विचार करने के लिये प्रेरित हो जाते हैं। भावनायें जाग जाती हैं और शरीर संगठित होने के लिये तत्पर हो जाते हैं।

और यह तो है ही कि खेलने के लिए उनको काफी सामग्री बाहर मिल जाती है। ऐसी सामग्री वहाँ पहले से ही काफी मौजूद होती है। अन्दर जितनी खेलने की सामग्री मिलती है, उससे भी कहीं अधिक सामग्री वह प्राप्त करता है प्रकृति के प्रांगण में। प्रकृति के प्रांगण में मिलने वाली और सजीव शिक्षण के लिए उपयोगी ऐसी सामग्री को खो नहीं देना चाहिए।

अब शिक्षण में खेल के द्वारा शिक्षण देने के तरीके को काफी महत्व दिया जाता है। खेल और कार्य के बीच अब सम्बन्ध स्थापित किया जाने लगा है। बालक आमोद के द्वारा सीखें। यात्रा और सैर स्कूल के विषयों में, खास कर इतिहास, भूगोल और नेचरस्टेडी में काफी उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इतिहास गुजरे हुए दिनों की स्मृति चिन्हों से, युद्ध मैदानों, गढ़ों वगैरा से सीखा जाता है और भूगोल पहाड़ों, नदियों, घाटियों तथा समुद्र-तटों से सीखी जाती है। साफ है स्कूल-यात्रा-आन्दोलन का खेल और कार्य के प्रकार की दृष्टि से बड़ा महत्व है।

सवाल पूछा जा सकता है कि स्कूल की यात्रा और ऐसी सैरें स्कूल बन्द होने पर क्यों न संयोजित की जायें? उत्तर बहुत साधारण

है। वे कभी भी संयोजित की जायँ और बालक में रुचि रखने वाले किसी भी केन्द्र में चाहे वह घर हो या स्कूल—संयोजित की जायँ, वे लाभकारी ही होंगी। बाहर घूमने-फिरने का अवसर मिलने से बालक को सुस्त पड़े रहने का अवसर नहीं मिलता। उल्टे वह खूब प्रसन्न रहता है। ऐसे अवसर न मिलने की अवस्था में बालक में बहुत से दोष घर कर लेते हैं और उनको दूर करने का यही एकमात्र उपाय है। किशोरावस्था के बालकों के लिए तो यात्राएँ और सैरें और भी अधिक उपयोगी हैं। खुली हवा व सूर्य का निर्दोष प्रकाश, आनन्ददायी वन आदि के सुन्दर वातावरण में किशोर वय के बालकों को बहुत आनन्द आता है और उनको इसके लिए अवसर मिलना ही चाहिए। इनके द्वारा उनके मन की कितनी ही गुत्थियाँ सुलभ जाती हैं, जो कि अन्यथा स्थिति में बहुत हानिहारक हो सकती हैं। यात्राओं और सैरों के वहाने बालक सदा के अभ्यस्त जाने-माने वातावरण से बाहर निकलने का भी अवसर पाता है। यों वे ही डरपोक माताएँ, थके पिता और झगड़ालू साथी सदा उसके जीवन को भरे रहते हैं। यात्रा के वहाने वह कुछ काल के लिए एक नये और ताजे वातावरण से परिचित होता है। इसके अतिरिक्त ये ही ऐसे अवसर होते हैं, जब कि माता-पिता या शिक्षक जो कोई भी बच्चे के साथ जाते हैं, उनको बालक को अधिक निकट से पहचानने का अवसर मिलता है।

यात्रा, भ्रमण या एक्सकर्सन में अन्तर भी किया जाता है। यात्रा में अधिक समय और अधिक व्यय की आवश्यकता होती है और यह शब्द दूर-दूर के स्थानों के आवागमन के लिये ही अधिक व्यवहार में आता है। जैसे कोई राजपूताने का बालक काश्मीर या आगरा, देहली आदि स्थानों को देखने जाय, तो इसे एक यात्रा कहा जायगा।

एक्सकर्सन के दायरे में वे यात्राएँ आती हैं, जो अड़ोस-पड़ोस के स्थानों में किसी भौगोलिक, ऐतिहासिक या अन्य किसी प्रकार की विशेषता से आकृष्ट होकर अंगीकार की जायँ। यात्रा रेल, मोटर, साइकिल आदि किसी के भी द्वारा हो सकती है।

पिकनिक और ट्रिप अधिक सरल, कम खर्च और कई बार की जा

सकने योग्य हैं। कुछ बालक अपने माता-पिता या शिक्षकों या अपने ही कुछ साथियों के साथ एक दो दिन या कुछ घंटे किसी अच्छे वातावरण में स्वच्छन्दता, विनोद और आनन्द में व्यतीत करें — वस इतना ही इनका उद्देश्य होता है।

यात्रा, एक्सकर्सन, ट्रिप और पिकनिक में इस प्रकार का अन्तर बताते हुए भी यह ध्यान रखना चाहिए कि इन सब के मौलिक उद्देश्य में कोई भेद नहीं है। इन सब के मूल में स्वच्छन्दता, मनोरंजन, फुर्ती और स्फूर्ति-पूर्ण वातावरण में कालयापन का अवसर ही अभिप्रेत रहता है।

यात्रा के स्थानों में अड़ोस-पड़ोस के सुरम्य स्थलों से लगा कर विदेश की यात्राओं तक की गणना की जा सकती है, किन्तु लम्बी यात्राओं का सौभाग्य तो कुछ को ही प्राप्त हो सकता है। अधिकांश के लिए तो छोटी और पास-पास की यात्राएँ ही सम्भव हैं। ऐसी यात्राओं को हम इन भागों में बाँट सकते हैं—

(१) स्थानीय पास-पड़ोस की सैर:— बालक के जीवन में इनका बहुत महत्त्व है। ये सैरें बालक की बड़ी-बड़ी यात्राओं की भूमिका होती हैं। ये उनमें निर्णय और तुलना की आदत पैदा करती हैं। अपने आस-पास के प्राकृतिक वातावरण, मानव-जीवन, पशु-जीवन और पेड़-पौदों आदि को देख कर, उनके आधार पर विश्व के व्यापक जीवन के सम्बन्ध में वे अपने निष्कर्ष निश्चित करने में समर्थ होते हैं।

(२) अपने प्रदेश की सैर:— ऐसी यात्राओं का क्षेत्र लगभग वही होता है, किन्तु स्थान की दृष्टि से जरा व्यापकता आ जाती है। बालक अपने पैरों और आँखों के द्वारा अधिक व्यापक अनुभव प्राप्त करता है। उसे ज्ञान होता है कि सारे प्रदेश का एक इकाई के रूप में एक विशेष अर्थ है और इस प्रकार उसे एक अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो सकती है।

(३) स्वदेश की सैर:— अपने प्रादेशिक ज्ञान के बाद इस प्रकार की सैरों के द्वारा बालकों को तुलना द्वारा काफ़ी सीखने को मिलता है। इस प्रकार की सैरें बालक के मनमें प्रान्तीयता की भावना दूर कर

राष्ट्रीय दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता पहुँचाती है। बालक को यह अनुभव होता है कि उसके अपने प्रदेश में ही नहीं बल्कि उसके बाहर भी दूर-दूर तक सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा का प्रचार-प्रसार है। ऐसे पर्यटन बालक के मन में विभिन्न प्रान्तों के बीच एकदेशीय सांस्कृतिक एकता का भाव दृढ़ करते हैं।

(४) विदेशों की सैर:—विदेशों की सैर का सौभाग्य भारतवर्ष में तो बहुत ही कम परिवारों को प्राप्त होता है। केवल काफ़ी धनाढ्य मनुष्य ही अपने बालकों को विदेश में अध्ययन के लिये भेज सकते हैं। ये अध्ययन के लिये विदेश जाने वाले व्यक्ति अपने अध्ययन के साथ यात्रा का भी पूरा लाभ उठा सकते हैं। यों साधारणतया वैदेशिक यात्राओं से कोई खास फायदा नहीं होता।

घर और स्कूल दोनों ही के द्वारा इस प्रकार की यात्राओं का संयोजन संभव है।

घर के द्वारा आयोजित यात्राओं का बालक के जीवन में बहुत महत्त्व है। माता-पिताओं को लम्बी और थोड़ी अवधि की दोनों प्रकार की यात्राओं का संयोजन समय-समय पर करना चाहिए। लम्बी यात्राएँ केवल लम्बी छुट्टियों में ही रखी जायँ। उनके अलावा थोड़े-थोड़े दिनों की छुट्टियों में छोटी-छोटी ट्रिप्पें रख ली जायँ। पिकनिक आदि जिनमें कुछ घंटों का ही समय लगता है, अधिक रखी जायँ। ये महीने में एक या दो बार रखी जा सकती हैं।

स्कूलों में इन यात्राओं को स्कूल के नियमित कार्यक्रम के अंग की तरह भी और स्वतन्त्र प्रवृत्ति के रूप में भी आयोजित किया जा सकता है। प्रगतिशील शिक्षालयों में आजकल इनका प्रयोग बढ़ता जा रहा है। क्यों और कैसे—इस पर बाद में विचार किया जायगा।

गर्मी की छुट्टियाँ लम्बी यात्राओं के संयोजन की दृष्टि से सबसे उपयुक्त समय होता है, परन्तु इस समय में स्कूल इस कारण कोई काम नहीं कर सकते कि शिक्षक तैयार नहीं होते। उधर माता-पिता फुरसत न होने के कारण मना कर देते हैं। ऐसी परिस्थिति में सबसे अच्छा उपाय यह है कि बालक अदले-बदले में विभिन्न प्रान्तों की सैर

कर सकें—ऐसी व्यवस्था की जाय। कभी—विशेष कर गर्मी के दिनों में मान लो एक बार पंजाब का कोई लड़का किसी परिचित बंगाली परिवार में कुछ समय रह आवे और इसी प्रकार कभी बंगाल के परिवार का बालक पंजाब के परिचित परिवार में रह आवे। अवश्य ही इसमें भी कुछ कठिनाइयाँ हैं, परन्तु यह प्रयोग इस दृष्टि से बहुत सफल रहा है। शिक्षक और माता-पिता दोनों के तैयार न होने की अवस्था में यही एक उत्तम उपाय कहा जा सकता है—खास कर लम्बी यात्राओं के लिये।

गर्मी की छुट्टी की यात्राएँ ऐसे व्यावसायिक केन्द्रों के द्वारा भी आयोजित हो सकती हैं, जो बालक की शिक्षा और उसके लाभ में रुचि लेने वाले हों। छोटे बड़े सभी बालक इसमें शामिल हों। यात्रा अधिकतर थर्ड क्लास में की जाय ताकि अधिक संख्या में बालक उसका फायदा उठा सकें। ठहरने के लिये स्कूल के होस्टलों का उपयोग किया जा सकता है, क्योंकि वे इन दिनों खाली पड़े रहते हैं। सायकिल पर या पैदल यात्रा हो सकती है। उदाहरण के लिये कोई संस्था उदयपुर के बालकों को लेकर उदयपुर के आस-पास की पहाड़ियों और झीलों का प्रोग्राम बना सकती है। समय और सुविधा के अनुसार अधिक समय और अधिक दूरी के प्रोग्राम बनाये जा सकते हैं।

इस सम्बन्ध में घर, स्कूल और राज्य की बड़ी जिम्मेदारी है। घर और स्कूल दोनों का ही इस प्रकार की यात्राओं की व्यवस्था से एक ही मतलब होता है कि बच्चों की शिक्षा और मनोरंजन का काम हो। तो भी अक्सर माता-पिता मनोरंजन और शिक्षा पर अधिक जोर देते देखे जाते हैं। जो भी हो, ये दोनों आपस में इतने मिले हुए हैं कि अलग-अलग नहीं किये जा सकते। स्कूल और घर दोनों को इन दोनों की ओर ध्यान देना चाहिये। राज्य का भी कर्तव्य है कि वह ऐसी सुविधाएँ प्रदान करे कि जिससे उनकी शिक्षा संस्थाओं के बच्चे इस शिक्षा के बड़े उपयोगी अंग का पूरा फायदा उठा सकें।

बालकों सहित पूरे परिवार की यात्रा एक विशेष महत्व की वस्तु है। यात्राएँ, सैरें, पिकनिकें आदि किसी न किसी रूप में मन पर अच्छा ही प्रभाव डालती हैं। उनका उचित उपयोग करना तो आवश्यक होगा



ही थोड़ा सा पहिले से विचार प्रयत्न और वचत यदि की जाय तो छोटी मोटी यात्राएँ आयोजित करना कुछ कठिन नहीं है। पिकनिक यात्रा आदि के अवसरों पर माता-पिता और बच्चों के सम्बन्ध अधिक स्वच्छन्द और ताजा हो जाते हैं। हमेशा का बँधा बँधा घर का हिसाब किताब टूट सा जाता है और मनोरंजन और अनुभव प्राप्ति के साथ साथ यात्रा का सारा का सारा समय एक आनन्द और हुलास के वातावरण में बदल जाता है। माता पिता से एक बात की आशा अवश्य की जाती है कि वे अपने व्यवहार आदि में कट्टरता न आने दें। विशेष समय और परिस्थिति के अनुसार बालक के व्यवहार और रख में जो एक विशेष प्रकार का भाव आ जाता है वह स्वागत के योग्य है। माता-पिताओं को चाहिए कि नई, उदीयमान और प्रगल्भ भावी के साथ अधिक सहज भाव और खुले दिल से व्यवहार करें। माता-पिता के व्यवहार के कट्टरता बालक के लिये हानिकारक होगी।

कुछ माता पिता यह सवाल उठाते हैं कि यात्राओं में खर्च बहुत पड़ता है। यह कुछ हद तक तो सही है ही परन्तु यह ऐसी कोई बात नहीं है कि जो सारी योजना पर ही पानी फेर दे। बहुत लम्बी यात्राएँ तो सभी व्यक्ति नहीं कर सकते—यह तो जानी मानी बात है पर साधारण तथा छोटी छोटी यात्राएँ आम लोगों के द्वारा व्यवस्थित की जा सकती है। यदि होटल आदि में न ठहर कर सस्ते प्रबन्ध किये जायें तो शहरों के लिये आयोजित यात्राएँ भी अधिक महँगी नहीं होंगी। हमारे देश के गाँवों का आवागमन तो कुछ महँगा है नहीं। रेल्वे यात्राओं में भी विद्यार्थियों को कन्सेशन आदि की सुविधाएँ मिल जाती हैं। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि देहात के बालकों के लिये यात्रा जरा कठिन चीज है। परन्तु इससे कोई खास बाधा नहीं पड़ती क्योंकि घर से निकलकर कुछ बाहर की हवा खाने की जरूरत देहात वालों की अपेक्षा शहर वालों को ही अधिक रहती है, और वे साधारण तथा छोटी छोटी यात्राओं का खर्चा तो बर्दाश्त ही कर सकते हैं। फिर अड़ौस पड़ौस के पैदल या साइकिल पर की जाने वाली यात्राओं में तो कोई अड़चन है ही नहीं।

जब माता पिता अपने बालकों को लेकर बाहर जाँय तो वे एक बात

का ध्यान रखें कि वे बार बार बालक के कामों में दखल न दें। इसे मत छूओ; वहाँ मत बैठो; यह मिट्टी खराब है—इसे फेंक दो; उधर लोग काम कर रहे हैं—वहाँ मत खड़े रहो, तुम उस मैदान में दौड़ना चाहते हो?—नहीं वह ठीक नहीं—कहीं खो जावोगे; देखो आँधी आने वाली है इधर उधर मत जाओ, हमारे पास बैठो—आदि कहकर इस तरह से बालकों की स्फूर्तिपूर्ण क्रियाओं में बाधा देना ठीक नहीं है। बालकों को करने धरने और घूमने की पूरी आजादी मिलनी चाहिए। हाँ उनकी गति विधि पर दृष्टि रखना बहुत आवश्यक है परन्तु दृष्टि रखने का मतलब यह कभी नहीं है कि बात बात में उनको बाधा दी जावे। माता पिता को केवल सतर्क रहना चाहिए कि उनको कोई नुकसान न पहुँच जाय। यदि उन्होंने ऐसा किया तो वे देखेंगे कि बालक अपने अनुभव से बहुत कुछ सीखता है और वह उसके भविष्य के लिये बड़ी उपयोगी बात होगी।

अभी तक घरों के द्वारा संयोजनीय यात्राओं की चर्चा हुई। अब स्कूल को लें। स्कूल के आयोजनों की मुख्य विशेषता यह रहेगी कि वे यात्राओं में शैक्षिक दृष्टिकोण पर ज्यादा जोर देंगे जो कि बिल्कुल स्वाभाविक है। संक्षेप में स्कूल निम्नलिखित ढंग पर भिन्न भिन्न प्रकार की यात्राओं का संयोजन कर सकते हैं:—

१. दूर के स्थानों की लम्बी यात्राएँ—जिनमें बड़ी कक्षाओं के छात्रों को ही ले जाया जाय। छोटे बच्चों को भी ले जाने में कोई खास एतराज की तो बात नहीं है, बड़ी कक्षाओं के लड़के ऐसी यात्राओं से अधिक लाभ उठा सकते हैं बड़ी उम्र होने से समझ भी उनमें अधिक होती है और स्कूल का खर्चा भी कुछ कम होता है क्योंकि वे बहुत सा काम खुद कर सकते हैं। फिर छोटे बच्चों को बड़े होने पर अबसर मिल ही जायगा। ऐसी लम्बी यात्राओं में बड़ी कक्षा के लड़कों को ले जाना ही उचित है। इस प्रकार की यात्राएँ स्कूल के वार्षिक कार्यक्रम का अनिवार्य अंग होनी चाहिए।

२. दो तीन दिन की छोटी यात्राएँ भी लाभकारी हैं। इनमें इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि अधिकतर काम लड़के स्वयं करें। ये तीन महीने में एक बार हो ही जानी चाहिये। भिन्न भिन्न कक्षाओं के



बालकों को भिन्न-भिन्न महीने में यात्रा के लिये ले जाया जाय तो स्कूल को कुछ दिन के लिये बन्द करने की भी नौबत न आय।

३. कुछ घंटों की पिकनिकें कम-से-कम महीने में एक बार हो जानी चाहिये। इनमें मनोविनोद के अतिरिक्त आसपास के स्थानों का भौगोलिक और ऐतिहासिक ज्ञान, प्राकृतिक वस्तुओं का अध्ययन आदि बातों पर भी जोर देना चाहिये। ऐतिहासिक और भौगोलिक महत्वपूर्ण स्थानीय स्थानों पर इस प्रकार की पिकनिकें विशेष फायदेमन्द हो सकती हैं।

४. रोज की क्लास की पढ़ाई के दरम्यान किसी बात को समझाने के लिये प्रत्यक्ष दिखाकर वस्तु-ज्ञान कराये जाने की दृष्टि से की गई छोटी-मोटी ट्रिपें समय-समय पर आवश्यकता के अनुसार की जानी चाहिये। प्राकृतिक भूगोल, प्रकृति-विज्ञान आदि के पढ़ाते समय इस प्रकार की तात्कालिक ट्रिपें विशेष उपयोगी हैं।

५. इसके अतिरिक्त किसी केम्प आदि के प्रसंग में भी यात्राएँ आयोजित हो सकती हैं। केम्पों में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये कि ऐसी अवस्था में आस-पास के प्रदेश का पर्यटन और निरीक्षण कार्यक्रम का एक मुख्य अंग रहे।

स्कूलों के द्वारा और विशेष कर शैक्षिक उपयोग की दृष्टि से आयोजित यात्राओं में पूर्व निश्चय और योग्य तैयारी का बड़ा महत्व है। यदि पहले से भली प्रकार सोच विचार कर योजना न बनाई जाय तो काम तो बिगड़ता ही है, समय व्यर्थ जाता है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिये कि जब भी कोई शिक्षणोपयोगी यात्रा संयोजित की जाय तो सत्र से पहले उसकी पूरी योजना बना ली जाय। किस-किस बात का निरीक्षण किया जायगा और किन-किन समस्याओं पर विचार किया जायगा, यह पहले सोच लिया जाय। अच्छा तो यह हो कि शिक्षक पहले से उस जगह को देख आवे; और जिन-जिन स्थानों पर खास तौर पर ध्यान देना हो उन्हें चुन ले। निरीक्षण हो चुकने के साथ ही शिक्षक छात्रों के साथ उस पर चर्चा करें ताकि वातावरण में कोई शिथिलता न आने पावे। अगर दस-बारह से



ज्यादा लड़के हों तो संख्या के अनुसार अध्यापक भी अधिक साथ रहें। इस बात पर भी ध्यान दिया जाय कि ऐसी यात्राओं में किसी मनोरंजन या विकर्षक कार्यक्रम को न ठूँसा जाय, नहीं तो छात्रों का सारा ध्यान उधर चला जायगा। लम्बी यात्राओं में इसके लिए विशेष रूप से समय और अवधि निश्चित कर ली जाय।

राज्य की इस सम्बन्ध में कुछ जिम्मेदारी है, किन्तु उतनी नहीं, जितनी कि घर और स्कूल की। राज्य का काम यही है कि वह यात्राओं के इस कार्यक्रम को स्वीकार करे और अपनी शिक्षा संस्थाओं में उनको प्रोत्साहित करे। राज्य के इस सम्बन्ध में आवश्यक कर्तव्य संक्षेप में यों कहे जाते हैं कि:—

१. प्रत्येक राज्य के शिक्षा विभाग के अन्तर्गत एक बालक-यात्रा-व्यूरो हो जो कि स्कूलों में परस्पर परिचय और सूचना का साधन हो। वह देश के अन्य बालक-यात्रा-व्यूरो से भी सम्बन्ध रखे।

२. प्रत्येक राज्य का शिक्षा विभाग इनमें भी उतना ही रस ले, जितना कि पाठ्य पुस्तकों, इमारतों और शिक्षकों में लेता है। केवल दिमागी ज्ञान पर जोर देना ही काफी नहीं है। यात्रा आदि अन्य शिक्षणोपयोगी कार्यों को भी उचित प्रोत्साहन दिया जाय। उनको पाठ्य-क्रमतर नहीं बरन् पाठ्यक्रमान्तर्गत प्रवृत्ति समझा जाय।

अभी रेलवे कन्सेशन उन्हीं बालकों को मिलता है जो कि स्कूल की एक पार्टी की तरह सफर में जाते हैं, किन्तु राज्य को यह सुविधा कर देनी चाहिए कि यदि कोई माता-पिता व्यक्तिगत रूप से भी बालकों की इस प्रकार की यात्राएँ आयोजित करें, तो उन्हें भी रेलवे कन्सेशन आदि की सुविधा प्राप्त हो सके।

४. राज्य के दूसरे विभाग जैसे स्वास्थ्य, विनोद, स्काउटिंग आदि भी इस प्रकार की प्रवृत्तियों में पूरा योग दें।

५. राज्य द्वारा अगर स्काउटिंग विभाग चालू किया हुआ हो, तो वह हर प्रकार से बालकों की यात्राओं और सैरों के संयोजन और व्यवस्था में मदद करे।

सार्वजनिक पुस्तकालय और पुस्तक-सप्ताह

बालकों के सार्वजनिक पुस्तकालय को शहर में वही महत्व का स्थान प्राप्त होना चाहिए जो अधिकांश शहरों में प्रौढ़ सार्वजनिक पुस्तकालय का है। जिस प्रकार बड़ों को दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद अवकाश मिलता है, उसी प्रकार बालकों को भी शाम के समय अवकाश रहता है। अधिकांश बालकों के विषय में यह देखा गया है कि वे स्कूल की किताबों से ऊब जाते हैं। यह समझने के लिए गम्भीर विचार करने की जरूरत नहीं कि तरुण सार्वजनिक पुस्तकालयों के द्वारा पढ़ने वाला पुस्तक-प्रेम का संस्कार स्कूल के प्रत्येक बालक के लिए—फिर वह किसी भी विषय का अध्ययन करने वाला क्यों न हो—उपयोगी होगा। बचपन से ही पड़ा हुआ यह संस्कार बाद में विकसित होकर साहित्य पठन के आनन्द में—जो शिक्षित व्यक्ति का लक्षण है—परिपक्व हो जाता है। यच्चों के पुस्तकालयों का अस्तित्व कुछ दशकों से पश्चिम के प्रगतिशील देशों में है, यह इस बात का सबूत है कि वहाँ के अधिकारीगण इस प्रकार की योजना का शैक्षिक महत्व भली भाँति समझते हैं। पश्चिम के देशों में स्थान-स्थान पर बालकों को पुस्तकें पढ़ने, उन्हें सुख का समर्थ साधन समझने तथा उनका मूल्य आँकने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। जब बालकों को पुस्तकावलोकन करने का तरीका बताया जाता है तो वे ज्ञान के स्रोत के रूप में पुस्तकों का महत्व समझने लगते हैं। जहाँ तरुण सार्वजनिक पुस्तकालय हैं, वहाँ प्रयोग के द्वारा यह देखा गया है कि स्थान विशेष के १० प्रतिशत बालक अपने मन से इन पुस्तकालयों में जाते हैं, १५ प्रतिशत सारी कोशिशों के बावजूद नहीं पढ़ते, क्योंकि पढ़ने के बजाय किसी क्रियात्मक प्रवृत्ति में उन्हें अधिक रुचि है। औ ७५ प्रतिशत बालक ऐसे हैं जो पढ़ सकते हैं, यद्यपि कि उन्हें उचित प्रोत्साहन मिले और उचित प्रकार से उनमें पढ़ने का शौक पैदा किया जाय।



सबसे पहले हमारे सामने यह समस्या है कि क्या तरुण सार्वजनिक पुस्तकालय हिन्दुस्तान के लिए लाभप्रद होंगे, या कि क्या हमारे देश की स्थिति ऐसी है कि इनके संस्थापन और संचालन का ध्येय सुसमर्थ होगा। यह समझने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं कि सार्वजनिक तरुण पुस्तकालय दरिद्र हिन्दुस्तान के लिये भी हितकर होंगे। हमारी अधिकांश शिक्षण संस्थाओं की दशा बड़ी शोचनीय है। स्कूलों में सुसम्पन्न पुस्तकालयों के होने की बात तो दूर रही, यहाँ अच्छी पाठ्य-पुस्तकों की भी बड़ी कमी है। यह स्पष्ट है कि हम यह उम्मीद नहीं कर सकते कि प्रत्येक शिक्षण-संस्था में भिन्न-भिन्न बालकों की रुचि की विविधता को देखते हुए पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं से सुसज्जित पुस्तकालय हों। इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक शहर में बालकों का एक पुस्तकालय हो जिसमें सब प्रकार की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विविध प्रकार का आधुनिक बाल-साहित्य मौजूद हो। बड़े शहरों में प्रत्येक अच्छे पुस्तकालय में बालकों के पुस्तकालय का एक अलग विभाग होना चाहिये। बालकों को अतिरिक्त पुस्तकें पढ़ने का प्रोत्साहन देने के तीन अभिप्राय हैं। अधिकांश बालक थोड़े ही काल तक पढ़ते हैं और हम चाहते हैं कि वे पढ़ने की आदत डाल लें ताकि बाद में अपने मन से भी पढ़ते रहें और फिर निरन्तर न हो जायँ। दूसरे, अध्ययन के द्वारा अवकाश का बड़ा अच्छा सदुपयोग हो सकता है। इसके अलावा, अध्ययन के द्वारा व्यक्ति अपनी प्रवृत्तियों का क्षेत्र विस्तृत कर सकता है और खुद रचनात्मक विचार कर सकता है।

जब मैं ये सुझाव रखता हूँ तो हिन्दुस्तान की वर्तमान परिस्थितिगत कठिनाइयों को भूल नहीं जाता हूँ। मुख्य कठिनाइयाँ ये हैं:—

(१) हिन्दुस्तान में सार्वजनिक बाल-पुस्तकालय की पद्धति का अभाव है।

(२) हमारे यहाँ राष्ट्रीय पुस्तक संसद् यानी लाभ-अलाभ का विचार किये बिना एक मात्र पुस्तकों में रुचि पैदा करने और बढ़ाने वाला संगठन—नहीं है।

- (३) बालकों के लिए हमें हिन्दुस्तान की ही भाषाओं में लिखी हुई पुस्तकें चाहियें किन्तु अभी हमारे यहाँ ऐसी पुस्तकें बहुत नहीं हैं जो बालकों को आकर्षित करने वाली और उनके लिए उप-युक्त हों।
- (४) पुस्तकों की ऐसी दूकानों का प्रायः सर्वथा अभाव है जहाँ स्कूल के बालक उन पुस्तकों को खरीद सकें जिन्हें पढ़ने में उन्हें रुचि है।
- (५) हमारे यहाँ के बालक पाश्चात्य देशों के बालकों की अपेक्षा पुस्तकों की ओर से अत्यधिक उदासीन हैं। कई बालक तो बतौर लुत्फ के भी एक भी पुस्तक नहीं पढ़ते। अधिकांश बालकों के लिये पुस्तकों का अर्थ होता है, परीक्षा के लिए पाठ्य-पुस्तकें। इन कठिनाइयों के हल के विषय में मैं बाद में लिखूँगा।

तरुण सार्वजनिक पुस्तकालय में अधिकांश पुस्तकें ऐसी होनी चाहिए जो बालकों को उनके मनोरंजनार्थ रुचिकर हों। पुस्तकों का चुनाव स्थानीय स्कूलों के प्रकार स्थान-विशेष की भाषा तथा पुस्तकालय में आने वाले बच्चों पर आश्रित होगा। हमेशा ही चुनाव का क्षेत्र बड़ा विस्तृत होगा। कहानियों की पुस्तकें, छोटे बच्चों के लिए सचित्र पुस्तकें, राष्ट्रीय नेताओं तथा महापुरुषों के जीवन-चरित्र, खोज और यात्रा की पुस्तकें, सभी देशों की कहानियाँ, भिन्न-भिन्न देशों के बालक, देश और उनके निवासी, बड़े लड़कों के दुस्साहस के कार्य तथा छन्द (Hobby) की पुस्तकें तथा पशुओं और पक्षियों आदि की पुस्तकें होंगी।

एक छोटे से लेख में किताबों की एक सम्पूर्ण सूची देना सम्भव नहीं है। नीचे मैंने बालसाहित्य की प्रकाशन संस्थाओं की एक सूची देने का प्रयत्न किया है। इन से हम प्रकाशित पुस्तकों की सूची मंगा सकते हैं।

(१) ट्रेक्ट एण्ड बुक सोसायटी, १८ क्लाइव रोड, इलाहाबाद (पुस्तकें हिन्दुस्तानी में)

(२) दि टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रेस, बम्बई (पुस्तकें-बेसिक अंग्रेजी में)

(३) लाँगमैनस ग्रीन एण्ड को० लिमिटेड, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास ।

(४) दि इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद ।

(५) आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास ।

(६) 'एज्यूकेशन' लखनऊ, " एडोलेसन्ट सीरिज " ।

(७) दि लिटरेचर कम्पनी, कलकत्ता ।

इस लेख को पढ़ने वालों से निवेदन है कि वे आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित 'टीचिंग (Teaching) का मार्च १९४४ का अंक देख जायँ । यह सारा अंक बालसाहित्य पर लिखा गया है । संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से प्रकाशित होने वाले 'पैरेन्ट्स मैगेज़िन' और 'चाइल्ड स्टडी' नामक पत्र भी इस सम्बन्ध में उपयोगी होंगे ।

जहाँ तक अंग्रेजी भाषा का सवाल है, विभिन्न विषयों पर विविध प्रकार की पुस्तकों का चुनाव कठिन नहीं होगा । पिछले २० वर्षों में अमेरिका और इंग्लैंड में ऐसी पुस्तकें बड़ी तादाद में प्रकाशित हुई हैं और अब भी हो रही हैं जो बालकों के दैनिक जीवन में आने वाली और देखने वाली बातों पर लिखी गई हैं । इसके अलावा दूसरे देशों के विषय में अधिकाधिक पुस्तकें लिखी जा रही हैं । इन पुस्तकों के लेखक भिन्न-भिन्न देशों को इतनी भली प्रकार जानते हैं कि वे बालकों को न केवल सच्ची वस्तु-स्थिति का ज्ञान करा सकते हैं और देश की दशा को सहानुभूतिपूर्वक समझा सकते हैं, अपितु असली वातावरण का आभास भी दे सकते हैं ।

बालकों के पुस्तक-सप्ताह

पिछले कुछ दिनों से राष्ट्रीय पुस्तक संघ की ओर से होने वाले एक प्रयोग की ओर लोगों का ध्यान केन्द्रित हो रहा है । अक्टूबर १९४१ का राष्ट्रीय पुस्तक संघ के द्वारा आयोजित माल्डन प्रयोग (Malden Experiment) बालकों के कई सफल पुस्तक सप्ताहों में से पहला था । हर वार के प्रयोग राष्ट्रीय पुस्तक संघ, स्थानीय सार्वजनिक वाचनालय के बाल विभाग, और स्थानीय शिक्षाधिकारियों के सम्मिलित योग



से हुआ और इस तरह की शुरुआत को लेकर एक प्राथमिक पद्धति बनी। उपर्युक्त प्रयोग के विवरण में लिखा है— पुस्तक सप्ताहों के परिणाम इतने सुस्पष्ट और प्रत्यक्ष हैं कि उन पर अब कुछ लिखने की जरूरत नहीं। पुस्तकालय से पुस्तकों की उधारी की बढ़ती, स्थानीय पुस्तकों की दुकानों में बच्चों की पुस्तकों की विक्री में बढ़, बालकों का पुस्तकों की ओर बढ़ता हुआ दृष्टिकोण, पुस्तकों का वाचन परिश्रम नहीं सुख भी है—यह मान्यता—ये सब बातें बालकों के पुस्तक सप्ताह की सफलता के प्रमाण हैं। किन्तु इनका प्रभाव उन दस हजार या कुछ अधिक बालकों तक सीमित नहीं है जो इन पुस्तक सप्ताहों में भाग लेते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षकों और माता-पिताओं पर पड़ने वाला इनका असर भी महत्वपूर्ण है।

इसी प्रकार का एक और प्रयोग—माल्डन प्रयोग से अनभिज्ञ—हिन्दुस्तान की मद्रास स्थित 'किरचन लिटरेचर सोसायटी' के द्वारा हुआ। मद्रास में हुए प्रयोग का प्रारम्भ करने वाले श्री. एफ. पी. डी. पेनिंग लिखते हैं—सोसायटी कुछ समय से पुस्तक वितरण के नये तरीकों को खोजने की कोशिश कर रही थी और पुस्तक भण्डारों के साथ किए गये प्रयोगों से यह प्रकट हुआ है कि यदि बनावट-सजावट अच्छी हुई, और पुस्तकों की विक्री पर आकर्षक भाषण दिए जायें तो लोग उन्हें खरीदने को उत्सुक रहेंगे। इसके अतिरिक्त यह भी देखा गया कि प्रौढ़ों की अपेक्षा बच्चे जल्दी प्रभावित हुए क्योंकि प्रौढ़ों की रुचि जाग्रत करना दुस्तर कार्य है। इस प्रयोग को ध्यान में रखते हुए, सोसायटी ने इस योजना के पीछे रहे हुए शैक्षिक मूल्य को देखा और केवल बालकों के लिए प्रथम पुस्तक सप्ताह की योजना की।

पुस्तक सप्ताह—यह क्या है ?

हिन्दुस्तान में कई ऐसे स्कूल के बच्चे हैं जिन्हें पुस्तकें देखने, संभालने या खरीदने का कभी सुख या लाभ ही नहीं हुआ। कई तो स्कूल की किताबों को छोड़कर अन्य किताबों को जानते ही नहीं। उन्हें कभी यह ख्याल ही नहीं होता कि ऐसी भी किताबें हैं जिन्हें पढ़ने, देखने या खरीदने का अवसर मिले तो उन्हें आनन्द मिलेगा। पुस्तक सप्ताह यह



अवसर प्रदान करते हैं। बालकों को विविध प्रकार की पुस्तकों का परिचय कराने में वे साधनभूत होते हैं। पुस्तकों के द्वारा उनका एक अधिक विस्तृत दुनियाँ से परिचय है जो समस्त अच्छे शिक्षकों का लक्ष्य होता है। ये सप्ताह इस तरह आयोजित किए जाते हैं कि पढ़ने में रुचि पैदा हो और पुस्तकें रखने और खरीदने की तीव्रतर इच्छा जाग्रत हो।

पुस्तक-सप्ताह में पुस्तक केन्द्र का विषय है। पुस्तक भण्डारों में विक्री के लिए पुस्तकें रखी जाती हैं। पुस्तकों पर छोटे-छोटे भाषण दिये जाते हैं और सारा वातावरण ही पुस्तकों के रंग में रंग जाता है। पुस्तक-सप्ताह में इकट्ठे हुए लोगों की सरगर्मी और उमंग देखने की चीज है। एक मेले जैसा दृश्य उपस्थित हो जाता है। स्कूल के बच्चों के लिए तो यह एक प्रकार का दावत का दिन होता है। कई बच्चे तो पहली बार यह समझने लगते हैं कि पुस्तकें खरीदने में भी एक प्रकार का आनन्द होता है और वाचन अवकाश के समय के लिए एक आनन्द की वस्तु हो सकती है।

पुस्तक-सप्ताह मनाने का प्रमुख उद्देश्य है बालकों को पुस्तक-प्रिय बनाना, किन्तु इनके द्वारा वे शैक्षिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर भी मिलते हैं जो स्कूल जीवन के कार्यक्रम में हमेशा नहीं मिलते। इनके जरिये वाचन प्रेम का बीज बोने तथा स्कूल की किताबों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों में रुचि पैदा करने की अपेक्षा की जाती है।

पुस्तक-सप्ताह स्कूल के समय के दरमियान

अत्यंत शैक्षिक महत्व रखने के कारण पुस्तक-सप्ताह स्कूल समय में ही चलाया जाना चाहिये। लड़के कक्षावार, स्कूल वार अपने शिक्षकों के साथ आयें। यदि आवश्यकता हो तो पुस्तकालय, साहित्य अथवा वाचन के घण्टे का उपयोग पुस्तकों के मेले को देखने के लिये किया जा सकता है।

यह निश्चित है कि शहर में समय-समय पर होने वाला—समझिये, वर्ष में दो बार—पुस्तक सप्ताह शिक्षा को आगे बढ़ाने में बेहद सहायक होगा और अधिक संख्या में लोगों के घरों में पुस्तकें पहुँचाने का अद्भुत साधन होगा।

दिखाई जाने वाली पुस्तकों की किस्म

पुस्तकें ऐसी हों जो बालकों के लिए रुचिकर हों। जिलों में स्थानीय भाषाओं की अधिक और अंग्रेजी पुस्तकों की कम माँग होगी। जूनियर, मिडिल और सीनियर स्कूल के बच्चों के लिए विविध प्रकार की पुस्तकें होनी चाहिए—जैसे, जीवन चरित्र, वहादुरी के कारनामे, कहानियाँ, उपन्यास तथा छोटे बच्चों के लिए सचित्र पुस्तकें। पश्चिम की सचित्र पुस्तकें हमेशा बिकेंगी। प्रायः सभी जगह देशी भाषाओं में लिखी हुई सस्ती और आकर्षक कहानी की किताबें भी बढ़ती हुई तादाद में खरीदी जायेंगी। स्कूल और स्थान विशेष की भाषा को ध्यान में रखते हुए विविध प्रकार के बालसाहित्य का चुनाव होना चाहिए। जिन पुस्तकों पर स्पष्ट रूप से 'पाठ्यपुस्तक माला' लिख रहा हो, उन्हें स्थान नहीं देना चाहिए, क्योंकि ऐसी पुस्तकें उन्हें स्कूल के सबक की याद दिलाती हैं और वैसे उन्हें नीची निगाह से देखते हैं।

पुस्तक-सप्ताह के लिए आवश्यक साधन

(१) एक बड़ा कमरा जहाँ मेला लग सके। यह प्रायः स्कूल का ही प्रकोष्ठ होगा अथवा स्कूल की पहुँच का कोई दूसरा भवन। आयोजकों के लिए आवश्यक सामान—मेज, कुर्सी, मेजपोश आदि सुलभ होना चाहिए।

(२) पुस्तक-भण्डारों पर सहायकों की आवश्यकता है। ये अधिकतर अवस्थाप्राप्त लड़के-लड़की होने चाहिए। प्रत्येक पुस्तक भण्डार पर दो सहायक होने चाहिए।

(३) जब सारा स्कूल जमा हो तो उस समय मेले के विषय में आवश्यक बातें बता देना चाहिए। बालकों को यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि उन्हें पैसे साथ लाना है, क्योंकि मेले की पुस्तकें और चित्र विक्री के लिए हैं।

मेले को देखने का इन्तजाम

स्कूल के बच्चों को स्कूल के समय में ही मेले में आना चाहिए। तीसरी से लेकर ऊपर की कक्षाओं के सारे बच्चे—बहुत छोटे बच्चों को



छोड़कर— स्कूल वार और कक्षा वार आने चाहिए। यदि मेला किसी बड़े प्रकोष्ठ (hall) में हो रहा हो तो एक समय में १२० लड़के तक आ सकते हैं। यदि कमरा छोटा है, तो आयोजकों को सुविधानुसार संख्या निश्चित कर लेना चाहिए। छोटे बच्चों के लिए मेले में २० मिनट ठहरना काफी होगा, बड़ी कक्षाओं के लिए ३० मिनट।

माता-पिताओं और प्रौढ़ों को निमन्त्रण

स्थानीय माता-पिताओं और प्रौढ़ों को भी स्कूल के समय के बाद निमन्त्रित किया जा सकता है, वे अपने बच्चों को भी साथ ला सकते हैं।

मेले में जाने से पहिले ३ से ५ मिनट तक का भाषण प्रत्येक टुकड़ी को देना चाहिये। यदि उचित प्रकार से ये प्रवचन दिये जाँय तो व्याहारिक और शैक्षिक दृष्टि से उनका बड़ा महत्व हो सकता है। ये प्रवचन पुस्तक समारंभ पर केन्द्रित होने चाहियें। इनमें हमें बता देना चाहिये कि हर पुस्तकागार को देखना अच्छा है। यह भी बता देना उचित होगा कि किस प्रकार पुस्तकें चुनी और उठाई जाँय, कैसे पुस्तकें खरीदी जाँय और कैसे पैसे चुकाये जाँय।

पुस्तक विक्रेताओं का सहयोग पाना निम्नलिखित कारणों से कठिन नहीं है:—

(१) पुस्तक सप्ताहों के जरिये पुस्तकों की विक्री बढ़ती है और पुस्तक विक्रेता अधिक पैसा पैदा कर सकते हैं।

(२) स्कूल में आने से पुस्तक विक्रेता को नये ग्राहक मिलते हैं। हर प्रकार के दूर २ के घरों में बालकों के द्वारा पुस्तकें ले जाई जाती हैं और इस प्रकार विक्री के द्वारा अच्छा विज्ञापन हो जाता है।

(३) यह पद्धति जो शिक्षा के लिये बड़ी सहायक सिद्ध हुई है, पुस्तक विक्रेता के लिये शिक्षण जगत में प्रवेश पाने का अच्छा द्वार है।

(४) पुस्तकों और वाचन में रुचि बढ़ाकर, तथा वचपन में ही उन्हें खरीदने का अवसर प्रदान कर पुस्तक-विक्रेता भविष्य की पुस्तक-प्रिय जनता का निर्माण कर रहा है। पुस्तकालय और पुस्तक-सप्ताहों का शैक्षिक महत्व समझना कठिन नहीं है। यदि वचपन से ही पुस्तकों का उपयोग तथा उनका रसस्वादन करना नहीं सिखाया गया तो सुख या मनोरंजन के साधन के रूप में अथवा ज्ञानकोष को बढ़ाने के साधन के रूप में पुस्तकों का कोई महत्व नहीं होगा।

घर, स्कूल, राज्य और लेखकों की जिम्मेदारी

घर:- बालकों के द्वारा पुस्तकोपयोग के सम्बन्ध में घर की विशेष जिम्मेदारी नहीं है। स्कूल, पुस्तक विक्रेता और राज्य की अधिक जिम्मेदारियाँ हैं। किन्तु घर की भी कुछ जिम्मेदारी तो है ही। जब पुस्तकों के लिये जेब खर्च का सवाल उठता है तो घर की जिम्मेदारी स्पष्ट दिखाई देती है। कुछ माता-पिता जब अपने बच्चों को अतिरिक्त पुस्तकें पढ़ते देखते हैं तो वे उज्र करते हैं। वे यह आपत्ति यह समझ कर करते हैं कि इस प्रकार इधर उधर की पुस्तकें पढ़कर बालक पाठ्य-पुस्तकों की ओर दुर्लक्ष कर रहे हैं। उनके सामने परीक्षा का दृष्टिकोण होता है, वे साधारण शिक्षा के मूल्य को नहीं समझ सकते। ठीक इसके विपरीत हम बच्चों को अतिरिक्त वाचन के लिए प्रोत्साहन देना चाहेंगे। वर्ष भर के लिए उन्हें पुस्तकें खरीदने के लिए पर्याप्त जेब-खर्च मिलना चाहिए। माता-पिताओं को चाहिये कि वे समय समय पर अपने बच्चों के लिये पुस्तकें खरीद कर लायें जैसे वे मिठाई खरीद कर लाते हैं। धनी-मानी घरों में यह शुरूआत हो चुकी है और फल भी असाधारण निकला है।

समाज के नागरिक होने के नाते माता-पिताओं का एक और कर्तव्य है। यदि संभव हो तो उन्हें सार्वजनिक तरुण पुस्तकालय स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए अन्यथा प्रत्येक प्रौढ़ सार्वजनिक वाचनालय में बाल-विभाग स्थापित होना चाहिए। ऐसी समाज सेवा संस्थाओं को खुले हाथ से दान देना चाहिए। यह कुछ हद तक सही

है कि व्यक्तिगत और सार्वजनिक प्रयत्न राज्य की अपेक्षा अधिक सफल हो सकते हैं।

स्कूल:- स्कूल को चाहिए कि वह बालकों को पुस्तकप्रेमी बनाये। स्कूल इस कठिन सवाल को हल कर सकता है कि कैसे बालक में साहित्य के प्रति अभिरुचि पैदा की जाय और कैसे उसे वाचन के लिए प्रोत्साहित किया जाय। स्कूलों को चाहिए कि वे कुछ ऐसे तरीके ढूँढ निकालें जिनके द्वारा अतिरिक्त वाचन में बालकों की दिलचस्पी पैदा हो। इस माने में शिक्षक का वाचन तथा पुस्तकों के प्रति रुख बड़े महत्व का है। पुस्तकों में अभिरुचि और पढ़ने की इच्छा शिक्षकों के द्वारा किन्हीं पुस्तकों के उदाहरण अथवा हवाला देने से भी पैदा हो सकती है। शिक्षक की कहानी कहने की कला के द्वारा भी यह रुचि उत्पन्न हो सकती है। अथवा कक्षा में पुस्तकालय की पुस्तकों पर कुछ लड़कों द्वारा विवेचन के जरिये भी यह काम हो सकता है। किसी किताब का परिचय देने के शिक्षक के लहजे और ढंग से भी अभीष्ट फल निकल सकता है अथवा मौनवाचन या पुस्तकालय के घण्टे के उचित उपयोग के उदाहरण के द्वारा भी वांछित अभिरुचि पैदा की जा सकती है। शिक्षक का उत्साह ही रुचि और वाचन की इच्छा पैदा कर सकता है। कक्षा-पुस्तकालय-पद्धति, कहानियों की मौखिक पुनरावृत्ति, कक्षा के वाद-विवाद, कक्षा की पत्र-पत्रिकाएँ, वर्तमान हलचलों की कक्षा, पुस्तकों की प्रदर्शनी आदि अन्य महत्वपूर्ण तरीके हैं।

तरुण सार्वजनिक वाचनालयों और पुस्तक-सभाओं की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि किस प्रकार स्कूल बच्चों को वाचन के लिए प्रोत्साहित करने में नेतृत्व और अनुगाई करते हैं।

राज्य:-राज्य एक बहुत बड़ी हद तक संरक्षता और आर्थिक सहायता प्रदान कर तरुण सार्वजनिक पुस्तकालय स्थापित करने में सहायक हो सकता है। इस प्रकार के प्रयत्नों को राज्य के शिक्षाधिकारियों के द्वारा प्रेरणा और प्रोत्साहन मिल सकता है। तरुण वाचनालय स्कूल की शिक्षा की योजना का अंग माना जाना चाहिए। और इसलिए उनकी स्थापना, संचालन और विस्तार की ओर उचित ध्यान देना चाहिए। प्रत्येक जिले में हमें सरकारी हाईस्कूल और अन्य संस्थाएँ देखने को

मिलती हैं। इसी तरह प्रत्येक जिले में कम से कम एक तरुण पुस्तकालय भी सरकार के खर्च पर खुलना चाहिए। स्थानीय सहकारी संस्थाओं को भी इस मामले में नेतृत्व ग्रहण करना चाहिये। जैसा कि वे दूसरे (प्रौढ़) सार्वजनिक पुस्तकालयों के सम्बन्ध में करती हैं। लोक-सेवी संस्थाओं को राज्य की ओर से आर्थिक सहायता प्रदान कर प्रोत्साहन देना चाहिए।

पुस्तकों के लेखक

हिन्दुस्तान की शिक्षा की एक महत्वपूर्ण समस्या है बालकों के लिए रोज़मर्रा की बोली जाने वाली भाषा में पुस्तकें तैयार करना। जब ऐसी पुस्तकें मिलने लगेंगी तो बालक वाचन कला पर शीघ्र प्रभुत्व जमा लेगा। लेखक और प्रकाशक अब यह महसूस करने लगे हैं कि आराम-कुर्सी पर बैठे बैठे पुस्तकें तैयार करने के तरीके पर्याप्त नहीं हैं। केवल विषयों का चुनाव ही आवश्यक नहीं है, अपितु किस उम्र के बालकों के लिए कौन शब्द प्रयुक्त होंगे, यह चुनाव होना भी लाजिमी है। भिन्न प्रकार के स्कूलों के लिए भिन्न प्रकार की पुस्तकें और विषयों का चुनाव लाजिमी होगा। हिन्दुस्तानी बालकों के लिए पुस्तकें लिखने वाले क़िताबी विद्वानों और अध्यापकों का इस विषय का भ्रम बड़ा चौंका देने वाला है। हमने जो पाठ्य-पुस्तकें देखी हैं, उनसे हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि लेखकों को यह मालूम ही नहीं कि अमुक उम्र के बालकों के लिए सीमित शब्दावली कैसे रखी जाय। सच बात तो यह है कि बालकों के लिए पुस्तकें लिखना—वह फिर किसी भी भाषा में क्यों न हो—और वे पाठ्य-पुस्तकें हों या और कहानी की पुस्तकें—एक बड़ी कला है, जिसको प्राप्त करने के लिए दक्षता, धैर्य, सूक्ष्म और अनुभव की आवश्यकता है। हमारी यह दलील है कि पुस्तकों की सामग्री और भाषा दोनों बालक के लिए परिचित होनी चाहिए। पुस्तक के विचार बालक के लिए उपयुक्त होने चाहिए और ये विचार ऐसी भाषा में व्यक्त होना चाहिए जिसे बालक पहले से जानता हो। इससे बालक थोड़े ही समय में वाचन कला पर प्रभुत्व जमा लेंगे। बालकों के लिए पुस्तकें लिखने और विदेशी भाषाओं से हिन्दुस्तान की भाषाओं में अनुवाद करने के

मन्दिरों में

जैसे ही परीक्षाएँ पास आती हैं, मन्दिरों में स्कूली बालकों की भीड़ लगने लगती है। देवी देवताओं की कृपा से परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने की आशा लगाये देवालयों में बड़ी संख्याओं में स्कूली बालकों को घूमते देखना कोई असाधारण बात नहीं है। छोटी छोटी उम्र के बच्चे जो धर्म या धार्मिक कर्मों के बारे में कुछ नहीं जानते, वे भी मन्दिरों में जायां करते हैं। वे वहाँ क्या करते हैं ? वे केवल देवी देवताओं की चिरौरी करते हैं और मनाते हैं कि यदि परीक्षा में सफल रहे तो प्रसाद चढ़ायेंगे। ऐसे बालकों और बालिकाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करना बड़ी रोचक बातों को प्रकट करता है। वर्ष भर धार्मिक व्यवहारों या प्रवृत्तियों से इन बालकों का कोई सम्बन्ध नहीं रहता, पर परीक्षा के पूर्व के कुछ दिनों में परीक्षाका भय और सफलता का मोह उन्हें धार्मिक और ईश्वर परायण बना देता है। चाहे ये बालक अपनी इच्छा से ऐसा करते हों, चाहे अपने माता पिताओं का अनुकरण करते हों, जो कठिन समय या पढ़ने पर इसी प्रकार ईश्वर को याद करने लगते हैं, परन्तु उनका यह कृत्य होता व्यापारिक ढंग का है। हो सकता है कि वे कुछ धार्मिक रस्म का पालन करें, या कुछ मनौती मनावें और यदि देवता उनको कठिनाई से पार लगा दें या उनकी इच्छा पूर्ण कर दें तो वे उनको प्रसाद भेंट करें, पर उनके इस तमाम व्यापार के पीछे होती यही भावना है। हमें अचरज नहीं होना चाहिये कि ऐसी बातों में बहुत करके बालक अपने से बड़ों से लक्षण सीखते हैं। यह मनुष्यों और स्त्रियों में धार्मिक दृष्टि और समझ के अभाव का प्रमाण है कि वे धार्मिक क्षेत्र में भी लेन देन की नीति को नहीं छोड़ पाते।

अधुनिक मनोविज्ञान बताता है कि बालक स्वभावतया धर्मनिष्ठ होते हैं और यह प्रवृत्ति जीवन और विकास की विविध अवस्थाओं में विविध रूपों में व्यक्त होती है। अतः आवश्यकता इस बात की रह जाती है

कि जो लोग बालकों की शिक्षा दीक्षा के उत्तरदायी हैं, वे स्कूल, गिरजा या राज्य हर साधन द्वारा विविध विकास-स्तरों में हर प्रकार से इस वृत्ति की रक्षा और साधना करें। बाल-प्रवृत्ति की आधुनिक खोज ने सिद्ध किया है कि छोटी उम्र के बालकों को “ऐसा करो, वैसा न करो, यह धर्म है, वह अधर्म है”—इस ढंग से सिद्धान्त पढ़ाने से कोई लाभ नहीं है और ऐसा करना उनके लिये उपयोगी शिक्षण-क्रम के प्रतिकूल है। आज की शिक्षा-सरणी के अनुसार विषय नहीं बरन् बालक की आयु और प्रकृति शिक्षक के ध्यान की मुख्य बातें होनी चाहिये।

धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता

धार्मिक ज्ञान बालक की शिक्षा में एक विशेष स्थान रखता है। चूँकि अनेक बालकों को घर या पूजा स्थलों में धार्मिक अनुभवों से वंचित रहना पड़ता है, अतः यह आवश्यक है कि इस अभाव को मिटाने के लिये कुछ विशेष तौर तरीके अपनाए जायँ। धार्मिक पीठिका से हीन आधुनिक शिक्षा प्रणाली असफल सिद्ध हुई है सभी लोग क्या राजन्यवर्ग, या राजनीतिज्ञ, क्या शिक्षाविद् और क्या अन्य सभी यह मानने लगे हैं कि आज दुनियां में शोक और संघर्ष का जो वातावरण दीख रहा है, वह बहुत कुछ साफ हो सकता है, यदि शिक्षालयों में सही ढंग से उचित धार्मिक शिक्षा दी जाने लगे। धार्मिक शिक्षा से हीन मनुष्य समाज के लिये संकट है और ऐसे मनुष्यों को यथाशीघ्र धार्मिक और आध्यात्मिक संस्कार प्राप्त होना चाहिये। बालक की खातिर, राष्ट्र की खातिर और संसार की शान्ति और सुरक्षा की खातिर यह आवश्यक है कि आध्यात्मिक अशिक्षा का अन्त कर दिया जाय। माता पिता की असावधानी या अन्य किन्हीं कारणोंसे यदि बालक का स्वास्थ्य खराब हो जाय तो समाज ने उसकी स्वास्थ्य की रक्षा के लिये साधन जुटा रखे हैं। यही सिद्धान्त बालकों के मानसिक स्वास्थ्य रक्षा के सम्बन्ध में भी लागू होता है—फिर चाहे माता-माताओं द्वारा उस पर पूरा पूरा ध्यान दिया गया हो चाहे न दिया गया हो, क्योंकि धार्मिक अशिक्षा से केवल व्यक्ति का ही नहीं; सारे समाज का विकास अवरुद्ध हो जाता है। धार्मिक क्षेत्र में समाज ने अपने इतिहास में जो कुछ खोया या पाया है, उसका ज्ञान यदि बालक को न कराया गया, तो इससे

विद्यार्थियों की व्यावहारिक धार्मिकता

विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए एक बार महात्मा गांधी ने विद्यार्थियों के धर्म पर प्रकाश डाला था। उन्होंने कहा था कि वचपन से ही बालकों को धर्म की सैद्धान्तिकता में नहीं पड़ना चाहिए। उनके लिये सबसे पहला व्यावहारिक धर्म आत्म-निर्भरता है। विद्यार्थियों को आत्म-निर्भरता का अभ्यास करना चाहिये और यदि वे इसमें सफल हुए तो समझना चाहिए कि वे बड़ी ऊँची धार्मिकता का अभ्यास कर रहे हैं। विद्यार्थियों के लिये महात्मा गांधी का यह निर्देश बहुत विचारपूर्ण है। शुभ कार्य का श्रीगणेश घर से ही होना चाहिये। यदि मनुष्य अपने आपके प्रति सच्चा हो, तो वह दूसरों के प्रति भी सच्चाई का पालन करेगा। अपने कुटुम्ब के प्रति, समाज के प्रति और समस्त राष्ट्र के प्रति वह ईमानदार रहेगा। हर धर्म का यह सार तत्व है।

विद्यार्थी और हिन्दू-मुस्लिम एकता

हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य भारतवर्ष का बहुत बड़ा कलंक है। हमारे उत्थान के मार्ग में यह सबसे बड़ी बाधा भी है। विद्यार्थी किस प्रकार इन दो सम्प्रदायों के बीच एकता स्थापित करने में सहायक हो सकते हैं? नीचे कुछ सुझाव दिये जाते हैं:—

(१) आज के विद्यार्थी कल के देश के नागरिक हैं। उन्हें स्वयं सब प्रकार की साम्प्रदायिक भावना से मुक्त रहना चाहिये। एक सम्प्रदाय के विद्यार्थियों और दूसरे सम्प्रदाय के विद्यार्थियों के बीच अच्छे सम्बन्ध होने चाहिये।

(२) एक सम्प्रदाय के विद्यार्थियों को दूसरे साम्प्रदायों के लोगों के जीवन, उनके पैगम्बरों की विशेषताओं, उन सम्प्रदायों की उत्पत्ति के कारणों आदि विविध बातों का अध्ययन करना चाहिए। धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन से एक दूसरे के धर्म की ठीक-ठीक समझ और धार्मिक सहिष्णुता को प्रोत्साहन मिलेगा। स्कूलों में इन बातों पर यदि विशेष जोर न भी दिया जा सके, तो भी विद्यार्थियों को स्वयं इस ओर सचेष्ट रहना चाहिये।

(३) ईद, दिवाली, होली आदि त्यौहारों के अवसर पर जाति-पाँति



के भेद-भावों को दूर कर छात्रों को सम्मिलित रूप से उत्सव मनाना चाहिये। इन त्यौहारों के अवसर पर एक वर्ग विशेष के छात्र दूसरे वर्ग विशेष के छात्रों के घर जाकर उन्हें अभिनन्दन दे सकते हैं।

(४) देश में संयुक्त निर्वाचन को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से विद्यार्थियों को चाहिये कि अपने स्कूल में होने वाले निर्वाचनों में पृथक् निर्वाचन को स्थान न दें।

विद्यार्थी और छुवाछूत निवारण

छुवाछूत का निवारण एक कठिन कार्य है, पर विद्यार्थी इसमें भी बहुत योग दे सकते हैं। नीचे कुछ सुझाव प्रेषित हैं:—

(१) विद्यार्थियों को अपने मन से छुवाछूत की भावना दूर कर देनी चाहिये। यदि उनके माता-पिताओं को वे अपने मन का न भी बना सके तो भी वे स्वयं कल की संतति के पिता होने वाले हैं और इस प्रकार उनके विचारों का देश के भविष्य पर गहरा असर होगा और वे इस दोष को भारतवर्ष से निकाल बाहर करने में समर्थ होंगे।

(२) हरिजनों की भावना का स्कूलों में विशेष रूप से आदर होना चाहिये। विद्यार्थियों को अपने होस्टलों और भोजनालयों में हरिजनों को नौकर रखने में संकोच नहीं करना चाहिए। उनको नौकर रखने में उनके प्रति होना की भावना नहीं होनी चाहिये वरन् आज कल हरिजनों और हरिजनेतर व्यक्तियों के बीच जो खाई हो गई है, उसे पाटना हमारा उद्देश्य होना चाहिये।

(३) विद्यार्थियों को कभी कभी हरिजन वस्तियों में जाकर कुछ समाज-सेवा का काम करना चाहिये। वस्ती की सफाई; स्वास्थ्य, सामान्य ज्ञान आदि के सम्बन्ध में सूचनाएँ देना और समझाना ऐसे कई काम वहाँ किये जा सकते हैं। अछूतों के साथ इस प्रकार निकट संपर्क साधने से धीरे-धीरे सदियों से चली आ रही यह छूताछूत छूट जायगी। ये केवल कुछ सुझाव हैं। स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार और और ढंग विद्यार्थी स्वयं अपना सकते हैं।

घर, स्कूल और राज्य का दायित्व

इनमें से प्रत्येक को अपना-अपना काम है। घरों का कर्तव्य है कि वे

धार्मिक शिक्षा के महत्व को समझें, बालकों और बालिकाओं को धार्मिक शिक्षण देने में स्वयं कुछ हिस्सा लें, स्कूलों द्वारा धार्मिक शिक्षण की व्यवस्था का स्वागत करें तथा उसे सफल बनाने का प्रयत्न करें क्योंकि वे ही अपने बालक-बालिकाओं की शिक्षा-दीक्षा का भार स्कूलों को सौंपने वाले हैं। स्कूलों का कर्तव्य है कि वे जिस प्रकार स्कूल-पाठ्यक्रम के अन्य विषयों का नियमित और व्यवस्थित अध्यापन करते हैं, उसी प्रकार धर्म का भी करें। साथ ही जिन-जिन सम्प्रदायों के बालक उनके यहाँ पढ़ने आते हैं, उनकी भावनाओं का भी खयाल रखें। राज्य का कर्तव्य है कि वह यह देखे कि एक वर्ग के हित या उन्नति की खातिर दूसरे वर्ग को किसी प्रकार का आघात न लगे। धार्मिक शिक्षण की दृष्टि से सार्वजनिक हित का विचार रखते हुए उसे एक समान और संयत पौलिसी का पालन करना चाहिये।

घर

सब से पहली बात तो यह है कि माता-पिता बालक के जीवन के विकास-क्रम में धार्मिक-शिक्षा की महत्ता को अनुभव करें। वास्तव में कई माता-पिता यह अनुभव करते हैं, पर अधिकांश ने उसके उचित शिक्षण के लिये कोई विशेष उत्सुकता नहीं दिखाई है। कुछ वर्ग इस दृष्टि से बिल्कुल पिछड़े हुए हैं, कुछ ने अधिक तत्परता दिखाई है, तो कुछ ने आवश्यकता से अधिक इस बात को तूल दिया है। यदि स्कूलों में धार्मिक शिक्षा के प्रकार, रूप और मात्रा के सम्बन्ध में कोई सामान्य आधार स्थिर किया जा सकता तो धार्मिक शिक्षा के मार्ग में आने वाली अनेक अड़चनें दूर हो गई होतीं।

पहले इस बात का संकेत किया गया है कि धार्मिक शिक्षा देने का सबसे अच्छा ढंग आत्म-निर्भरता से प्रारम्भ करना है। माता-पिताओं को चाहिए कि वे बालकों में आत्म-निर्भरता का गुण उत्पन्न करें और दूसरों की सहायता करने की भावना को भी प्रोत्साहन दें। यह कई तरह से किया जा सकता है। धर्म की सीधी शिक्षा देने की दृष्टि से तो घर सर्वोत्तम साधक है। यह अवश्य है कि भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बियों के घरों में धार्मिक शिक्षण के प्रति माता-पिताओं के उत्साह के मात्रा-भेद और धार्मिक मनोवृत्ति के भेद से इस धार्मिक शिक्षण का रूप और प्रकार भिन्न-भिन्न होगा। परन्तु अपनी अभिष्ट सिद्धि का माता-पिताओं को अधिकार

~~~~~

पूरा-पूरा है। इस बात पर जोर देने की आवश्यकता है कि बालकों की धार्मिक शिक्षा केवल औपचारिक और सैद्धान्तिक रहने से कोई लाभ नहीं है। धर्म की सहज वृत्ति औपचारिक धार्मिक ज्ञान की अपेक्षा कहीं अधिक विशेषता-पूर्ण है।

इस बात का भी संकेत किया गया था कि धार्मिक शिक्षा के माने में भी स्कूल को अन्य विषयों की भाँति अधिक योग देना होगा। स्कूलों के पास अधिकारी शिक्षक और आवश्यक उपयोगी सामग्री का सुपास होता है, अतः वे अपने काम को अधिक उत्तम और संतोषजनक रीति से निभा सकते हैं। स्कूलों में धार्मिक शिक्षा का क्या रूप हो, यह दूसरी बात है और इस बारे में आगे विचार किया जायगा। माता-पिताओं को धार्मिक शिक्षा की महत्ता को स्वीकार करने के साथ साथ स्कूलों की इस विशिष्ट स्थिति को भी ध्यान में रखना चाहिये। उन्हें इस लक्ष्य-साधन की दृष्टि से स्कूलों में विश्वास करना चाहिये और उन्हें अपना काम ठीक से करने में सहायता पहुँचानी चाहिए। उनको यह अधिकार अवश्य है कि यदि वे यह देखें कि किसी स्कूल में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा दोषपूर्ण है, या उनके विश्वास के विपरीत है, तो वे उसका विरोध करें या अपने बालकों को वहाँ से अलग कर लें, पर इसमें भी यह विचार की बात है कि ऐसा बहुत सोच समझ कर किया जाय और ऐसा करने में केवल भावना के प्रवाह में न बहा जाय।

### स्कूल

अभी तक स्कूली शिक्षा मुख्यतया पढ़ना-लिखना सिखा देने और अंकों का ज्ञान करा देने तक ही सीमित रही है। चूँकि अब समाज ने देश के भावी नागरिक और भविष्य के निर्माता बालकों की शिक्षा में धार्मिक शिक्षण का महत्व भी स्वीकार कर लिया है, इसलिये स्कूलों का कर्तव्य है कि वे इस ओर भी समान रूप से ध्यान दें।

भारतवर्ष अनेक धर्मों वाला देश है और इसी कारण सामान्य-शिक्षण के क्षेत्र से धर्म की शिक्षा को अलग रखा गया है। किसी विशेष धर्म की शिक्षा देने से नाना प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जायँगी—ऐसा समझा जाता रहा है। जब तक धर्म और साम्प्रदायिकता को लोग एक समझ कर चलते रहे, तब तक शिक्षा जंगल में धर्म से दूर रहने के



विकल्प के अतिरिक्त और कोई चारा भी नहीं था । पर धर्म सिद्धान्त-वादिता, औपचारिकता, कर्मकाण्ड आदि से बहुत भिन्न वस्तु है । वह एक जीवन-कर्तव्य है । अतः हम आसानी में धार्मिक शिक्षा की दृष्टि से एक सर्वश्रेष्ठ पाठ्यक्रम तैयार कर सकते हैं । आज यह चर्चा होने लगी है कि सभी धर्मों में कुछ समन्वयात्मक समानताएँ हैं । इन सामान्य समानताओं का सम्बन्ध केवल तर्क और विवाद से नहीं है, बल्कि उसका आधार वे मूल तत्व हैं, जो समाज को समन्वित बनाये रखने की दृष्टि से उपादेय हैं । मानवमात्र के प्रति सम्मान की भावना एक पूजामय व्यावहारिक धार्मिक समाज की कल्पना और आध्यात्मिक गुणों का स्वीकरण ऐसी बातें हैं जो सभी धर्मों में समान रूप से पाई जाती हैं और ये ही गत्यात्मक संस्कृति की एकता को कायम रखती हैं । यदि धर्म और शिक्षा को प्रगतिशील दृष्टिकोण से समझा जाय, तो दिखेगा कि धर्म को सर्वथा असांस्कृतिक रूप से स्कूलों के पाठ्यक्रम में स्थान दिया जा सकता है । कुछ सुझाव इस प्रकार हैं:—

(१) स्कूल धर्म के मानवीय इतिहास में एक रचनात्मक शक्ति के रूप में परिचय दें ।

(२) स्कूलों में धर्म का सामान्य ज्ञान करवाने के साथ साथ उसकी साहित्य, प्रकृति विज्ञान, इतिहास, और समाज विज्ञान आदि विषय के साथ तुलना करने और करवाने का भी विचार रखा जाय । इसका फल यह होगा कि हमारा तरुण-समाज अपनी परम्परा प्राप्त विभूति को समझने और आस्वादन करने में समर्थ होगा ।

(३) स्कूल धार्मिक दृष्टिकोण के निर्माण में बहुत सहायक हो सकते हैं और विशेष प्रकार से धार्मिक समारोह आदि के संयोजन द्वारा तरुणों को संसार के महान् धर्मों को समझने और उनका सम्मान करने की अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरणा प्रदान कर सकते हैं । चूंकि स्कूल ही एक ऐसा स्थान है, जहाँ विविध वर्गों, धर्मों और विचारों के व्यक्तियों के बालक एकत्र होते हैं, इसलिए एक सामान्य जीवन का निर्माण करने वाले भिन्न-भिन्न समूहों को अपने-अपने दृष्टिकोणों और विचारों का आदान प्रदान करने का इतना अच्छा अवसर और कहीं नहीं मिल सकता ।

(४) स्कूल-समाज में वास्तविक अनुभव और कार्य द्वारा बालकों को शनैः-शनैः उन महान् आध्यात्मिक गुणों का परिचय और साक्षात् कराया जा सकता है जो समाज की विभिन्न इकाइयों को आपस में मिलाये रखते हैं।

अच्छा होगा कि स्कूल इन सम्भावनाओं के बारे में अधिक ज्ञान-वीन करें। और लोग यह काम करें, इसकी अपेक्षा स्कूलों द्वारा ही यह काम किया जाय तो अधिक अच्छा हो। सब धर्मों के सामान्य सिद्धान्तों को षकड़ लेने के बाद यह प्रश्न उठता है कि धार्मिक शिक्षा कौन दे, कहाँ दे और कब दे ?

यह बहुत आवश्यक है कि धार्मिक शिक्षा स्कूल के नियमित शिक्षक समुदाय में से ही कोई दे। किसी मुल्ला या पंडित को इसके लिए अलग से नियुक्त करना अच्छा नहीं है। यह भी देखा जाय कि जो भी अध्यापक निश्चित धार्मिक-पाठ्यक्रम के अनुसार अध्यापन करे, वह उसका ठीक-ठीक अनुशीलन करे और उसमें रुचि रखने वाला हो। नवीन शिक्षा-विधान के अनुसार प्रत्येक विषय का अध्यापन ऐसे अध्यापक के हाथ में होना चाहिए, जो उस विषय को पढ़ाने की दृष्टि से ट्रेनिंग प्राप्त कर चुका हो। जिस प्रकार अन्य विषयों में सभी अध्यापक सभी विषयों को ठीक-ठीक नहीं पढ़ा सकते, उसी प्रकार धर्म का ज्ञान भी सभी नहीं करा सकते। धार्मिक शिक्षण का उस विषय का ज्ञान रखने वाले योग्य इन्सपेक्टरों द्वारा निरीक्षण भी होता रहना चाहिए। धार्मिक शिक्षा के लिए भी अन्य विषयों की भाँति सब से ठीक स्थान स्कूल ही है। प्रत्येक स्कूल का समय-विभाग उसकी व्यवस्था की सुविधा को ध्यान में रखते हुए तैयार किया जा सकता है। यदि 'धर्म' विषय के स्कूलों में कई पढ़ाने वाले उपलब्ध हों तो सब से अच्छा यह होगा कि धर्म का पीरियड सब से पहला हो।

### धार्मिक शिक्षण के लिए विशेष और अधिक अवसर की सुविधा

यदि कोई माता-पिता या कई माता-पिता यह चाहें कि उनके बालकों को धार्मिक शिक्षा का अधिक अवसर दिया जाय तो स्कूलों में उसका

प्रबन्ध कर दिया जाना चाहिए। जैसा भी माता-पिताओं से तय हो जाय प्रतिदिन या सप्ताह में कुछ दिन कुछ समय के लिए छात्रों को इसके लिए मुक्त कर दिया जाय। माता-पिता चाहें तो स्कूल के भवन में भी इस प्रकार के शिक्षण की व्यवस्था के लिए स्वीकृति दी जा सकती है। जो लड़के इन धार्मिक कक्षाओं में न सम्मिलित होने वाले हों, उन्हें स्कूल में अपना पिछड़ा हुआ काम पूरा करने, पढ़े हुए की आवृत्ति करने तथा खेल खेलने आदि में लगा देना चाहिए।

## राज्य

पहले ऐसा संकेत किया जा चुका है कि धार्मिक शिक्षा सरकारी, सरकार से सहायता प्राप्त और सार्वजनिक या ग्राइवेट सभी प्रकार की शिक्षा संस्थाओं में अनिवार्य कर दी जानी चाहिए, क्योंकि गुणों और चरित्र के विकास के लिए उसकी महत्ती आवश्यकता है। जिस प्रकार लिखने, पढ़ने और गिनने की शिक्षा अनिवार्य समझी जाती है, जिस प्रकार शारीरिक-स्वास्थ्य की शिक्षा अब अनिवार्य समझी जाने लगी है, उसी प्रकार तमाम स्कूलों में धार्मिक शिक्षा को भी पूरी तरह अनिवार्य समझा जाना चाहिए। राज्य का कर्तव्य है कि वह धार्मिक शिक्षण की सुव्यवस्था के लिए अपने वश भर पूरी सहायता दे। यदि राज्य ऐसा नहीं करता तो अप्रत्यक्ष रूप से वह अपने आपको धर्म के विरुद्ध प्रचार करने का अपराधी बनाता है। धार्मिक शिक्षण के मार्ग में आने वाले बाधाओं को दूर करने के लिए “सर्व धर्म समन्वय मूलक सामान्य तत्वों” का आश्रय लिया जा सकता है। निस्सन्देह राज्य का यह कर्तव्य है कि वह इस प्रकार की शिक्षा पर ध्यान दे और उसके लिए हर सुविधा देने के लिए तैयार रहे।

यदि इस समस्या को पक्षपात रहित होकर और सच्चे मन से सुलझाने की चेष्टा की जाय तो सामान्यतया किसी भी तरह की कठिनाई पढ़ने की सम्भावना नहीं है। अवश्य ही राज्य किसी वर्ग विशेष के धर्म या सांप्रदायिकता के साथ अपना गठबन्धन नहीं कर सकता और राज्य का फर्ज है कि इस बात का ध्यान रखे कि किसी भी सरकारी या सरकार से सहायता प्राप्त शिक्षा संस्था में किसी को उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी एक वर्ग की धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए विवश न किया

जाय। माता-पिताओं का भी यह अधिकार है कि वे ऐसे बच्चापातपूर्ण धार्मिक शिक्षण से अपने बालकों को अलग कर लें और राज्य को उनके इस अधिकार की रक्षा करनी चाहिए।

## देवस्थान

राज्य और देवस्थान अब दो अलग अलग बातें हो गई हैं। जब धर्म और राज्य एक थे तब देवस्थान या धर्म-गृह जो चाहते बह नीति शिक्षा आदि के बारे में निश्चित कर लेते, पर आज यह बात नहीं है।

जहाँ तक धार्मिक शिक्षा का सम्बन्ध है, कार्यक्रम का ध्यान रखते हुए कुछ सुझाव रखे जा सकते हैं। प्रगतिशील पण्डितों और मुझा मौलवियों को चाहिये कि वे विविध धर्मों की सामान्य बातों को स्पष्ट करने में योग दें। शिक्षकों और शिक्षाधिकारियों को धार्मिक शिक्षा के बारे में उनसे काफ़ी सत्परामर्श मिल सकता है। जब इस प्रकार एक सामान्य पाठ्यक्रम शिक्षाधिकारियों द्वारा स्वीकृत हो जाय तो फिर वह समस्त स्कूलों में धार्मिक शिक्षण के आधार रूप का काम कर उठेगा। मेरा विश्वास है कि हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, पारसी आदि विविध वर्गों के धर्मों के मूल में ऐसे सामान्य आदर्श, सिद्धान्त और विशेषताएँ पाई जा सकती हैं, जिनके आधार पर छोटे घालकों के लिए धार्मिक शिक्षा की सरणी तैयार की जा सके।

यह पहले ही कहा चुका है कि धर्म की शिक्षा स्कूल के ही किसी नियमित अध्यापक द्वारा होनी चाहिए। यह भी लाभप्रद होगा कि देवस्थानों के कुछ धार्मिक व्यक्ति कुछ वर्षों तक शिक्षा स्थानों में पूरे समय के अध्यापकों की तरह काम करें।

ऊपर धार्मिक शिक्षण के लिए विशेष अवसर और सुविधा की जो बात कही गई है, उस माने में देवस्थानों से सब से अच्छी सहायता मिल सकती है। ये दो प्रकार से सहायता दे सकते हैं। पहली बात तो यह है कि विविध धर्मों के धार्मिक स्थान अपने-अपने अनुयायियों के बालकों की शिक्षा की व्यवस्था का भार अपने ऊपर ले लें। सहयोग के आधार पर इस प्रकार कुछ कक्षाएँ चलाई जा सकती हैं। ऐसी कक्षाओं में अध्यापन के लिए शिक्षक इस प्रकार के धार्मिक संगठनों से प्राप्त किए जा सकते हैं।

## दोस्तों के बीच

मित्रता जैसे विशद विषय पर—वह भी विशेषकर घर और स्कूल के बाहर—उपयुक्त रीति से विवेचन करना और उन सब प्रश्नों का जवाब देने का हौसला करना जो माता-पिताओं अथवा शिक्षकों के मस्तिष्क में अपने स्कूल और घर की स्थितियों के सम्बन्ध में उठते हैं, कठिन ही होगा। अधिक से अधिक कोई यह कर सकता है कि समस्याओं को हल करने का रास्ता बताये। बालक तथा उसकी सामाजिक स्थिति की जिससे मेल बिठाने के लिए वह प्रयत्नशील होता है—जाँच करने के बाद ही कोई बता सकता है कि वह एक खास प्रकार के ढाँचे पर ही अपनी मित्रता क्यों स्थापित करता है? एक बालक का दूसरे बालकों के साथ मित्रता स्थापित करने का सवाल और उससे निकलने वाली समस्याएँ—खास कर घर और स्कूल के बाहर की—अत्यन्त महत्व की हैं। हमारा ध्यान शीघ्र ही इस ओर खिंचना चाहिये। घर और स्कूल में दी जाने वाली स्वतंत्रता के बढ़ जाने से इस प्रश्न का महत्व और भी बढ़ गया है।

सभी बालकों में समूह की वृत्ति बड़ी प्रबल होती है। एक स्वस्थ बालक हमेशा नये दोस्त बनाने, उनके साथ खेलने तथा उनसे मिलने-जुलने के लिए आतुर रहता है। सुविधा के लिए लेखक २१ वर्ष तक के समय यानी पौगण्डावस्था की अन्तिम सीमा तक के समय को तीन विभागों में बाँटना चाहता है—(१) शैशव में मित्रता—जब की दोस्तों का दायरा घर और पड़ोस तक ही सीमित होता है; (२) वचपन में मित्रता—इस काल में घेरा बढ़कर सारे मुहल्ले का समावेश कर लेता है और समूह की भावना परिपक्व हो जाती है; (३) पौगण्डावस्था में मित्रता—इस समय तक मित्रता का दायरा सारे शहर तक विस्तृत हो जाता है और इसकी मुख्य प्रवृत्तियों में समलिंगी मित्रता, बाद में विभिन्न लिंगी मित्रता, दल की भावना और कभी २ अपराध और कर्त्तव्यच्युत गिनी





जा सकती है। इन तीनों में पौगण्ड काल की मित्रता अधिक महत्वपूर्ण और दिलचस्प है। इसलिए मित्रता के इस काल पर अधिक विस्तार से लिखा जायगा।

## शिशुकाल में मित्रता

इस अवस्था के शुरु के सालों से हमें कोई वास्ता नहीं क्योंकि मैत्री का दायरा अधिकांश रूप में घर और घर के दूसरे रहने वालों तक ही सीमित होता है। बालक एक दूसरे का साहचर्य चाहते हैं। एक एकाकी बालक से बढ़कर करुण कोई पात्र नहीं। बड़ों के साथ भी बालक मैत्री चाहता है। घर के साहचर्य से बालक लोगों के प्रति प्राथमिक वृत्तियों का निर्माण करते हैं। और यह वृत्ति है सहनशीलता—बिना उम्र, सेक्स, प्रचलित मान्यता अथवा अन्य ऐसी बातों को ध्यान दिये दूसरे लोगों को समझने और उन्हें मानने की योग्यता।

बड़ों के साहचर्य के बावजूद भी बालक अपनी उम्र के सहचरों के लिए तरसता है। अपने बराबर के लोगों के साथ बरतने में जिन वृत्तियों की आवश्यकता होती है, वे अपने से बड़ों के साथ बरतने के लिए आवश्यक वृत्तियों से भिन्न होती है। इसलिए यह अभीष्ट है कि ऐसे समय जब बालक की प्रथम सामाजिक वृत्तियाँ और आदतें बन रही हैं, अपने से बराबर वालों के साथ समायोजन करने का उसे अवसर मिले।

## हम-उम्रों का साहचर्य आवश्यक है

ज्योंही बालक अपने हम उम्रों के साथ मिलना-जुलना शुरू करते हैं, बालक में बड़ों के साथ होने वाली प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलती हैं। वे पारस्परिक सुझावों और टीकाटिप्पणों के प्रति, बड़ों से मिलने वाले सुझावों और आलोचना की वनिस्वत अधिक हमदर्द और सहनशील होते हैं। अपनी उम्र की बोली में वह यह सीखता है कि दल के द्वारा बनाये गये नियम उसके लिये तथा दूसरे वयों के लिए भी लाभदायक हैं। मुझे सन्देह है कि बालक उसी सहानुभूति और तत्परता के साथ बड़ों के नियम-निषेधों को स्वीकार कर सकता है जैसे वह अपनी उम्र

के दल के नियमों को स्वीकार करता है। दो वर्ष से लगाकर ६ वर्ष तक के बच्चे से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह ३० या ४० वर्ष के माता-पिता के सारे अधिकारों को समझ सके। बड़ों के साथ के सम्बन्ध में वह उस न्याय और सहयोग का अनुभव नहीं कर सकता जो कि वह अपनी ही उम्र के दल के नियमों की ओर महत्त्व करता है। अपनी बराबरी की उम्र के दल में ही बालक उत्तम प्रकार से सहानुभूति पर आधारित सहयोग की भावना का विकास कर सकता है। कई बच्चे आत्मसंयम का पाठ घर की अपेक्षा घर के बाहर अपने हम उम्र खेल के साथियों के साथ ही अधिक सीखते हैं। अपने साथियों के साथ खेलते-खेलते जब बालक रो देता है तो उसे ज्ञात होता है कि उसका रोना कारगर नहीं है। सम्भवतः उसके हमजोली उसके क्रन्दन की ओर दुर्लक्ष्य कर देंगे। सहानुभूति तो वे क्वचित् ही प्रदर्शित करते हैं। वह भी अपने आपको लाचार पाता है। कुछ भी हो जाय, वह अपने दोस्तों को नहीं छोड़ सकता। नतीजा आत्म-संयम होता है एक और लाभ होता है: दूसरों के साहचर्य के जरिये जिनकी योग्यता और रुचि उसके जैसी ही होती है, बालक अपने आप में अधिक आत्मविश्वास करने लगता है। वह अधिक स्वतन्त्रता से और खुलकर विविध कार्यों में भाग लेने लगता है और खेल के साधनोंको अधिक विविध रूप से काम में लेता है।

## दूसरा पन्ना

अब थोड़े समय के लिए हम चित्र का दूसरा पन्ना देखें। यह सच है कि अपनी उम्र के दल की संगति के फायदे अधिक और हानि कम हैं। यह कहना अधिक सही होगा कि ये हानियाँ दलजीवन की हानियाँ नहीं हैं अपितु दल की विविधता, अस्वास्थ्यकर दशा, अवाञ्छनीय व्यक्तिगत आदतें और उचित देखरेख का अभाव ही कारणभूत है। छूत की बीमारियों का संस्पर्श, नाखून चबाना, थूकना, अपशब्द निकालना, ईर्ष्या आदि कुछ अत्यन्त प्रचलित उदाहरण हैं (हानियों के)। जब बालक जीवन के प्रति वृत्तियों और आदतों का निर्माण शुरू कर रहा हो, उस वृत्ति में इस ओर उपेक्षा नहीं की जा सकती। अभी ऊपर मैंने 'उचित देखरेख का अभाव'—इन शब्दों का प्रयोग किया है। इनका खुलासा

करना आवश्यक है, साथ ही सावधानी की भी आवश्यकता है। हमें यह कभी नहीं मानना चाहिए कि उचित देखरेख से मतलब है आदेश देना या निषेध करना। अधिक अच्छा तो यह है कि बालक जब खेलते हों तो हम उनके नज़दीक रहें। यदि हम उनके खेलको निर्देश करने का प्रयत्न करते हैं तो हम वस्तुतः उन्हीं मूल्यों का संहार करते हैं जिन्हें हम साहचर्य के जरिये बालक के जीवन में उतारने की अपेक्षा रखते हैं। हमारा कर्तव्य तो यह है कि हम हर बालक को इस प्रकार सहायता करें कि वह अधिक आनन्द के साथ और अधिक उन्मुक्त रूप से दूसरे बालकों के साथ खेल सके। हमें यह भी जानना चाहिए कि किस प्रकार की सहायता से ऊपर गिनाई हुई अवाञ्छनीय आदतों से बालक का छुटकारा हो सकेगा।

## बचपन में मित्रता

बचपन के मध्य काल में सामाजिक चेतना बेहद प्रस्फुटित होती है। किन्तु यह विकास बालक अपने ही स्तर पर करता है, प्रौढ़-वर्तन के मानों में नहीं। वस्तुतः इस उम्र का बालक प्रौढ़ों से मुँह फेर कर अपनी ही उम्र के घर के बालकों से—यदि घर में बालक हुए तो—बल या हमदर्दी पाने की कोशिश करता है। अन्यथा वह अपनी मित्रता का दायरा मोहल्ला, पड़ोस और शहर तक बढ़ा देता है। समूह की भावना परिपक्व हो जाती है और बालक निःसंदिग्ध रूप से दूसरे बालकों के गुट में रहने लगता है। वह अकेला खेलना नहीं चाहता; अपनी सारी क्रीड़ाओं में वह दूसरे बालकों का साथ ढूँढ लेता है। यही समय है जब गुट उसके जीवन में साधारणतया एक अत्यन्त शक्तिशाली प्रभाव रखता है। 'गुट' शब्द ही प्रौढ़ों को भाषा में एक अभद्र ध्वनि रखने वाला शब्द माना जाता है और जो आदतें बालक इस अवस्था में सीखने लगता है, वे प्रौढ़ों की इस शब्द की अवमानना को उचित हो ठहराती हैं। हर घर में माताओं की यह आम शिक्षायत्त होती है कि जो बालक उनके संरक्षण में रहा करता था अब उसे सुविधा प्रदान करने वाला—भोजन और आश्रय देने वाला एक व्यक्ति मात्र समझता है। जीवन का वास्तविक आनन्द तो उसे और कहीं मिलता है।

## खिलाड़ियों के दल का संगठन

इस अवस्था के बालकों में कई छोटे-मोटे दल संगठित होते हैं। यदि आप किसी वस्ती में से गुजरते हैं तो आपको सड़कों पर, बाजार या मैदान में बालकों के गुट मिलेंगे। ये गुट वे स्वयं संगठन के आधार पर चलाते हैं, जिनमें नेता, उपनेता, अनुचर, पुलिस और दूसरे अधिकारी होते हैं। अनुशासन भी रखा जाता है। शासन का प्रकार और पदाधिकारियों का काम खेल के प्रकार पर निर्भर करता है। आँख मिचौनी, गुल्ली-डण्डा, गेंद के खेल, गोली आदि भारत में सामान्यतया खेले जाने वाले खेल हैं, जो इन गुटों के द्वारा खेले जाते हैं। गुट के प्रति वफादारी की भावना बड़ी प्रबल होती है। नेताओं का तानाशाहों की तरह आज्ञापालन होता है।

## आचारा लड़के

इस उम्र के—खास कर किशोर वय के—कई बालक वदतमीज, वेष्ट की ओर से लापरवाह, घमण्डी और हठी हो जाते हैं। वे गाली गलोज करते, शोर गुल मचाते, आपस में वैमनस्य रखते और यहाँ तक की प्रौढ़ों के प्रति विद्रोही हो जाते हैं। ऐसे बालक जिनकी घर पर कोई फिक्र नहीं ली जाती, या बहुत कम ली जाती है सड़क पर भटकने वाले आचारा लड़के हो जाते हैं। ये आचारा लड़के अध्ययन का बड़ा दिलचस्प विषय हो सकते हैं, किन्तु इस छोटे-से लेख में बहुत अधिक जगह इसे नहीं दी जा सकती, भले ही खोज की दृष्टि से फिर यह कितना ही लुभावना क्षेत्र क्यों न हो। मेरा विषय तो स्वस्थ साधारण बालक है।

## मनोवैज्ञानिक लाभ

इन सब बातों के प्रत्यक्ष होते हुए भी बालक भावात्मक विकास में सहृदयपूर्ण उन्नति कर रहा होता है। वह घर से दूर-दूर रहने की कोशिश करता है और अपने ही जैसे लोगों के छोटे से सुगठित समाज के सदस्य की हैसियत से अपनी योग्यता की परीक्षा करना चाहता है। इस समाज में वह आदान-प्रदान की भावना ग्रहण करता है। गुट के नीति-नियम प्रौढ़ों के उच्च आदर्शों का समावेश भले ही न करते हों,

किन्तु उनके पालन में जिम्मेदारी और पुरस्कारों के भागीदार होने के पहले महत्व का अनुभव होता है।

## पौगण्डावस्था में मित्रता

पौगण्डावस्था सरासरी तौर पर १४ और २१ वर्ष के बीच के जीवन का समय है। इन सात वर्षों में लड़के और लड़की दोनों में बड़ा परिवर्तन और विकास होता है। जहाँ तक पौगण्ड मैत्री का सम्बन्ध है, पौगण्ड विकास दो प्रधान कालों में विभक्त होता है। पहले कुछ वर्षों में समलिङ्गी मित्रता प्रमुख होती है। दूसरी सीढ़ी में भिन्नलिङ्गी मित्रता प्रधान स्थान ग्रहण करती है। यह दूसरी अवस्था हिन्दुस्तान में इतना महत्व नहीं रखती, क्योंकि इस उम्र के लड़के-लड़की प्रायः मुक्त रूप से मिलने नहीं दिये जाते। अपवाद स्वरूप सहशिक्षा चलानेवाली संस्थाएँ, लाहौर-कलकत्ता आदि बड़े-बड़े शहर—जहाँ उच्च शिक्षा का प्रसार है और स्वतंत्रता अधिक और पर्दा कम है—छोड़े जा सकते हैं। अलवत्ता हिन्दुस्तान के गाँवों में यह अवस्था बड़ा महत्व रखती है। गाँवों में लड़के-लड़की स्वछन्दतापूर्वक मैदानों, कुओं और मनोरंजन के स्थलों पर परस्पर मिलते हैं। गाँवों में स्वतंत्रता अधिक और पर्दा तथा शिक्षा कम है। गाँवों में इस समस्या से सम्बन्धित क्षेत्र विशाल है क्योंकि पौगण्ड लड़कों और लड़कियों के सम्बन्ध शिक्षा के अभाव और सीमित अभिरुचियों के कारण अधिक स्वाभाविक और निर्दोष हैं।

## प्रथम काल

जैसा कि पहले बताया दिया गया है, इस काल में मित्रता प्रायः सम-लिङ्गी मित्रों तक ही सीमित होती है। ऐसा क्यों होता है? ऐसा इसलिए होता है कि लड़के और लड़कियाँ अपने विषय में डाँवाडोल हो उठते हैं; उनकी आवाज़ फट जाती है, छाती फूलने लगती है, लड़कियों को मासिक स्राव होने लगता है और लड़कों का वीर्य-स्खलन होने लगता है। परिणाम स्वरूप वे सबसे सुरक्षित मार्ग का आश्रय लेते हैं—सम-लिङ्गियों से मित्रता। हिन्दुस्तान में घर और स्कूल से बाहर लड़कियों की पारस्परिक मित्रता का उतना महत्व नहीं है जितना कि लड़कों की पारस्परिक मित्रता का, जो टोलियाँ बनाकर घूमते रहते हैं। इसलिए

लड़कों की समलिंगी मित्रता पर अधिक विस्तार से लिखना अधिक उपयोगी होगा। लड़कों को स्कूलों में और घर के बाहर इकट्ठा रहने और मित्रता स्थापित करने का बड़ा अवसर मिलता है। यह मित्रता वासना-पूर्ण होती है। लड़कों में यह समलिंग कामुक अवस्था बड़ी नाजुक होती है और हमें अधिक से अधिक ध्यान इस ओर देना चाहिए। ऐसे भी अतिरिक्त उदाहरण मिलना कठिन नहीं है जिनमें लड़कों-लड़कों में मैथुन होता है। इस अवस्था के पौगण्डों के निकट सम्पर्क में रहने वाले ऐसी प्रवृत्तियों और बातों की अधिक जानकारी रखते हैं। यहाँ इस समस्या का विस्तार करने की जरूरत नहीं है। ऐसे मामलों के साथ किस प्रकार बरता जाय, इसका विवेचन घर, स्कूल और राज्य की जिम्मेदारियों पर विचार करते समय किया जायगा।

मित्रता के शुभ अथवा हानिकर होने की कसौटी यह है कि क्या दोनों दोस्त एक-दूसरे के व्यक्तित्व का सच्चा सम्मान करते हैं, क्या दोनों सहयोग की भावना रखते हैं और एक-दूसरे को रुचि और संचरण की स्वतन्त्रता देने को तैयार हैं। जब मित्रता एकाधिकार की तरह होती है, जब वह सन्देहग्रस्त और संकुचित होती है, जब एक मित्र धमकी के बल दूसरे पर काबू किये रहता है, तब मित्रता असद् होती है। जब मित्रता विकास को प्रोत्साहित करती है, व्यक्तित्व को परिपक्व बनाती है और कार्य और अभिरुचि के क्षेत्र का विस्तार करती है, तब वह सचमुच बड़ी अमूल्य होती है।

## द्वितीय काल

अब हम मित्रलिंगी पौगण्ड मित्रता का विषय लेते हैं। ज्यों-ज्यों बालक अवस्था पाता है, त्यों-त्यों उसकी भावात्मक रुचि मित्रों, दलों तथा घर और स्कूल के बाहर की प्रवृत्तियों के द्वारा अधिक होती है। माता-पिताओं की एक बड़ी से बड़ी कठिनाई, पौगण्डावस्था की ओर अग्रसर होते हुए लड़के-लड़कियों की दिन पर दिन बढ़ती हुई स्वतन्त्रता से समायुक्त होना है। लड़के-लड़कियाँ बड़ों से अलग अपनी एक दुनियाँ में रहने लगते हैं। यह समझ लेना हमारे लिये हितकर होगा कि युवा लोग अपने जीवन से हमें पृथक् भी कर देते हैं तो इसका यह अभिप्राय नहीं कि उन्होंने ने हमें प्यार करना बन्द कर दिया है। इसका मतलब केवल



इतना ही है कि वे अपना स्वतन्त्र जीवन बिताने लगते हैं। वे वास्तविक रूप से स्वतंत्र और आत्म-निर्भर प्रौढ़ बन जाते हैं। सुन्दर युवा-युवती प्रायः ऐसे लोगों के साथ रहना पसन्द करते हैं, जो उनकी तारीफ करते हैं और जो आकर्षण में उनकी बराबरी नहीं कर सकते। इस तरह वे अपने आपको सुरक्षित महसूस करते हैं। साधारण रूप से सुन्दर युवा प्रायः अत्यन्त सुन्दर युवाओं के भक्त और मित्र होते हैं, ताकि वे भी उनकी गिनती में आ सकें और अपने साथियों के यश की छाया में वे भी चमक उठें। जैसे-जैसे युवा अपनी सामर्थ्य बढ़ाते जाते हैं, दोनों ओर मित्रता में दबाव कम और दृढ़ता अधिक आती जायगी।

विस्तार के साथ लेखक यह बता चुका है कि पदों की प्रथा, शिक्षा के अभाव तथा अन्य सामाजिक रुढ़ियों के कारण इस उम्र के लड़के-लड़की स्वतन्त्ररूप से मिल नहीं सकते। गाँव, घर, सहशिक्षा की संस्थाएँ तथा लाहौर और कलकत्ता जैसे बड़े शहर अपवाद स्वरूप छोड़े जा सकते हैं। साधारणतया इन जगहों में और खास कर गाँवों में भिन्नलिङ्गी पौगण्डों में मित्रता अवश्य स्थापित होती है, किन्तु उस हद तक नहीं जितनी हम योरोप और अमेरिका में देखते हैं। उथला या बनावटी प्रेम इन देशों में प्रचलित तो है और कभी-कभी गर्भ भी रह जाता है किन्तु ऐसे उदाहरण नहीं के बराबर हैं। किन्तु हिन्दुस्तान के बड़े शहरों तथा गाँवों में ऐसे उदाहरण कुछ हद तक देखने को मिल जाते हैं। दिन के बड़े हिस्से में युवा-युवती घर के बाहर एक साथ रहते हैं—खेतों में, चरागाहों या जंगलों में। किन्तु संघर्ष या अड़चन पैदा करने वाले उदाहरण वहाँ देखने को मिलते हैं, जहाँ नैतिकता का अभाव होता है।

## आवारा और अपराधियों का गुट

१६ और २१ वर्ष के पौगण्ड अपराधी खास कर वे जिन्हें अपराध की भावना वंशपरम्परा से प्राप्त नहीं हुई है, अपने हम उम्रों से अलग नहीं रह सकते। वह छोटा-सा दल असामाजिक वृत्तियों और प्रवृत्तियों के बीज बोने और उन्हें दृढ़ करने का काम करता है। वैसे हफ्ते-दुके अपराध व्यक्तियों के द्वारा हुआ करते हैं किन्तु अपराधी-जीवन की शुरुआत ऐसे ही दलों में होती है। शहर के लड़कों के दलों का अध्ययन बतलाता है कि इस प्रकार के दल छोटे ही होते हैं। इस प्रकार के

दलों के द्वारा होने वाले अपराध कई प्रकार के होते हैं:—जैसे यातायात में रुकावट डालने में भाग लेना, चोरी करना, सड़कों में सैध लगाना, लूट-खसोट करना, भेदी मजाक करना, युवा लड़कियों और स्त्रियों से छेड़-छाड़ करना, हुल्लड़ वाजी करना, आदि।

शुरु में ही यह समझ लेना चाहिए कि अपराध का कोई एक कारण नहीं होता। जिन्होंने ऐसे मामलों की जाँच की है उनका मत है कि आनुवंशिक न्यूनता, अनुपयुक्त वातावरण, मानसिक संघर्ष, आदि अपराध के कारण हैं। किन्तु 'एडोलेसेन्स' के लेखक एल. ए. एवरिल के मतानुसार अपराध के प्रेरक ये मुख्य कारण हैं:—

(१) साहसिक कार्य करने की अभिलाषा:—पौगण्डावस्था में सन-सनी खेज, खतरनाक और साहसिक प्रवृत्तियों का प्राधान्य होता है। दंगा-फिसाद और हुड़दंगशाही या शरारत की ओर प्रेरित करने में इन प्रवृत्तियों का बड़ा हाथ होता है।

(२) ब्राह्म के अनुभवों का वैषम्योत्पादक असर:—दल की घनिष्ठता घर के ताल्लुक को असन्तोषजनक और कभी कभी अभिय बना देती है। घर में कोई आकर्षण या उत्तेजन नहीं मिलता; इस कारण पौगण्ड पीढ़ी के कई युवा घर के बाहर भटकने लगते हैं और साहसिक कार्य तथा वृत्ति की तलाश में जो भी रास्ता मिल जाय, उसे अपना लेते हैं।

(३) बुरा साथ और बुरे व्यक्ति:—सम्भवतः गुट्ट जीवन के असर से बढ़कर अपराध की भावना को प्रेरित करने वाली और चीज नहीं है। गुट्ट के लोगों को एक सूत्रता में बाँधने वाली चीज है, वस्तुओं का नुकसान करना और व्यक्तियों का गुनाह करना।

(४) दूसरे सम्भव कारणों में प्रकाश में आने की इच्छा, गुनहगार की पूजा, सुगमता से धन पाने की इच्छा, ऊँचा देने वाला आलस्य, आत्यन्तिक कामेच्छा, आदि हैं।

घर, स्कूल और राज्य सभी इस प्रकार की स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं। लेखक इस समस्या पर अधिक विस्तार से दूसरे परिच्छेद में





लिखने का इरादा रखता है। अभी थोड़े में ही इस पर विचार कर लेना जरूरी है।

## घर, स्कूल और सरकार की जिम्मेदारी

ज्यों २ वच्चे शैशव से वाल्यावस्था और वाल्यावस्था से पौगण्डावस्था में पहुँचते हैं, लड़कों और लड़कियों की मित्रता की समस्या गहन होती जाती है। इसीलिए घर, स्कूल और सरकार की जिम्मेदारी की बात हम कहते हैं। निस्सन्देह, घर और स्कूल की जिम्मेदारी सरकार से कहीं अधिक ज्यादा है।

### घर

प्रत्येक प्रकार की मित्रता के सम्बन्ध में—यानी शैशव में मित्रता, वाल्यावस्था में मित्रता तथा पौगण्डावस्था में मित्रता—घर की जिम्मेदारी बताई जायगी और बाद में पथ-प्रदर्शन करने वाले साधारण सुझाव बताये जायँगे।

### शैशव काल की मित्रता में माता-पिताओं का कर्तव्य

(१) प्रायः सभी माता-पिता कभी-कभी इस बात से उद्विग्न हो उठते हैं कि उनका शिशु अपने खुद के घर के खेल के साज सामान में कोई रुचि नहीं रखता और बाहर के बच्चों का साथ चाहता है। माता-पिताओं को चाहिए कि उसे दूसरे हमउम्र बच्चों के साथ खेलने दें।

(२) यदि पास ही में नर्सरी स्कूल हो तो उसे उसमें भेज देना चाहिए ताकि वह दत्त प्रौढ़ों के पथ-प्रदर्शन में अपने सहचरों को ढूँढ़ ले।

(३) नर्सरी स्कूल न होने की हालत में शहर के कुछ माता-पिताओं के लिए यह सम्भव हुआ है कि बालकों को सामूहिक जीवन के अनुभव देने के लिए उन्होंने मिलकर एक शिक्षित नर्सरी स्कूल-शिक्षक रखा है। यह उपयोगी है। दूसरे भी ऐसा करें तो अच्छा है।

(४) कुछ हालतों में इनमें से एक भी उपाय सम्भव नहीं है। इस अवस्था में माता-पिताओं को दूसरे बालकों को अपने घर बुलाने की

कोशिश करनी चाहिए ताकि वे आपस में मिलकर सामाजिक जीवन का अनुभव कर सकें।

(५) बड़े शहरों में अच्छे खानदानों में जब माँ कहीं और काम करने जाती हो तो दिन भर के लिए बालक को नौकर रखा जा सकता है। बालक और माता-पिताओं दोनों के लिए यह लाभदायक होगा।

### बाह्यावस्था की मित्रता में माता-पिताओं का कर्तव्य

(१) कुछ माता-पिताओं के लिए यह समय बड़ा ही शोभकारी और निराशा जनक होता है। जो बालक पहले माता-पिताओं के प्रति बड़ा स्नेहयुक्त था, वह अब कुछ छिपाने लगता है, दूर-दूर रहता है और कभी-कभी असमाजिक हो जाता है। वह गन्दा और मैला भटकता रहता है। माता-पिता का अत्यधिक मतान्तर और कड़ाई बालक की दल के प्रति बकादारी को नष्ट करने में कामयाब हो सकती है। किन्तु ऐसा होना बालक के भावात्मक विकास के लिये बड़ा खतरनाक है। इसलिए माता-पिताओं को अपने अधिकार उपयोग नहीं करना चाहिये, न रुकावटें खड़ी करनी चाहिये।

(२) माता-पिताओं को यह याद रखना चाहिये कि बालक समय-समय पर सहायता पाने के लिए उनके पास आया करेगा। जैसे वह अपने गुट के सामने अपनी डाँग हाँकता है, उसी तरह वह अपने माता-पिताओं के विषय में भी डाँग हाँक सकता है। ऐसे अवसरों पर जब उसे अपने साथियों के बीच बड़ी निराशाओं का सामना करना पड़ता है, वह सान्त्वना के लिये अपने माता-पिताओं के पास आता है। इसलिये उसे आवश्यक धैर्य बँधाने के लिये उन्हें तत्पर रहना चाहिये और जब वह पुनः दल-जीवन में प्रवेश करना चाहे तो उसे फिर आजादी दे देनी चाहिये।

(३) बालक के भावात्मक विकास को बढ़ाने के अन्य कई मार्ग हैं जिन्हें माता-पिता अपना सकते हैं। बालक साधारणतया खेल और शारीरिक क्रियाओं में दिलचस्पी रखता है। लड़कों का नाव अथवा खिलौने बनाना या लड़कियों का सीना और खाना पकाना—ये सब ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जिनमें माता-पिता अपने बालकों का हाथ बँटा सकते हैं और अप्रत्यक्ष रूप से बुरी संगति को टालने में भी मददगार हो सकते हैं।

## पौंगण्ड मित्रता में माता-पिता का कर्त्तव्य

(१) माता-पिता अत्यन्त भावशील मित्रता के सम्बन्ध में बड़े चिन्तित रहते हैं, किन्तु तीव्र आलोचना या सीधा हस्तक्षेप शोचनीय होगा। क्योंकि वफादारी की भावना से प्रेरित होकर लड़के अथवा लड़की की आसक्ति और बढ़ेगी, वे एक दूसरे को टीका-टिप्पणी और आलोचना से बचाने का प्रयत्न करेंगे। इससे बात और बिगड़ेगी।

(२) यदि समलिङ्गी अथवा भिन्नलिङ्गी मित्रता अत्यधिक स्वत्व जनाने वाली (Possessive) है तो ऐसा सम्बन्ध दुर्भाग्यपूर्ण है और माता-पिताओं को ऐसी मित्रता पर निगरानी रखना चाहिए। इस प्रकार की मित्रता में सीधा हस्तक्षेप बड़ा खतरनाक होता है और अभीष्ट से उल्टा ही फल निकल सकता है। यदि माता और उसका पुत्र या पुत्री एक-दूसरे के साथ निस्संकोच बातचीत कर सकते हों तो माता को ऐसी स्थिति की कठिनाइयों को समझा देना चाहिये। यदि बिना विरोध पैदा किये वह ऐसा कर सके तो धिक्कारने और सख्त मनाही से यह कहीं अधिक अच्छा है।

(३) काम शिक्षा की आत्यन्तिक आवश्यकता से कोई भी इन्कार नहीं करेगा। इस सम्बन्ध में उसे उसके विश्वास-पात्र व्यक्ति के द्वारा शिक्षामिलना जरूरी है। साफ और सीधी बातें उपयुक्त समय पर बता दी जानी चाहिए।

(४) घर वास्तविक रूप से घर होना चाहिए न कि केवल एक होटल। घर ऐसा होना चाहिए कि जहाँ माता-पिताओं और युवा पुत्र-पुत्रियों में परस्पर मित्रता और प्रेम तथा विश्वास का सम्बन्ध हो। घर ऐसा हो कि जहाँ बालक अपने दोस्तों को सहानुभूति और समरसता के वातावरण में खड़ा कर सकें।

(५) माता-पिता अपने बच्चों के दोस्तों को भोजन, खेल और बातचीत के लिए अपने घर बुलायें तो अच्छा है।

## बालकों के मैत्री सम्बन्ध में माता-पिताओं के कर्त्तव्य

(१) जहाँ तक हो सके बालकों को अपने आप अपने दोस्तों का चुनाव करने का मौका देना चाहिये।



(२) अपने हमजोलियों के द्वारा मान्य होने की उसकी आवश्यकता का उन्हें खयाल रखना चाहिए।

(३) यदि वे उसके संगी-साथियों की अवहेलना करेंगे। तो बालक पर प्रभाव रखने के बजाय वे उसे अपना विरोधी बना लेंगे।

(४) माता-पिता को चाहिये कि बालक के सामाजिक जीवन को वे उसी दृष्टि से देखें जिससे उनका बालक देखता है।

(५) अपने दोस्तों की अनुपस्थिति में बालकों के अकेलेपन की गंभीरता को महसूस करना चाहिये।

(६) बालक के दोस्तों के साथ शराफत या कोमलता का व्यवहार होना चाहिये।

(७) दूसरे के बालकों को दोष देना अपने बालकों को दोष देने के बजाय अधिक सरल है। यदि सड़क पर दो बाल-मित्रों का झगड़ा हो जाय तो बिना जाँच के माता-पिता को यह खयाल न कर लेना चाहिये कि उनका बच्चा गलती पर नहीं था। उन्हें दूसरों के बच्चे को पीटना या डाँटना नहीं चाहिये।

(८) यदि मित्रता विपरीत दिशा में जा रही हो, तो बालक को दूर हटा लेना उचित है।

(९) माता-पिता की बालक के साथ मित्रता को कभी भूलना न चाहिए। एक सहानुभूतिपूर्ण माता-पिता जैसा दूसरा मित्र नहीं है।

(१०) माता-पिताओं को सदा समय के साथ चलना चाहिये। जीवन तथा बालकों के प्रति अपने दृष्टिकोण में उन्हें प्रगतिशील होना चाहिये। जब युवा अपने भाग्य निर्माण का काम अपने हाथ में लेने लगता है, तब उनके प्रगतिशील दृष्टि-कोण की बड़ी आवश्यकता होती है।

(११) यदि माता-पिता बालक तथा उसके दिल की गतिविधियों को समझें, यदि भविष्य के विषय में वे बुद्धिमत्तापूर्वक उसका पथ-प्रदर्शन



करें और फिर भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरण न करें तो माता-पिता और बालक के बीच संघर्ष होना अनिवार्य नहीं।

## स्कूल

स्कूल केवल उन्हीं बालकों के लिए जिम्मेदार हैं, जो स्कूल आते हैं। इसलिए यह कहना सही है कि स्कूल की जिम्मेदारी का अंश घर की जिम्मेदारी के बराबर नहीं है। कई बातें जो घर की जिम्मेदारी के सिलसिले में बताई गई हैं, स्कूल के लिए भी उपयोगी होंगी। इसलिए नीचे के अनुच्छेदों में वे ही प्रमुख बातें बताई जायँगी जो स्कूल के लिए विशेष महत्व की हैं।

(१) नर्सरी काल से ही दूसरों के लिए आदर की भावना को—जो मित्रता का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है—स्कूल के बच्चों में प्रोत्साहित किया जा सकता है। यदि लड़कों लड़कों में, लड़की लड़की में, बच्चों और शिक्षक में मित्रता का स्वस्थ वातावरण स्थापित और कायम हो सका तो स्कूल-जीवन के प्रत्येक काल में बालक को वृत्तिजनक मैत्री-सम्बन्ध का लाभ मिल सकेगा।

(२) चूँकि हिन्दुस्तान में सह-शिक्षा के आधार पर चलने वाली संस्थाएँ इनी-गिनी ही हैं, स्कूल समलिङ्गी मित्रता के लिए बड़े भारी क्षेत्र का काम करता है। लड़कों और लड़कियों के लिए प्रायः अलग-अलग स्कूल होते हैं। इसलिए स्कूलों के सामने पौण्ड्यावस्था के प्रथम काल की मित्रताओं की समस्या ही सामने रहती है। शिक्षकों के द्वारा सीधा हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये। सब कुछ जानने के आग्रह का अथवा और किसी प्रकार के अधिकार-प्रयोग का फल बुरा होता है। या तो, इस दशा में खुले आम विद्रोह या संघर्ष होगा या युवा व्यक्ति अपने बचाव के रास्ते निकालेगा और अपने आप में सीमित हो जायगा, ताकि वे उस तक पहुँच ही न सकें।

(३) क्लब का भी बड़ा महत्व है; क्योंकि मनोरंजन और सामाजिक जीवन के लिए वे बच्चों को बड़ी तादाद में इकट्ठा करने का साधन बनते हैं। कक्षा—जहाँ कठोर अनुशासन और वनावटी वातावरण होता है—क्लब का स्थान नहीं ले सकती। कक्षा में विद्यार्थियों को अपने मन



मुआफिक घूमने-फिरने या बातचीत करने की स्वतन्त्रता नहीं होती। किन्तु यहाँ (क्लब में) वे इकट्ठे बैठकर योजनायें बना सकते हैं, अपनी पसन्द के नेता चुन सकते हैं, छुट्टियों की व्यवस्था कर सकते हैं और अनुशासन रख सकते हैं। अधिकांश पौगण्ड क्लब जीवन के किसी न किसी पक्ष में निस्संदिग्ध रूप से आकर्षण पायेंगे। क्लब जीवन में आत्माभिव्यक्ति तथा दूसरों के सम्पर्क का लाभ होता है जिनके अभाव में कई युवा अकेले में बैठ कर सिर धुना करते हैं या स्कूल से बाहर के लोगों के साथ अवाञ्छनीय मैत्री-सम्बन्ध कायम कर लेते हैं। दूसरों के साहचर्य में विविध क्रियाओं और दिलचस्प विषयों में भाग लिया जा सकता है और इस तरह सुखद मित्रता के लिए ठोस आधार मिल जाता है। इसी तरह वादविवाद, खेल, स्काउटिंग बड़े लाभदायक होते हैं। समग्र जीवन ही स्वस्थ और स्वाभाविक हो जाना चाहिए।

## सरकार

(१) बालकों की मित्रता के सम्बन्ध में सरकार की कोई सीधी जिम्मेदारी नहीं है, सिवा इसके कि वह इन छोटे नागरिकों के लिए स्वस्थ मनोरंजन और खेल प्रदान करने के लिए कुछ उपाय करे। केवल स्कूलों, क्रीडाङ्गणों और पार्कों की सुविधा तो शुरुआत भर है।

(२) यदि हम पौगण्ड गुण्डागिरी और अपराध को ध्यान में रखते हैं तो यह जरूरी मालूम होता है कि सरकार को समाज की रचना इस तरह करनी चाहिए कि ऐसी बातों के लिए जगह ही न रहे। आर्थिक सुरक्षितता का आश्वासन मिलना जरूरी है। जहाँ भयंकर गरीबी का राज है; जहाँ निराशा और अरक्षा लोगों में समाई हुई हैं, ऐसा वातावरण और ऐसा देश बढ़ते हुए बालकों में उत्साह और आशा का संचार करे, यह सम्भव नहीं।

(३) बालकों की ऐसी आदतों के सम्बन्ध में कानून बनने चाहिए जो उन्होंने अपने दल-जीवन में अवाञ्छनीय मित्रों से सीख ली हों। बीड़ी-सिगरेट पीना, शराब पीना आदि कुछ आदतें हैं जो ऐसे दोस्तों के सम्पर्क से आ जाती हैं।

(४) बच्चों के पथ-प्रदर्शन के लिए मानसोपचार करने वाले उपचार-गृह अत्यधिक लाभ प्रद होंगे। उचित प्रकार के कार्यकर्ता और साधनों

से युक्त होने पर समाज सेवा के ये केन्द्र घर और स्कूल के अनिवार्य सहायक हो जायेंगे। ये उपचारगृह कई बालकों के मस्तिष्क में होने वाले संघर्ष और भावात्मक अस्वाभाविकता के कारणों और स्वरूप का निदान करेंगे और निदान करने के पश्चात् उसके भावात्मक विकास के लिए उसे दोस्तों तथा सामाजिक स्थिति के साथ अनुकूलता प्राप्त करने में मदद करेंगे।

(५) शहर की हद् के बाहर पड़ाव, कुटियों और छोटे-छोटे निवास गृहों की सुविधा होनी चाहिए जिससे कि साहसी पौगण्ड उचित नेष्ट्व में खुली हवा के साहसिक कार्यों के सुखों का अनुभव कर सकें।

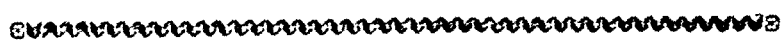
(६) युवकों के लिए नेता तैयार करना, पढ़ने के लिए साधारण पाठ्य सामग्री उपलब्ध करना, दूसरे मनोरंजन की सुविधायें प्रदान करना, अधिक अच्छे स्कूल, अधिक अच्छे घर और श्रेष्ठतर समाज का निर्माण करना—ये समस्याएँ हैं, जो बालक के भावात्मक विकास और उसके दल-जीवन के हितार्थ सरकार की ओर से निशेष ध्यान पाने योग्य हैं।

## समाज में बाल अपराधी

यू. पी. की जेलों के इन्सपेक्टर जनरल ने जनवरी १९४६ के पत्र-कार सम्मेलन में भाषण देते हुए कहा कि प्रांत की विभिन्न जेलों में ३००० से भी ज्यादा नौजवान कैदी बसे हुए हैं। यह आकाशवाणी मेरे लिए अनोखी थी। अगर हिन्दुस्तान के दूसरे प्रान्तों और राज्यों के नौजवान अपराधियों को इस अंक में जोड़ दिया जाय तो उसकी जोड़ एक अविश्वसनीय अंक की हद तक पहुँच जाती है। इस कथन तक जेल मेरे लिए एक रक्षित बाड़ा था, जहाँ केवल प्रौढ़ कैद किये जाते थे। मैं कभी विश्वास नहीं कर सकता था कि बच्चे भी इस तरह के अपराधियों में हो सकते हैं। ऊपर के दुहराए हुए अंक समाज के दृष्टिकोण से हमारे लिए जवानी के दोषों के सबाल का मूल्य महसूस करने के लिए काफी होने चाहिए। समाज ऐसी आपत्ति से बचाया जाना चाहिए और बाल अपराधियों का भी सुधार किया जाना चाहिए। मैंने अभी कहा कि मैं बच्चों के अपराध करने पर विश्वास नहीं कर सकता था, इससे मेरा यह मतलब नहीं था कि वे ऐसे अप्रिय काम नहीं कर सकते या नहीं कर सकतीं। मेरा केवल यही मतलब था कि साधारण बच्चे बहुधा अपराध के जिम्मेदार नहीं होते। वे चौगिर्द के प्रभाव से लाचार किये जाते हैं। इन्सपेक्टर जनरल ने, जिन्होंने उक्त सूचना दी थी आगे कहा कि जो लड़के जेलों में भर्ती किये गये हैं उनमें से बहुतसों के जीवन की करुणोत्पाद पृष्ठ भूमि है। बचपन के समय में कठोर वर्तार और खराब वातावरण और बहुत आपत्तिजनक आर्थिक स्थिति ने उनमें समाज के प्रति शत्रुता उत्पन्न कर दी है।

विश्लेषण करने पर यह मालूम किया गया है कि दुनियाँ के अधिक देशों में तरुणीय अपराध बढ़ती पर है। कोई जरूर पूछेगा कि क्यों? संक्षेप में, यह बताया जा सकता है कि आधुनिक जीवन में एक प्रकार का “दबाव” है जो प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप से तरुणीय दोष प्रवृत्ति के लिए





जिम्मेदार है। मैंने पाठकों के मन में क्लेशने के लिए “दवाव” शब्द तरुणीय पाप प्रवृत्ति के तो मुख्य सहायक अंश की भाँति विचार पूर्वक प्रयोग किया है। समाज उन्हें अपराधी बनाता है तो इसी तरह उसे जवान खूनी, काम वैषयिक अपराधी, चोर और घर में अनधिकार प्रवेश करने वाले से आफत का सामना करना पड़ता है। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि समाज को जल्दी ही पाप प्रवृत्ति के आक्रमण की समस्या को समझना चाहिए और संभव, रोकनेवाली और उसी ओर मुकानेवाली सभी रीतियाँ काम में लानी चाहिए। अब चरित्र की अव्यवस्था के कारणों का वैसा विस्तार, बिना ज्ञान के व्यर्थ और बेकार होगा।

## वचपन का मानसोपचार विज्ञान

तरुणीय अपराध के मनोविज्ञान को समझने के लिए बाल-मनो-विकृति-शास्त्र के मुख्य लक्षण समझना आवश्यक है। प्रौढ़ों से पृथक्ता करने पर बच्चों के मनोविज्ञान में बहस के लिए तीन मुख्य बातें होती हैं। पहली बात, बच्चे को मानसिक क्रियाओं के ऊपर चौगिर्द (परिस्थिति) के अत्यन्त प्रभाव, दूसरी बात मानसिक क्रिया की योग्यता और तीसरी बात, अहंकारी आत्मिक प्रवृत्ति की प्रधानता।

(१) परिस्थिति का प्रभाव:—परिस्थिति का मतलब माता-पिता भाई; बहिन; साथी और शिक्षक की व्यक्तिगत परिस्थिति से है। जब पाप प्रवृत्ति के चिन्ह मालूम होते हैं तब बच्चे के उद्देश्य और इच्छाओं पर, परिस्थिति के मिलाव के बाह्य भाग पर विशेष कर मन के अन्दर संघर्ष के कुछ अंश दिखाई देते हैं।

(२) योग्यता (संस्कार शीलता) :—इसकी व्यवहारिक और शारीरिक दोनों दृष्टियों से महान आवश्यकता है, यद्यपि संस्कार शीलता जन्मजात संस्कार और स्वभाव से कुछ अंश तक सीमित है।

(३) अहंकारी (आत्मिक) प्रवृत्तियाँ:—आत्मवाद बहुत सी बातों को सूचित करता है:— जीविका के सभी क्षेत्रों में आत्मविधान की ओर रास्ता, इस कारण प्रेम और अनुमोदन की सम्मिलित इच्छा,



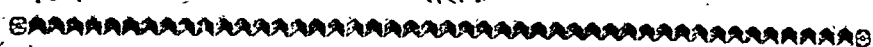
आत्म-प्रदर्शन की ओर प्रकृति, व्यक्तिगत प्रधानता की लालसा और व्यक्तिगत अभयता की कमी की दृढ़ सचेतनता।

### प्रमुखतथ्य

तरुणीय अपराधों के कारण अच्छी तरह समझे जा सकते हैं यदि कोई बच्चे की इच्छाओं और प्रेरणाओं, उनके संतोष और उसके भंग में और अधिक गहरा जाये। हर एक मामले में सामान्य सिद्धान्त की सीमा में वर्णित पाप प्रवृत्ति की जड़ें लालसा और आवेगों (सचेतनता) की जो दूसरी दशा में असन्तुष्ट है, अभिव्यक्ति का रूप दिखाती है। वे लोक व्यवहार में व्यक्तिगत आवश्यकताओं और आवेगों के ठहरने के स्थान से वैसे ही हेतुलक्षी होने चाहिए जैसे कि आचरण के दूसरे मिलनसारी से ग्रहण के योग्य रूप हैं। दूसरे शब्दों में बाल-अपराधी के लिए अन्तर तर (अधिक भीतरी) की लालसाओं और बाहरी उत्तेजनाओं के ठीक उतने ही प्रकार हो सकते हैं जितने कि चरित्र हीन किसी वर्ग में। पाप प्रवृत्ति का मतलब केवल दुराचरण है। वच्चा पूरा व्यक्तिवादी है। वह जिस समाज में रहता है वह उसके लिए कुछ नहीं करता केवल अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं को संतुष्ट करने के लिए तत्पर रहता है। संघर्ष की उत्पत्ति के लिए, बच्चे के विकास में व्यक्ति के व्यक्तित्व के अंदर और उसी समाज के बीच में अनेक और विविध प्रकार के सुभीते हैं।

### अपराध के उत्तरदायी बच्चों की जातियाँ

कोई २ इस प्रश्न में अधिक रुचि रखते हैं कि विभिन्न घरों से आये हुए बच्चों की, जो अपराध के प्रति विशेष करके जिम्मेदार होते हैं, कुछ विशेष जातियाँ पाई जाती हैं या नहीं। यह पाया गया कि अपराधियों के बच्चे बहुधा अपराधी होते हैं। विजन्मा बच्चे बाल-अपराधियों का एक बहुत बड़ा वर्ग बना लेते हैं। प्रत्यक्ष कारणों अनाथ (माता-पिता-हीन) दूसरा वर्ग बना लेते हैं। अनाथ और सौतेले बच्चे एक बहुत बड़ा वर्ग बना लेते हैं और इसमें कोई संदेह नहीं कि बहुत गरीब घरों के बच्चे अपनी दूसरी श्रेणी बना लेते हैं।



यह स्वाभाविक रूप से केवल एक ही बच्चे या कुटुम्ब में सबसे छोटे के मामले में बार बार होता है। अधिक मामलों में यह बहुधा पाया गया है कि कोई वेईमान बच्चा बहुधा वेईमान घर से आता है। ऐसे विशेष गुण नई प्रौढ़ को अच्छी तरह सौंपे जाते हैं। माता-पिता के किए भगड़े कम हानिकारक नहीं हो सकते। जब भगड़ा हमेशा का हो जाता है तब बच्चा बहुधा माता-पिता को भी तंग कर डालता है। अवस्थाएँ शीघ्र ही अपराध की ओर ले जाती हैं। भाई और बहन के आपसी सम्बन्ध भी विषमता उत्पन्न कर सकते हैं। उनमें ईर्ष्या और शत्रुता साधारणतया होती है।

### भगनाश घरों के अपराधी

यह अच्छी तरह देखा जाता है कि बाल-अपराधियों की एक बहुत बड़ी संख्या कुचले हुए (आशा भंग) घरों से आती है। लखनऊ के 'बरेली रिफॉर्मेटरी स्कूल' के अपराधियों की जेल में अपराधियों का विश्लेषण करने पर यह पाया गया है कि उनमें से करीब ५० फी सदी लड़के माता-पिता हीन हो गए हैं और उनमें से बहुत सों ने उन्हें अपने बचपन के समय ही खो दिया था। माता-पिता की हानि से बच्चा अन्तःकालीन समय में देख भाल और अनुशासन का अभाव भुगतता है। वह अपने माता-पिता की मृत्यु के आघात को भी सहता है। अगर पिता शादी करता है तो अपर माता का आना उसके लिए एक समस्या हो जाती है। बच्चे और उसकी अपर माता के सम्बन्ध बहुधा असमान स्वभाव के जिसके लिए दोनों जिम्मेदार हैं, होते हैं। इसलिए एक उपद्रवी वृत्त इसी तरह तैयार हो जाता है, जिसमें कोई भी बच्चा जो गम्भीर रूप से फँसा दिया जाता है, कम या ज्यादा अंश में भवात्मक क्लेश अवश्य सहता है। ऐसी अवस्था में बालक का रात रात गायब रहना, घर पर कम रहना और इसलिए अपराध कर डालना कि उसे घर से दूर कर दिया जा सके, असाधारण बातें नहीं हैं। जब माता-पिता अनुपस्थित होते हैं, बच्चे की सबसे ज्यादा हानि होती है और अनेक प्रकार चाल-चलन की विकृतियों का विकास होता है।

अपराध के कारणों में अनोरसता सबसे बड़े कारणों में एक कारण है। नियमित कौटुम्बिक जीवन का अभाव तथा अपनी माता को घृणा

के साथ बोलते हुए सुनना, यह उसके भावात्मक विकास के लिये आवश्यक विकास की भावना नष्ट कर देते हैं। यह वास्तविकता कि वह खुद ही अपने साथियों के लिए हँसी की चीज है, समाज के अन्याय के ज्ञान को उसके हृदय पर अंकित कर देने के लिए काफी है। इस तरह वह भिक्की (उत्तेजनीय) और समाज विरुद्ध ही हो जाता है।

## गरीब घरों के अपराधी

एम. डी. हिल, जो एक बड़े मनोवैज्ञानिक और पाप-जीवन-विशेषज्ञ हैं लिखते हैं कि इस विषय पर ३० साल अवलोकन के फल ने मुझे यह विश्वास दिलाया है कि गरीबी यद्यपि यह अपराध का कारण है पर जैसा कि वह बहुधा मान लिया जाता है, उसकी अपेक्षा बहुत ही छोटा कारण है। या तो वह विधिनिषेध धनाभाव से उत्पन्न किया हुआ होता है या वह भटकने और आलस्य के स्वभाव में जो उसे कुमार्ग प्रकृति की ओर खतरे में डाल देता है। यह कारण बहुत ही मूल्यमान है। जैसा वह अक्सर पाया जाता है कि गरीब एक सामाजिक असमानता के कारणों में एक है या नहीं विशेष कर के बाल अपराधी के बहुमत से जो गरीब घर से आते हैं। अब हम विस्तार से लें। सम्बन्धित दरिद्रता का बहुत ही बाधापूर्ण असर है।

दरिद्रता की ओर पतन का कुछ उसी तरह का असर हो सकता है। घरेलू खराब दशाएँ दरिद्रता की समस्या से बद्धरूप से मिली होती हैं। जहाँ खेलने के लिए कम सुविधाएँ होती हैं वहाँ बच्चे की स्वतन्त्रता के ऊपर एक अवश्यम्भावी प्रतिबन्ध होता है और उसे, गलियों की ओर और उस जगह जहाँ उसे सच्ची खुशी का थोड़ा सुअवसर मिलता है, अपना सारा मनोरंजन करने के लिए ढकेल दिया जाता है। कभी कभी सिनेमा से फायदा उठाया जाता है, लेकिन इस में भी पैसों का खर्च लगता है जो हमेशा प्राप्त नहीं होते। इसलिए दूसरा कदम टोली में मिल जाने का हो सकता है जो बेकारी का प्रश्न दरिद्रता से बद्धरूप से सम्बन्धित है। यह पाया गया है कि प्रौढ़ीय और बालकीय दोनों तरह के अपराध बहुत ही अधिकता के साथ उन स्थानों में होते हैं जहाँ बेकारी की बहुत बड़ी घटना होती है। तथापि इसका मतलब यह नहीं होता कि

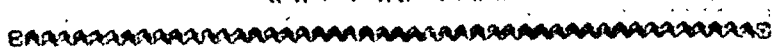
सभी बेकार अपराध करते हैं। बात यह है कि आंशिक रूप से अवसर वास्तविकता से स्थिर किया जाता है कि बेकार व्यक्तियों के पास अनावश्यक समय होता है। अगर काम की कमी होती है और उन्हें पैसे कठिनाता से मिलते हैं तब वे कभी कभी चोरी करते हैं और अवसर का लाभ उठाते हैं।

## संगति:-

फॉसे हुये व्यक्तियों की संख्या के अनुसार अपराध के वर्णन में हाल की खोज साफ-साफ बताती है कि अधिक अपराध उस समय किये जाते हैं जब लड़के संगति में होते हैं। इङ्गलैंड के सभी प्रान्तीय नगरों में "दलीय अपराध" Gans Crime ७४ फी सदी है। यह अंक सूचित करता है कि बालकीय अपराध "तूफानी टोली" में निस्संदेह रूप से पाया जाता है। अलग किया हुआ व्यक्ति आकस्मिक अपराधों से दोषित हो सकते हैं लेकिन अपराध जन्म जीवन इस प्रकार के समूह में आरम्भ किया जाता है। उन मित्रता की, जो सबसे अधिक सामान्य रूप से हानिकारक प्रभाव की कोशिश करती है, उसी उम्र और जाति के, जो बच्चा खुद ही, दूसरों से मिलता है जो बच्चे के घर के बाहर रहती है, परन्तु उसी स्कूल और गली में आती है। अध्ययन जो बड़े कस्बों और नगरों में लड़कों की टोली को बनाता है, बताता है कि सामाजिक समूह की सभी आवश्यकताओं के लिए वस्तुएँ जुटाई जाती हैं जैसे कि सभी का स्थान, नेतृत्व का प्राचीन रूप पुकार के गुप्त इशारे। खतरे का अंश दूसरे सभी को अधिक तोलता है।

## अपराध की सबसे बड़ी वय और अपराध:-

अधिक देशों में अपराध करने को सबसे बड़ी वय १३ की है। १२ भी असामान्य नहीं है। अगर कोई आठ और सोलह के बीच की उम्र वाले लड़कों की गिरफ्तारी की संख्या पाने की कोशिश करता है तो वह स्पष्ट हो जाता है कि अपराध बढ़ना १० से शुरू होता है और १४ पर गिरने लगता है जो १३ सबसे बड़ी वय है। यह संख्याएँ बच्चे के विकास की सीढ़ी, भुंड में रहने की सहज प्रवृत्ति, टोली के निर्माण और अपराध के आक्रमण पर बहुत प्रकाश फेंकती हैं। और



अधिक सामान्य बनाने के लिए हम कह सकते हैं कि १२ और १४ के बीच की उम्र, स्कूल छोड़ने की उम्र, जवानी के तरंगों और साहस की इच्छा से सम्बन्धित है। अब यह अधिक स्पष्ट हो जाता है कि जब बच्चा स्कूल छोड़ता है तब अगर काम या उद्योग की कमी है तो अधिक अनावश्यक समय और अपराध में ज्यादा बहुतायत होगी।

### अपराध का लक्षण:—

यह मालूम करना एक चित्ताकर्षक अध्ययन है कि किस तरह का अध्ययन बच्चे को सबसे ज्यादा स्पर्श करता है। लखनऊ 'रिफॉर्मेटरी स्कूल' में, जहां १४ वर्ष के अन्दर के १२६ बालकीय अपराधी रहते थे, अंक बताते हैं कि उनमें चोरी का सबसे ज्यादा अपराध था। दूसरे सबसे ज्यादा अपराध, घर में ताक लगाये हुए और अनधिकार प्रवेश करने वालों के थे। अपराध के वर्गों के अनुसार विभाग निम्नलिखित थे:—चोरी ७३, घर में ताक लगाये हुए और अनधिकार चेष्टा करने वाले ३६, बलात्कार ७, कत्ल ६, गंभीर धावों के कारण और दूसरों की चोरी हुई चीजों की प्राप्ति, अफीम की महसूली चोरी, इत्यादि के हर एक का १।

### बच्चों में चोरी

जैसा कि बच्चों में चोरी सबसे साधारण अपराध है, मैं उसे यहाँ खास चर्चा का विषय बनाता पसन्द करूँगा। चोरी के कारण कई प्रकार के हैं (१) कभी-कभी वह एच्छिक होता है, यह दरिद्रता का फल हो सकता है, यद्यपि स्वतंत्र आवश्यक वस्तुएँ हमेशा चुराई नहीं जाती हैं। (२) ज्यादा चुराना प्रेरक और निरर्थक है। बच्चा आकस्मिक प्रवृत्ति से कुछ चुरा लेता है और उसने ऐसा क्यों किया है, इस कारण के साथ दे सकता है। चुराई हुई वस्तु का जो ऐसी मिथ्या मनोवृत्ति देती है कि वह क्यों ली गई। उदाहरणस्वरूप एक बच्चा पैसा पड़ा हुआ देखता है और उसे ले लेता है और पीछे से खर्च कर देता है। लेकिन सावधान खोज यह बतायगी उसने उस काम के लिए पैसे नहीं चुराये लेकिन उसी समय की प्रेरक (उकसाई हुई) बुद्धि से उसने चुराये। कभी कभी पैसे चुरा लेने पर उस से छुटकारा पाने के लिए वह उसे खर्च

करना तय कर लेता है। यह उसे खर्च करने की इच्छा के साथ दूसरी चोरी का फल निकल सकता है। जो पहले गोरु कारण था वह अब प्राथमिक कारण बन जाता है। (३) दूसरे मामलों में चोरी एक अनिवार्य काम (Klepto mania) है जिसको बच्चा नहीं रोक सकता, यद्यपि वह ऐसा करने के लिए कठोर कोशिश करता है।

ए. एस. नील (A. S. Neill) मानव-वेगीय चोरी के भीतर प्रेम की चोरी की लालसा के कारण का संक्षिप्तसार बताता है। मानव वेगीय चोरी के सभी मामलों में साध्य रूप से असंतोषजनक घरेलू अवस्था का इतिहास पाया जाता है। और बच्चा मूल रूप से शोकमय रहता है।

## घर, स्कूल और सरकार की जिम्मेदारियाँ

सभी संभव कारण जो पाप प्रवृत्ति और बालकीय अपराध की ओर ले जाते हैं, जाँच कर लिए गए हैं। अब यह निवेदन किया जाता है कि ऐसे मामलों में कैसा व्यवहार करना चाहिए। मैं पृष्ठों में रोकने वाले उपायों को स्पष्ट रूप से वर्णन करना चाहता हूँ जो समाज में इस बुराई को कम करने के लिए घर, स्कूल और सरकार द्वारा चुने जा सकते हैं। यह बताया गया है कि सामाजिक और आर्थिक दशाओं को दवाने के कारण बालकीय अपराध बढ़ती पर हैं और अगर समाज इस बुराई से छुटकारा पाने के लिए जीविका की दशाओं को बेहतर बनाने के लिए उपाय नहीं करता तो समस्या अपनी उलझने बढ़ती ही जायगी। इससे समाज का अकल्याण ही होगा।

## घर

घर जैसा कि पहले पृष्ठों में साफ तौर से बताया गया है, अपराध के कारण में प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी है। वातावरणीय प्रभावों की अपनी सीधी सहायता है, लेकिन ऐसे मामलों में भी अप्रत्यक्ष रूप से बहुत बड़े अंश में घर जिम्मेदार है। यह बात उचित है कि घर अपनी अनेकविध प्रवृत्ति में पुनः निर्मित अवश्य किया जाना चाहिए और माता-पिता को समस्या की आवश्यकता महसूस करनी चाहिए



और उन्हें बुराई की जिम्मेदारी के भागी बनने के लिए अन्त तक तैयार रहना चाहिए। नीचे कुछ ज्ञातक बातें दी जाती हैं।

१ तरुण मनुष्य का सबसे अधिक प्रभावपूर्ण, सब से तात्कालिक, सब से नियमित वातावरण कौटुम्बिक जीवन और उसका सम्बन्ध है। तब यह आशा करना युक्तिपूर्ण है कि चालचलन की प्रवृत्तियाँ परस्पर कौटुम्बिक सम्बन्ध के रूप परिवर्तन से पुनः निर्मित की जा सकती हैं। मैं साधारण, आशा भङ्ग और गरीब घरों से असमानता के सभी मामलों को दुहराना आवश्यक नहीं समझता हूँ लेकिन यह जोर देकर कहा जा सकता है कि वे बातें माता पिता द्वारा ध्यान देने योग्य हैं।

२ बच्चों से माता पिता द्वारा कठोर व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए। यह अपराध के महान कारणों में से एक है। लखनऊ के 'रिफॉर्मेटरी स्कूल' में ५० फी सदी से अधिक बालक्रीय अपराधों ने खराब और कठोर वर्त्ताव पाया था और इन मामलों में लगातार मार कठोर और खराब वर्त्ताव का इतिहास है लेकिन लड़के ने उसे खराब और कठोर नहीं सोचा क्योंकि या तो वह कम साधारण बात और कठोर थी या उसने अपने को ही इसी योग्य समझा।

३ माता पिता का नियंत्रण, पथपदर्शन और प्रेम की अनुपस्थिति एक दूसरा महान कारण है। यह अधिकार उस समय होता है जब माता पिता में से एक या दोनों मर जाते हैं और लड़का दूसरे व्यक्तियों या सम्बन्धियों पर पराधीन बन जाता है। इस पहलू पर काफी प्रकाश फेंका जा चुका है। किसी मामले में माता पिता का नियंत्रण और पथ पदर्शन की अनुपस्थिति नहीं होनी चाहिए।

४ कुटुम्बों में बहुधा असमानता यहाँ उत्पन्न होती है, जहाँ माता-पिता में से एक या दोनों साधारण समय में अनुपस्थित रहते हैं, खास करके व्यापारिक नगरों और बड़े शहरों में प्रायः पिता ही अनेक बार अनुपस्थित रहता है। ऐसे मामलों में बच्चा पिता के प्रेम से अलग हो जाता है। माता के ऊपर साधारण असर अव्युक्तिपूर्ण मनोविकारीय परतन्त्रता है। यह मानसिक उद्वेगता लक्षण की विविधता की वृद्धि दे सकता है और लड़के के मामले में पिता के प्रति सचेतन शत्रुता भी



साथ दी जा सकती है। माता की अनेक बार और बहुत समय की अनुपस्थिति, निस्सन्देह एक समस्या है जो क्वचित् उपस्थित होती है, लेकिन बहुत-सी माताएँ दिन में काम करने बाहर जाती हैं। ऐसे मामले में बिल्कुल तरुण बच्चे दिन के अधिकांश भाग में सीमित, रास्तों में खेल के लिए छोड़े हुए या अप्रिय पड़ौसी के साथ विश्राम स्थान पाते हुए, अवश्य भुला दिये जाते हैं। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि लड़के को माता-पिता की अनुपस्थिति में ठीक रक्षा मिलनी चाहिए। ऐसे बच्चों को पाठशालाएँ बहुत उपयोगी हैं। एक साथ घर से नियम-बद्ध कुछ धाय माता-पिता ऐसे बच्चों के ऊपर ठीक नियंत्रण और पथ-प्रदर्शन रखने के लिए सहायक है।

५ माता-पिता को देखना चाहिए कि बच्चे का समय उससे निर्माणक रूप से उपयोग में लाया जाता है। उस मनोरंजक कार्यक्रम को जो रोग-चिकित्सा सम्बन्धी मूल्य को पेश करने के लिए जान पड़ता है, सहारा दिया जाना चाहिए। व्यापार सम्बन्धित रोग चिकित्सा, घर में रोकने वाले उपाय की तरह बच्चों को कुछ उपयोगी प्रवृत्तियों में बद्ध रखने में बहुत दूर जाती है। हर एक बच्चे में इस शैतान को काम में लगा दिया जाना चाहिए जब उसे काम करने को कुछ नहीं होता। माता-पिता को अपने बच्चे में प्रिय अनुसरण और अनेक रुचियों का विकास करना चाहिए। बहुत समय में रुचि के स्थानों के स्थानान्तर को कार्यक्रम में सीधा जोर पाना चाहिए।

६ यह पाया गया है कि पुरुष अपराधियों द्वारा किए गए अपराधों की एक बहुत बड़ी संख्या अन्धेरे के समय होती है जब लड़का अपने माता पिता और संरक्षक की रक्षा में होता है। मैं सही हूँ अगर मैं यह कहूँ कि माता पिता और संरक्षक के विरुद्ध कार्यवाही की जानी चाहिए, अगर अपराध, रक्षा और नियंत्रण के अभाव के कारण किया गया है, वनिस्वत अपराधी के जिसने अपराध किया है। माता के ऊपर दोष रखना पड़ेगा, अगर रात में बहुत देर के समय बच्चे के ऊपर ठीक नियंत्रण व्यवहार में नहीं लाया गया है।

७ माता पिता को परिवार के सामान की ओर ध्यान देना चाहिए और बच्चों की देख भाल के तरीकों को अच्छी तरह समझना चाहिए,



उदाहरण स्वरूप जब बृद्धे कुटुम्ब में बच्चों के विचारों को उलझा देते हैं। उन्हें बाल-रक्षा और बाल-मनोविज्ञान पर पुस्तकें पढ़नी चाहिए। इन मामलों में माता-पिता की शिक्षा बहुत उपयोगी होती है।

### स्कूल :-

बालकीय अपराध को लिए स्कूल को इतना दोषित नहीं किया जाता जितना कि अधिक बार उसके घर को। इसके मुख्य तीन कारण हैं। पहला, क्योंकि हिन्दुस्तान में शिक्षा अनिवार्य नहीं है और न सबके लिए लाभदायक है। अतः हर एक बच्चा स्कूल में स्थान नहीं पाता। दूसरा, तिस पर भी वे अपने आदर्श से इतने गिर जाते हैं कि तुलना में मध्यम स्कूल के आवश्यक समान और नैतिक अनुशासन, एक काम देते हुए साधारण आदमी की गृहस्थी के समान और नैतिक अनुशासन की अपेक्षा और अधिक हल्के और कम हैं। जीवन अधिक आरोग्यजनक होता है; समय का चित्र खींच दिया जाता है और उपयोग में लाया जाता है; निरीक्षण स्थिर और प्रभावशाली होता है। तीसरा, यह लौकिक जिम्मेदारी है कि स्कूल नहीं बल्कि घर बच्चे की नैतिकता का केवल संरक्षक है। अन्तिम दृष्टिकोण गलत समझा जाता है और स्कूल को उन बच्चों के साथ जिनको अपने अधिकार में लेते हैं, जिम्मेदारी से सर्वथा नहीं बचना चाहिए। स्कूलों को अपने बच्चों के ऊपर अपराध के आक्रमण को रोकने के लिए नीचे के कारण दृष्टि में रखने होंगे।

१ कोई भी शैक्षिक संस्था अनेक मार्ग पर काम करते हुए, बाहर वातावरण के प्रभाव के विरुद्ध रक्षा नहीं कर सकती। यह देखना चाहिए कि हर एक लड़के या लड़की में नियमित स्वभाव और जिम्मेदारियों की उत्पत्ति होती है। यह चरित्र निर्माण है जिसके लिए ध्यान दिया जाना चाहिए। शैक्षिक युक्तियों की स्थिति बुद्धि की शिला के उपयोग के लिए है जब कि चरित्र उनके कार्यों के क्षेत्र के भीतर सोचा भी नहीं जाता। स्कूल बच्चों के ऊपर डाला हुआ केवल समाज द्वारा अपराधी बनाने की सहायता देने के जुर्म के लिए भी खुला है। यहाँ तक कि रुचि के साधन के लिए कोई भी वस्तु नहीं जुटाई जाती, थोड़े की आशा की जा सकती है, सबसे अच्छे फल उन सहज प्रकृतियों के साथ जो तूफानी टोली में



अपने को अनियंत्रित बताती है, स्कूल की प्रवृत्तियों के पिघलावट से निकलते हैं।

२ स्कूल जहाँ तक हो सके एक घर होना चाहिए। मुख्याध्यापक और अध्यापक के बीच, अध्यापक और अध्यापक के बीच, मुख्याध्यापक और विद्यार्थियों के बीच, अध्यापक और विद्यार्थियों के बीच और विद्यार्थियों और विद्यार्थियों के बीच सम्बन्ध सदृश (समान) स्वभाव के होने चाहिए। जब कि विद्यार्थी स्कूल में होता है तब उसे यह महसूस नहीं करना चाहिए कि वह संस्थापक वातावरण से जिसके ऊपर उसका नियंत्रण नहीं है, सामना करना पड़ता है। समझौते का स्वभाव, जैसा कि हर कोई कुटुम्ब में पाता है, प्रबल होना चाहिए।

३ स्कूल की पुस्तकों और दूसरी प्रवृत्तियों से बच्चे को संतोष दिया जाना चाहिए। उसे जलालत अनुसरण में कृत्रिमता और प्रवृत्तियों की निरर्थकता मालूम नहीं होनी चाहिए, नहीं तो वह स्कूल को केवल अनिवार्य समय के गमन की तरह देखेगा, जब तक वह स्कूल छोड़ने की हालत तक नहीं पहुँचता। कुछ मामलों में स्कूल और सुस्ती के प्रति गलत भावों में फल निकल सकता है। मैं दो बच्चों के मामलों को जानता हूँ जो “पृणोत्पादक स्कूल” के कारण आलसी बन गए थे, लेकिन बाद में वे समाज में अपराधी के रूप में बदल गए थे, वे बार-बार स्कूल छोड़ देते थे और अपना समय अयोग्य मित्रों के साथ किसी जगह बिताते थे। इसलिए यह अच्छा है कि वे सभी बातें जो सुस्ती में हाथ बँटाते हैं, कम कर दी जाना चाहिए, दवा दी जानी चाहिए और रोक दी जानी चाहिए।

४ जब किसी खास स्कूल के कपड़ों का परिमाण और सामाजिक समानता रखने में बहुत ही गरीब घरों के लड़के असमर्थ होते हैं, तब आगे उसमें और कठिनाइयाँ आती हैं। ऐसे मामलों में वे दर्द का मानसिक दुःख सहते हैं। उनकी इच्छाएँ और आवेग भंग हो जाते हैं जो कुछ प्रयुक्तियाँ, जहाँ तक उचित समानता का सम्बन्ध है, फल रूप में आगे लाते हैं। ये बातें स्कूल में दवा देनी पड़ती हैं। गरीब घर के लड़के को हर वक्त कम से कम स्कूल में अपनी बराबरी वालों और



साथियों के बीच आशा भंग महसूस नहीं करनी चाहिए। अगर पहले का स्कूल उसके बच्चे के योग्य नहीं है और उसकी प्रकृति अध्यापक, रीति-ढंग अनुशासन और उसके साथी उसकी आवश्यकताओं के लिए ठीक नहीं है तो वह दूसरे स्कूल बदल दिया जाना चाहिए। सिद्धांत यह है कि वह अच्छी भूमि और निरोगी फल के लिए वातावरण की ओर हटा दिया जाना चाहिए।

## सरकार

सरकार को नियम बनाने चाहिए जिनमें एक अपराधी बनना विलकुल अनावश्यक और असम्भव होगा और हर एक अपना जीवन व्यतीत करने में समर्थ होगा, क्योंकि यह समाज का उपयोगी सदस्य या सदस्य होना चाहती है या चाहता है। बालकीन अपराध की समस्या बन्द हो सकती है, अगर सरकार यह देखती है कि माता-पिता शिक्षित हैं, काफी स्कूल हैं, काफी पुस्तकालय हैं और बच्चों के लिए सिनेमा हैं तथा काफी हरे स्थान और मैदान हैं जहाँ बच्चे खेलते हैं। सरकार बच्चों को अपने बचे हुए समय की शरारत से अलग रखने के सब से उत्तम उपायों के जुटाने की जिम्मेदारी के साथ बदल जाती है। मैं सरकार को पालन करने के कुछ मुख्य कर्तव्य नीचे देता हूँ।

१ बचपन का समय खेलने का समय है, अगर घर में खेलने का स्थान नहीं है तो उत्साही बच्चे अपने आपको गलियों में, आंगन में और शहर के अन्य घरों में पाते हैं। टोलियाँ इसी तरह बनाई जाती हैं और ये तूफानी हास्यपूर्ण चिढ़ाने की युक्तियाँ हैं। अमेरिका में, बालकीय अपराध के देश विधान यह बतलाते हैं कि शहरों के उन भागों में, जहाँ बाटिकाएँ हर स्थान, खेलने के केन्द्र इत्यादि नहीं हैं, अपराध की संख्या और बहुतायत उन भागों की जहाँ खुले मैदान हैं, अपेक्षा अधिक है। इसलिए आवश्यक है कि सब तरह के खुले स्थान जुटाए जाने चाहिए। यह सलाह व्यापारिक स्थान में अधिक देने की आवश्यकता है।

२ इसी तरह मनोरंजक प्रवृत्तियाँ और संस्थाओं के दूसरे प्रकार, जहाँ बच्चे उपयोगी धाराओं की ओर अपना ध्यान और तेजी को मोड़ने के लिए अपने बचे हुए समय में नियमबद्ध कहे जा सकते हैं,



जुटाये जाने चाहिये, स्थापित किये जाने चाहिये और पालन किये जाने चाहिये ।

३. मुझे पाठक के ध्यान को कार्य के उस प्रकार की ओर खींचना चाहिये जो सोवियत सरकार द्वारा बालकीय अपराध को रोकने का किया जाता है । पुलिस की संस्था ही देश की शैक्षिक रीति में एक बहुत आवश्यक भाग अदा करती है । हर एक पुलिस स्टेशन के पास एक कमरा होता है जहाँ खोये हुए और देशी कानून को भंग करने वाले बच्चे लाये जाते हैं यह बच्चों के कमरे, मनोविज्ञान की शिक्षा और बच्चों के अनुभव और अच्छे ज्ञान के साथ पुलिसों द्वारा स्थापित किये गए हैं । स्कूलों से अध्यापक सहायक के रूप में बच्चों के कमरों में घूमते हैं । पुलिस और अध्यापक दोनों चुपचाप ओर दोस्तानी आवाज से, दृढ़ता से और व्यक्ति के बच्चों के साथ व्यवहार करता है प्रत्यक्ष सरलता के साथ बोलने की इच्छा रखते हैं ।

कानून भंग करते हुए लड़के या करती हुई लड़की, जैसे मोटर के पीछे लटकना, जेब कतरना इत्यादि, पुलिस के पास आवश्यक कार्यवाही के लिये लाई जाती है । बच्चे को अपना नाम और पता पूछा जाता है और माता-पिता और स्कूल से अध्यापक अगर वह वहाँ जाता है, जल्दी ही बुलाये जाते हैं । जब तक कि उसके माता-पिता और अध्यापक आये, पुलिस का सहायक अध्यापक बच्चे से वार्तालाप करता है । उसे कोई सम्भव कारण जो उसे पुलिस स्टेशन लाये हैं, मालूम करने के लिये, उसके घर, हालत और स्कूल के बारे में जिसमें वह पढ़ता है, जहाँ तक हो सके मालूम करना पड़ता है । बच्चा पुलिस स्टेशन में जुटाये हुए विभिन्न खेलों में भी काम में लगाया जा सकता है । जब माता-पिता आते हैं तब उनसे परिस्थितियाँ बताते हैं और अधिक परवाही के साथ उसकी देखभाल नहीं करने पर वह उनकी आलोचना करता है । वह सलाह देता है कि लड़के को हमेशा स्कूल भेज देना चाहिये, अगर उनके पास घर में मनोरंजन के साधन नहीं हैं । अगर बच्चा स्कूल में उपस्थित रहता है और अध्यापक बुलाया जाता है तो पुलिस उसके पास सूचनाएँ भेज सकता है । रोकने वाली और उचित रीति की किसी खास लड़के या लड़की को जो पुलिस स्टेशन पर लाई

गई है, दृष्टि में रखते हुए सलाह दी जाती है। यह एक अपराध को रोकने के प्रति उपयोगी प्रयोग है जो सोवियत सरकार द्वारा किया जाता है। दूसरे राष्ट्रों को इस ढंग का अनुसरण करना चाहिये, क्योंकि अध्यापक और माता पिता के सहयोग से ऐसे स्थान पर बहुत कुछ किया जा सकता है, अगर यह रोकने वाला उपाय ठीक किया जाता है तो केवल थोड़े से लड़के और लड़कियाँ अपराधों से जटिल की जायँगी। इसके पीछे के दो लेख बक्र उपायों के सम्बन्ध में होंगे।

## अदालत में

बाल-अपराधियों पर हमारे मुल्क में बड़े मुजरिमों के लिये बने हुए कानूनों से ही अभियोग चलाया जाता है तथा आम अदालतों से उनका फैसला होता है और हमारे शिक्षा-विदों के लिये ऐसा मालूम होता है कि यह कोई विशेष विचारणीय बात नहीं है; परन्तु उनसे भी साधारण जनता इस संबंध में बहुत कम चिंतित मालूम होती है। प्रायः सारे क्षेत्रों में हम बालक के साथ विशेष प्रकार के व्यवहार का प्रतिपादन करते आये हैं; और बच्चों के शिक्षक, बच्चों के डाक्टर यहाँ तक कि बच्चों के जेलर भी बालक से सम्बन्ध रखने वाली इस नई प्रवृत्ति के द्योतक हैं, परन्तु बच्चों के मेजिस्ट्रेट और बच्चों की अदालतें शायद ऐसी चीजें हैं जिनकी हमें अपने देश में बहुत कम वक्रफियत है।

इस समस्या के विषय में इंग्लैण्ड और अमेरिका ने नेतृत्व किया है और इन देशों में कतिपय दशाब्दियों से बच्चों की अदालतें हैं। अमेरिका में इस तरीके की स्थापना १८८० से भी बहुत पहले हो चुकी थी। इंग्लैण्ड में सर विलियम हर कोर्ट रानी विक्टोरिया को यह निश्चय कराने में सफल हुए थे कि साधारण अदालतों में अभियोग चलाने तथा सजा होने का बालकों की कोमलावस्था में उनकी नैतिक और शारीरिक प्रकृति पर बड़ा घातक प्रभाव होता है। इंग्लैण्ड में बच्चों की अदालतों की स्थापना १९०८ के बालक-कानून से हुई और तभी से ये सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

### आयु-मर्यादा

यह एक दिलचस्प प्रश्न है कि किस आयु तक के बालकों के अपराध का विचार बालकों की अदालत द्वारा होना चाहिए। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि कानून द्वारा स्वीकृत आठ से लेकर चौदह वर्ष तक के

‘बालक’ ही बालकों की अदालत में लिये जाने चाहिए और वे लोग जो चौदह और सत्रह वर्ष के बीच में हैं तथा इक्कीस वर्ष की आयु तक जिन्हें कानून ‘युवा’ मानता है, उनके अभियोगों पर विचार साधारण अदालतों में किसी भिन्न प्रणाली से होना चाहिए। अमेरिका की ‘कानून-संस्था’ (Law Institute) इस बात पर जोर डालती है कि और अधिक बड़े युवाओं को बालक-अदालत की पहुँच में ले आना वाँछनीय नहीं है अमेरिका के प्रगतिशील विशेषज्ञों की संस्था के ऐसे परामर्श की ओर देश के ‘बच्चों की अदालत’ के उत्साहियों को जागरूक रहना चाहिए।

## न्यायाधीश की योग्यता

बालकों की अदालतें कभी भी सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती यदि सामूली अदालतों के जज उनमें नियुक्त किये जायँ। बालकों की अदालत के न्यायाध्यक्ष का अनुभव और ज्ञान साधारण अदालत के जज से मूलतः भिन्न होना चाहिए। श्रीमती बेरो क्रेडबरी (Barrow Cadbury) अपनी विगत तथा ‘सम्भावित युवा अपराधी’ शीर्षक पुस्तक में लिखती हैं कि, “मेजिस्ट्रेट का चुनाव उनके बालक के ज्ञान के आधार पर होना चाहिए; उन्हें उनके स्कूल, उनकी विभिन्न गति विधि, उनकी प्रतिक्रिया तथा उनके शौक के सिनेमा इत्यादि बातों की जानकारी होनी चाहिए। वे स्काउट, गार्ड-कम्पनी और क्लब से परिचित होने चाहिए . . . .। अस्पताल, स्कूल के चिकित्सालय, स्वास्थ्य-वर्धक गृह तथा बालक-निर्देशन चिकित्सालय (Child Guidance Clinics) का भी उन्हें थोड़ा बहुत ज्ञान होना आवश्यक है।” किसी सीमा तक यह भी सच है कि आठ से चौदह तथा चौदह से अठारह या इक्कीस वर्ष तक के अपराधियों के न्याय करने वाले जज भी अलग-अलग हों। कुछेक शिक्षण-विज्ञ इस बात पर भी जोर डालते हैं कि ‘बालकों की अदालत’ के मेजिस्ट्रेटों की आयु औसतन अन्य अदालती जजों की अपेक्षा काफी कम होनी चाहिए। न्यायाध्यक्षों की ‘दीर्घ-कालीन उच्चता’ इस विषय में चुनाव की कसौटी न रहनी चाहिए; किन्तु जहाँ तक संभव हो वे लोग वास्तव में युवा ही होने चाहिए, जो बालक के मनोविज्ञान और ‘नई-प्रवृत्ति’ के अनुकूल अपना कार्य कर सकें।



## अदालत की रचना

यह सिद्धान्त निर्विवाद रूप से मान लिया गया है कि बालकों की कार्यवाही अदालत में कम से कम उपस्थिति की दशा में होनी चाहिए। दल की उपस्थिति जजों की मर्यादा सूचक प्रणाली, उनकी पोशाक आदि सम्पूर्ण वस्तुएँ बालक की मनोवैज्ञानिक स्थिति की विरोधी हैं। इस प्रकार के अवांछनीय प्रदर्शन के कारण बालक अहंकार अनुभव करता है और उस समय से अपने आपको युवा समझने लगता है क्योंकि अदालत ने उसके प्रति युवावस्था का व्यवहार किया है। वह अपनी स्वतन्त्रता तथा आत्मगौरव को महसूस करता है और अपने आपको उस कार्य का नायक समझने लगता है जिसका सरकार को पता लग गया है। वह दूसरे बालकों के समक्ष भी गलत उदाहरण प्रस्तुत करता है। उपरोक्त विचार-धारा हमें इस निष्कर्ष की ओर प्रेरित करती है कि कथित न्याय-प्रणाली को प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिए। अतएव सम्पूर्ण प्रकार के अपराधों का विचार चाहे वे ८ से १४ वर्ष के या १७ वर्ष के बालकों द्वारा किये गये हों, न्यायाधीश-रहित अदालतों में होना चाहिए। मनुष्य-वय जैसे गंभीर अपराधों में हाईकोर्ट के किसी जज को अदालत का अध्यक्ष बनना चाहिए और उसके दोनों सहयोगी मेजिस्ट्रेटों को कार्य-वाही करनी चाहिए। यह आवश्यक है कि वे सब तरह की रस्में जो बालक के लिए अहितकर हैं दूर कर दी जायँ।

ग्रौढ़ मनुष्यों के कुल्लेक अपराधों का न्याय करते समय अदालत अपराधी से पूछ लिया करती है कि उनका न्याय अदालत द्वारा या कि जुरी (Jury) द्वारा किया जाय; परंतु बालकों के लिए इस प्रणाली को सर्वथा हटा देना पड़ेगा। सत्रह वर्ष से कम के लड़के और लड़कियों के लिए विकस का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसे प्रश्न सत्रह वर्ष से कम आयु के बालकों को पूछे जाने पर वे घबड़ाते हैं और विमूढ़ हो जाते हैं।

## अभियोग की क्रम

बच्चों के अभियोगों का नीचे लिखे प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है:—

### १. अनियंत्रित बालक

२. पोषण एवं रक्षण योग्य बालक ।

३. आवारा बालक ।

४. प्रधान अपराध-कर्ता या अपराध से सम्बन्धित बालक ।

उपरोक्त पहली तीन श्रेणियों का न्याय 'बालक अदालत' में तथा चौथी श्रेणी का न्याय 'प्रौढ़ अदालत' में होना चाहिए । प्रथम श्रेणी में 'आरम्भ' (Initiation) बालक के पिता या संरक्षक के सिवाय अन्य व्यक्ति नहीं कर सकता । संरक्षक या पिता चाहें तो किसी समय भी कार्यवाही को स्थगित करा सकते हैं; ठीक उसी प्रकार ही अभियोग को वापस लेकर जिस तरह कि वे किसी डॉक्टर से बालक की किसी शिकायत के लिये परामर्श लेते हैं । अदालत को पालक या संरक्षक की स्वीकृति के बिना बालक को पहरे में रखने का अधिकार नहीं है । 'पोषण अथवा रक्षण योग्य' मामलों का आरम्भ पुलिस अथवा कोई भी अधिकारपूर्ण व्यक्ति बालक के माता-पिता या संरक्षक नहीं रहने के आधार पर कर सकता है, और इस स्थिति में भी यह तब कि जब पालक या संरक्षक पोषण एवं रक्षण के कर्तव्य में असमर्थ हों । 'रक्षण एवं पोषण योग्य' बालक तथा आवारा बालक में मौलिक अन्तर यह है कि प्रथम बालक घर-विहीन है और वह रक्षण एवं पोषण के योग्य है, और द्वितीय बालक कानून की दृष्टि में सन्देह पूर्ण है । इनके अलावा कई एक बालकों का वह अभाग्य पूर्ण समुदाय भी है जो या तो स्वयं अपराधी है या उनका अपराधों से सम्बन्ध है और जिन्हें उपरोक्त तीनों श्रेणियों से भिन्न तथा प्रौढ़ अदालत में उपस्थित होना पड़ता है ।

### प्रौढ़-अदालत में बालक

प्रौढ़-अदालत से न्याय होने वाले बालकों के खिलाफ साधारणतया निम्न अभियोग होते हैं—समयौत बालक के साथ व्यभिचार; बालिका के साथ निन्दनीय आचरण; किसी कुमारी का अपहरण; किसी बालिका के द्वारा व्यभिचार का व्यापार इत्यादि । कुछ मामलों में पूर्व सावधानी अत्यन्त आवश्यक है ताकि उन पर कोई मनोवैज्ञानिक प्रहार न हो । अपराध-विज्ञान के विशेषज्ञों के अनुसार ऐसे मामलों के न्याय में तीन से अधिक मजिस्ट्रेट न होने चाहिये । अदालत अधिकतम संकुचित होनी

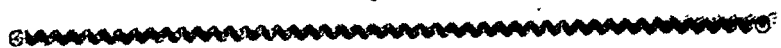
चाहिये जिसमें केवल वे ही आवश्यक व्यक्ति भाग ले सकें जैसे अभियुक्त, उसके कानूनन प्रतिनिधि, एक पुलिस अफसर, सरकारी वकील, अदालत का क्लर्क, तथा बालक। अदालत में दर्शकों का अभाव हो तथा अभियुक्तों के नाम प्रकाशित न हों। शपथ की रस्म का प्रदर्शन, गवाह के लिए नियत प्रकोष्ठ इत्यादि बातों का न होना ही अच्छा है।

## प्रमाण-ग्रहण की विधि

मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रमाण लेते समय व्यवहृत-रीतियों से दूर रहा जाय। रश्म-सूचक वस्त्रों से सज्जित व्यक्तियों की अदालत में बालक से यह अपेक्षा कैसे की जा सकती है कि वह अपने भयपूर्ण अनुभवों की कहानी कहदे। बालक अपराधी या गवाह के लिए घबराहट स्वाभाविक है। तारीख तथा अन्य विवरणों के प्रति उनके वेहद अस्त-व्यस्त हो जाने की आसंका है और सम्भव है कि वे बिलकुल बोल ही न सकें। क्लॉड म्यूलिन्स ने अपनी पुस्तक “अपराध और मनोविज्ञान” में बालकों से प्रमाण लेने की विभिन्न विधियों का उल्लेख किया है। उसने अपने जज रहने के समय के अनुभव के आधार पर प्रदर्शन रहित कुछ वास्तविक रीतियाँ प्रस्तावित की हैं। उसने कहा है कि बालक का मुँह आक्रमक अपराधी की दृष्टि से बाहर हो ताकि आतंक के वशीभूत होकर उसकी जवान कुण्ठित न हो जाय। यदि अपराधी बालक विवाद करना चाहे तो उसे पहले वे प्रश्न मजिस्ट्रेट को कहना स्वीकार करना चाहिये ताकि वह (मजिस्ट्रेट) बालक से पूछ सके। या अपराधी अपने प्रश्न लिखित रूप में दे जिससे उनके उत्तर प्राप्त किये जा सकें। मंत्र का प्रयोग न किया जाय और जज आवश्यक व्यक्तियों के साथ प्रमाण किसी मामूली कमरे में ही ले। बालकों से भय रहित एवं अकुण्ठित अवस्था में प्रमाण संग्रह कर सकने के लिये अधिक से अधिक वास्तविक तथा प्रदर्शन रहित तरीकों का आश्रय लेना अदालत की साधन सम्पन्न स्थिति पर ही निर्भर है।

## न्याय-करण की उत्तरोत्तर दो स्थितियाँ

जहाँ तक निर्णय का प्रश्न है निश्चित रूप से दो स्थितियाँ होनी चाहियें। प्रथम तो अभियोग से सम्बन्धित तथ्यों का अन्वेषण और द्वितीय,



अपराध प्रमाणित हो जाने पर तद् विषयक घोषणा ही नहीं करना अपराध की पृष्ठभूमि का अवलोकन एवं मूल कारण की जानकारी। एक स्पष्ट आवश्यकता यह है कि अपराध का ज्ञान होने के पश्चात् वाल अपराधी की परिस्थिति की प्रभावोत्पादक शक्तियों, स्वास्थ्य, चरित्र और सामाजिक वातावरण के अध्ययन के लिए पर्याप्त समय मिलना चाहिये। मोहलत-काल (Remaind. period) वालक को अपने द्वारा समझि के प्रति की गई त्रुटि को ही नहीं प्रत्युत स्वयं अपने ही को की गई त्रुटि की अनुभूति करने में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होता है। ये लाभ न्याय-करण (Trial) के पूर्व नहीं प्राप्त हो सकते क्योंकि गिरफ्तारी और न्याय-करण के मध्य का काल अत्यन्त अल्प होता है। दूसरे पुलिस के सिपाही इस कार्य के लिये अयोग्य होते हैं। तीसरे न्यायकरण के पहले कोई भी पूछताछ अनुचित है क्योंकि दण्डित होने के पहिले अभियुक्त निर्दोष होता है। इंग्लैण्ड के १९३३ के ज्युरिसडिक्शन नियमों में उल्लेख है कि अपराध सिद्ध हो जाने पर “अदालत उस मामलात के अलावा जो उसे Trivial किस्म के मालूम हों, बच्चे के घर के वातावरण, स्कूल के सूचना-पत्र, चरित्र, आवरण तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी अवस्था आदि बातों की जानकारी करेगी ताकि उसके लाभ के लिये वह उसके साथ तदनुसार व्यवहार कर सके और ऐसी सूचनायें न प्राप्त हो सकने की हालत में बालक के कारावास-काल को पूरी जानकारी के लिये जरूरी अरसे तक बढ़ाने के प्रश्न पर विचार करेगी।” संक्षेप में कहा जा सकता है कि मोहलत और अनुसंधान की सही प्रणाली द्वारा ऐसे बाल अपराधियों की समस्या को सुलझाया जा सकेगा जिनके सम्बन्ध में यह संदेह अवशिष्ट है कि वे अचेतन की किसी नियंत्रणहीन चेष्टा द्वारा तो अपराध करने की ओर प्रवृत्त नहीं हुए थे। छानबीन का कार्य पुलिस, अर्थात् अफसर और शिक्षा अधिकारियों द्वारा किया जा सकता है। दोनों प्रणालियों में से प्रत्येक के अपने २ गुण तथा अवगुण हैं।

### अदालत तथा बालक-निर्देशक-चिकित्सालय

हम कभी यह कहने की स्थिति में न हो सकेंगे कि बाल अपराधों को हम पर्याप्त रूप से अधिकार में कर रहे हैं, यदि बच्चों की अदालत को बाल मनोविज्ञान के विशेषज्ञों से संचालित बाल-निर्देशन चिकित्सालय

की सेवाएँ न प्राप्त हो सकें। बालनिर्देशक-चिकित्सालय में तीन व्यक्ति होते हैं—मनोवैज्ञानिक-चिकित्सक, समाज कार्यकर्त्ता और मानस-शास्त्री। समाज कार्यकर्त्ता को बालक के माता-पिता से मिलकर बच्चे के घर की परिस्थितियों की पूरी जानकारी करनी होती है, ताकि वह बच्चे के अपराध से सम्बन्धित कोई कारण खोज सके। मनोवैज्ञानिक बालक के मस्तिष्क की परीक्षा करता है और उसकी क्रिया प्रतिक्रिया का विवरण प्रदान करता है। यह विवरण मानसचिकित्सक उपलब्ध करता है और वह बालक से भेंट करके बालक के प्रति अपने ही निष्कर्ष पर पहुँचता है। अन्तिम स्थिति में इन तीनों का सम्मेलन होता है, जबकि ये विस्तृत रूप से बालक के सम्बन्ध में वाद-विवाद एवं विचार-विनिमय करते हैं। समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् चिकित्सा की कोई प्रणाली अपनायी जाती है। बाल-निर्देशन-चिकित्सालय की खोज तथा परामर्श अदालत को अपराध के निर्णय करने में तथा फैसला देने में इसलिए बहुत ही सहायक हैं।

### अपराध के प्रति अदालत का रुख

अपराध के निस्संदेह रूप से प्रमाणित होने के पश्चात् जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है वह है सजा किस प्रकार की दी जाय। इसके लिए अपराध के प्रति अदालत का रुख ही सजा के रूप का निर्णय कर सकता है। श्री. गिरीन्द्र शेखर बोस ने अपनी पुस्तक “रोजाना का मनोविश्लेषण” में इस समस्या पर अच्छी तरह प्रकाश डाला है। वह लिखते हैं—“दण्ड का सम्पूर्ण उद्देश्य होना चाहिये अपराधी की मनोवृत्ति और उसके मानसिक रुख की चिकित्सा, जिसके कारण उसने अपराध किया है तथा उसके ऐसे कार्य से पीड़ित व्यक्तियों की रक्षा।” इसलिए यह कहना सत्य है कि यदि अदालत-प्रदत्त ये सजायें उद्दिष्ट परिणाम को प्राप्त कर सकने में असफल रहती हैं तो, ये सजायें केवल प्रतिकार की वासनायें हैं। प्रतिकार का कोई भी संकेत या व्यर्थ ही पीड़ा सजा के रूप में विलकुल अर्थहीन और असंगत है। जब कभी दण्ड सुधार कर सकने की मात्रा से परे हो जाता है अथवा वह निरोध के रूप में प्रभावहीन हो जाता है तो वह दण्ड उचित नहीं रहता और केवल प्रतिकार स्वरूप बन जाता है। बीमारी की अवस्था में जिस

प्रकार डाक्टर का कर्तव्य बीमार का इलाज करना है तथा सम्प्रक-दोष से दूसरों को बीमार होने से बचाना है, उसी प्रकार अपराध के मामले में अदालत को दण्ड व्यवस्था के प्रति ऐसा ही रुख धारण करना चाहिए। अतएव प्रतिकार की भावना हमारे दण्ड नियमों का तत्व नहीं बन जानी चाहिये।

## सजा की किस्में

मैंने जो कुछ ऊपर कहा है उसे पूरी तरह समझ लेने के पश्चात् यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि बच्चों की अदालत की सजा की व्यवस्था आधुनिक बाल मनोविज्ञान की प्रगति तथा मनोविश्लेषण के प्रकाश में करनी होगी। अदालत द्वारा दी गई सजा मूल में मनो-वैज्ञानिक होनी चाहिए और उसे अपराधी तथा समाज की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए। इनके यथार्थ रूप का विचार मैं अपने आगामी लेख में करूँगा। विस्तृत प्रकार से चिकित्सा के रूप में सजा इन शीर्षकों में विभाजित हो जाती है:—

१. वातावरण का परिवर्तन।

२. बालक की व्यक्तिगत चिकित्सा।

उस समय जबकि अदालत का फैसला अपराधी को केवल लम्बे या कम कारावास का चुनाव करके जेल में भेज देना होता था, व्यवहार ज्ञान की न्याय विभाग में बड़ी कमी थी। परन्तु स्थिति बदल चुकी है। अब कारावास और जुर्माने के सिवाय अन्य कई तरीके हैं जिनका विवेचन आगामी लेख में किया जायगा।

## घर, स्कूल और सरकार की जिम्मेदारी

इन तीनों में से घर और सरकार को स्कूल की अपेक्षा बच्चों की अदालत को चलाने में ज्यादा जिम्मेदारी उठानी पड़ती है। ऐसी संस्था से उनका सम्बन्ध ज्यादा सीधा है और इसलिए यदि सफलता प्राप्त करना है तो उनको इस योजना में ज्यादा दिलचस्पी लेनी पड़ेगी।

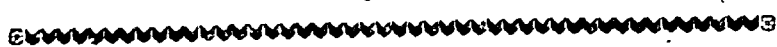
घर:—जिम्मेदारी पर विस्तृत रूप से विचार करने के पहले समाज की व्यहृत संस्थाओं के प्रति परिवार के समर्थन के प्रश्न पर विचार कर



लेना उचित होगा। यहाँ एक प्रश्न उठाया जा सकता है। घर समाज में 'बच्चों की अदालत' जैसी संस्था के रहने के प्रश्न में दिलचस्पी क्यों रखे? यह वास्तव में समाज के तथा घर के पारस्परिक कार्यों की समझ है। किसी संस्था की निश्चित प्रकार से परीक्षा करने पर यह सिद्ध होता है कि वह अनुकूल होने की क्रिया में बाधक नहीं किंतु सहायक है और दूर दर्शिता से अवलोकन करने पर जब उसके व्यक्ति को समष्टि के नियंत्रण में लाने तथा उसको सामाजिक स्थायित्व प्रदान करने के मूल्य की जानकारी होती है तो उसके प्रति और भी उदार निर्णय करना पड़ता है। संस्था की इस प्रकार की परीक्षा में यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि व्यावहारिक शब्दावलि 'जीवन की अभिलाषा' केवल समष्टि के प्रति संस्था के मूल्य में ही नहीं प्राप्त होती बल्कि उस अवसर में भी जो वह प्रभावशील व्यक्तियों के उस समुदाय को प्रदान करती है जो इस अवसर का उपयोग सामाजिक अधिकार प्रदान करने वाली शक्तियों के रक्षण के प्रयत्न में संचालित करते हैं। इसलिये संस्था के संगठन की भित्ति के रूप में हमें मनुष्य की इच्छाओं को उनके सबसे व्यापक अर्थ में समझाना चाहिये। मेरी कही हुई बातों पर निर्मित बच्चों की अदालत एक ऐसी संस्था है जिसका आधार अधिकतर मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकता तथा व्यवसाय है और जो केवल समष्टि की ही सुरक्षा में वृद्धि नहीं करती बल्कि अधिकांश रूप से व्यक्ति का भी हित-चिन्तन करती है। इन विचारों के सहारे 'घर' को बच्चों की अदालत की उपयोगिता तथा हमारे देश में उसकी आवश्यकता को महसूस करना चाहिये। 'घर' के सहयोग के अभाव में बच्चों की अदालत अपना कार्य ठीक तरह से नहीं कर सकती। आधुनिक मनोविज्ञान के प्रकाश में अपराध तथा उसके निवारण की कल्पना सम्पूर्ण रूप से बदल गई है। अतः अदालत से उचित दण्ड मिल सकने के लिये यह बांछनीय है कि 'घर' की ओर से अदालत को पूरी सुविधा दी जाय।

संक्षेप में घर को निम्नरूप से अपने उत्तरदायित्व को सँभालना चाहिये:—

(१) मैं पहले नियंत्रण से बाहर के बालकों का उल्लेख कर चुका हूँ जिनका अभियोग माता-पिता या पालक को चलाना चाहिये। उन्हें अप-



राय की मनोवृत्ति और उदार दृष्टि से देखना चाहिये और अदालत से परामर्श लेना चाहिये । उन्हें बाल-अदालत की सहायता उसी प्रकार लेनी चाहिये जिस प्रकार किसी डॉक्टर से नुसखा हासिल करते हैं ।

(२) पालक को भी पुलिस या 'अधिकारी व्यक्ति' द्वारा अभियोग चलाने पर उतनी ही दिलचस्पी रखनी चाहिये कि वे जितना अधिक सहयोग या सहायता देंगे अदालत की खोज तथा सजा भी उतनी अच्छी होगी ।

(३) यह आवश्यक है कि पालक अदालत में उपस्थित हो और हर तरह से सहायता पहुँचाये ।

(४) पालक तथा संरक्षक को बच्चों की घर की हालत तथा व्यक्तित्व का अन्वेषण करते समय और भी अधिक सहयोगपूर्ण सहायता देनी चाहिये ।

स्कूल:—जो बातें घर के विषय में कही गई हैं वही स्कूल के संबंध में भी लागू होती हैं । स्कूल का सहयोग मिलना अपेक्षाकृत और भी आसान है क्योंकि अध्यापक बाल-मनोविज्ञान के तरीकों से परिचित होते हैं । मैं यह भी प्रस्ताव करूँगा कि अध्यापक पालक को बच्चे के मुश्किल मामलों में अदालत से चिकित्सा के उपायों के बारे में परामर्श लेने के लिये प्रेरित करें । इसके अलावा स्कूल और समाज के उत्तम सम्बंध होने की हालत में स्कूल अदालत की अपेक्षा दूसरे बालकों के घरों में एक अच्छा संयोजक सिद्ध हो सकता है । अदालत जब बच्चे के अपराध के विषय में वातावरण की जिम्मेदारी का अन्वेषण करती है तो स्कूल का सहयोग और भी जरूरी हो जाता है । इस काम की या तो स्कूल को खुद ही सारी जिम्मेदारी लेनी पड़ती है या आवश्यकता होने पर अन्वेषक अक्सर या पुलिस की सहायता लेनी पड़ती है ।

सरकार:—सबसे अधिक जिम्मेदारी सरकार को उठानी पड़ती है । अपराध तथा उसके निवारण की समस्या ने अतीत से ही सरकार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है । अपराध समाज का एक रोग है और उसके विनाश की समस्या उन लोगों के लिये अत्यन्त महत्व की है



जिनके ऊपर समाज के हित की जिम्मेदारी है। महत्वपूर्ण होने में सरकार अग्रगण्य है। यह शीघ्र आवश्यकता है कि सरकार उसके महत्व को स्वीकार करके सारे भारत में बच्चों की अदालतें स्थापित करे। बच्चों की अदालत अन्य अदालतों से पृथक् होनी चाहिये। सरकार को बाल अपराध, अपराधी, उनकी अदालत, न्याय-व्यवस्था एवं प्रणाली तथा दण्ड के बारे में अविलम्ब नियम बना देने चाहियें। सारे के सारे दण्ड-नियमों का नव-निर्माण होना चाहिये।

पुलिस का सुधार दूसरा क्षेत्र है जिसकी ओर सरकार का ध्यान आकर्षित होना जरूरी है और जिसे बाल-अपराध से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न कार्य करने पड़ते हैं। इस तरफ भी कुछ कानूनों का बनना जरूरी है क्योंकि यदि पुलिस को बालकों के प्रति नई प्रवृत्ति से अवगत नहीं किया जायगा तो बच्चों की अदालत की सारी आकांक्षायें अपरिपूर्ण ही रह जायेंगी।

अतः व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों से इस सम्बन्ध में आवेदन किया जाता है, क्योंकि उन्हीं पर प्रत्यक्ष रूप से अपराध एवं दण्ड के लिये कानून बनाने का उत्तरदायित्व है। दण्ड प्रस्तावित करते समय व्यवस्थापिका के सदस्य को अपने आपका किसी पार्टी के साथ एकीकरण नहीं कर देना चाहिये, अचेतन रूप से यह अपराधी के प्रति प्रतिकार की मनोवृत्ति हो सकती है। पुराने सजा के कानून में प्रतिकार का तत्व इसी का परिणाम है। मैं यह कठिनाई महसूस करता हूँ कि प्रत्येक सदस्य अपराध-विज्ञान और मनोविज्ञान की आधुनिकतम गतियों से सुपरिचित नहीं हो सकता। अतः यह परामर्श है कि जब कभी हमारे देश में इस प्रकार के नियम बनें मनोवैज्ञानिक और मनोचिकित्सक की राय का उपयोग किया जाय।

## सुधार संस्थाओं व जेलों में

अब युवक अपराधियों के सुधार की समस्या पर विचार किया जाता है। विध्वंसात्मक उपाय इस लेख के बाहर का क्षेत्र है। हमें ऐसे उपायों की खोज करना है जिससे अपराधी अपनी कुप्रवृत्तियाँ छोड़ कर समाज के उपयोगी नागरिक बन जा सकें। जैसा कि गत निबंध में सुझाव रखा गया था कि समाज के सभी युवकों के घुरे आचरणों का प्रत्येक मामला छानबीन, न्याय तथा दण्ड के लिये युवा-अपराध-निर्णय अदालतों में ही जाना चाहिये। सजा और जेल अन्तिम उपाय ही हो सकते हैं। अपराधी जेल के बाहर ही सुधर सकें यह हमारा ध्येय होना चाहिए अतः ऐसे प्रयत्नों के लिए देश में विभिन्न २ स्थानों पर सुधार संस्थाएँ और युवा अदालतें स्थापित की जानी चाहियें। अपराधी इसी तरीके से समाजोपयोगी बड़ी सरलता से बनाया जा सकता है।

युवा अदालतें चिकित्सा या सुधार के लिए निम्न उपायों की सिफारिश कर सकती हैं:—

- (१) घर को चेतावनी और माता-पिताओं को निर्देश।
- (२) फोर्स्टर घरों में अपराधियों को रखना।
- (३) स्वीकृत स्कूलों में रखना।
- (४) बोस्टल संस्था में रखना।
- (५) प्रोवेशन पर रखना।
- (६) जेल में रखना।

### घर, फोर्स्टर घर या कोई संस्था

यदि अदालत को यह महसूस हो कि बालक की समस्याएँ घर पर भी हल की जा सकती हैं तो प्रत्येक संभव प्रयत्न अवश्य किया जाना



चाहिये। स्थानान्तर करने के पक्ष में बहुत कम विद्वानों की राय है, जिसे अन्त में ही प्रयोग में लाना ज्यादा अच्छा है। यदि यह अनुभव किया जाय कि स्थानान्तर आवश्यक है तो फिर बालक की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर सम्पूर्ण प्रबन्ध किया जाना चाहिये। हर निर्णय तथा हल अपराध पर निर्भर हो।

## फोस्टर घरों में बालक

यह माना जा चुका है कि फोस्टर घर छोटे बच्चों के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। छोटे बालकों को स्नेह की अपेक्षा रहती है और वह फोस्टर घर स्थानापन्न पालक से ही मिल सकती है। इसमें युवाओं का भी विकास हो सकता है वे ऐसे स्थानों में आत्मानुशासन और स्वयं को समझने की शक्ति को पाकर धीरे धीरे स्वतंत्र वातावरण में अपने सुधार योग्य बना सकते हैं। सुधार का अर्थ है मनोवैज्ञानिक चिकित्सा के साथ साथ फोस्टर घरों में पालन। बालक के सुधार में दोनों स्थितियाँ अपेक्षित हैं।

## बालक प्रोवेशन काल में

प्रोवेशन से अभिप्राय यह है कि बालक को एक अनिश्चित अवधि तक जब तक वह कोई अवाञ्छनीय काम न करे जेल में न रखा जाय। ऐसे काल में विकृत-मानस बच्चों की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा का भी प्रबन्ध रहता है। सजा देने के पूर्व अपराधी और उसके सम्पूर्ण वातावरण की पूरी छान वीन सहित रिपोर्ट तैयार की जाती है। रिपोर्ट के आधार पर अदालत निर्णय करती है कि बालक रक्षण के तरीकों के योग्य है या नहीं। इसमें अपराधी की अनुमति का मूल्य अधिक नहीं है। क्षमा होने के बोझ को सहने की ताकत बहुधा प्रोवेशन की योजनान्तर्गत बालकों में नहीं होती।

प्रोवेशन-अफसर अनुभवी कार्यकर्ता होते हैं। वे अदालत के प्रति जवाबदार होते हैं और वे वेतन भी दोनों स्थानों से पाते हैं। संक्षेप में उनका काम है—प्रोवेशनर बालक के घर जाना, उसके आचरण, जीवन और कार्य की जाँच करना, बालक के साथ गहरा सम्पर्क रखना और उससे बराबर मिलना और यह निश्चय करना कि बालक अपने समझोते की शर्तों को समझ रहा है और उन्हें नियमानुकूल पालता है।



यदि वह ऐसा न करे तो अदालत को इसकी सूचना देना, परामर्श देना, बालक के साथ मित्रता करना और हर संभव प्रयत्न करना । अनुभव ने बताया है कि हर प्रोवेशन-अफसर के साथ ५० बालक होने चाहिये ।

इंग्लैण्ड में जहाँ प्रोवेशन एक्ट जारी है, प्रोवेशन ८ वर्ष से १७ वर्ष के बालकों के लिए अधिक अनुकूल और सबसे ज्यादा वाञ्छनीय १३ वें वर्ष में है । खास तौर से छोटे बच्चों के लिए ही इसका उपयोग करना अधिक लाभप्रद होता है ।

प्रोवेशन की अवधि क्रमशः ६ महिना, एक वर्ष तथा दो वर्ष हो सकती है जिसमें एक वर्ष अधिक साधारण अवधि है । विभिन्न देशों के अनुभवों ने बताया कि ८० प्रतिशत प्रोवेशन केसों में सफलता मिलती है । इसी प्रणाली के सम्बन्ध में आजकल एक विवाद सा पैदा हो गया है । कुछ का मत है कि इसका प्रयोग मनोचिकित्सा के संयोग से साधारण अपराधियों के लिए होना चाहिए और उत्तरोत्तर जेल के बड़े अपराधों के लिए । कुछ उत्साही मनोवैज्ञानिकों का यह भी विश्वास है कि इस प्रणाली से गम्भीर केसों में भी सफलता मिल सकती है । यह भी जरूरी है कि अदालत के आदेश से पहले अपराधी की किसी डाक्टर द्वारा मस्तिष्क सुधार के लिए चिकित्सा करा ली जाय । चिकित्सा का व्यय अपराधी की ओर से होना चाहिए, पर सरकार को भी मदद देना आवश्यक है ।

## कुछ विचारणीय विचार

- (१) अपराधी की प्रोवेशन अवस्था में जो तत्व मनोचिकित्सा में अत्यंत लाभदायक हैं वे विकृत-मानस अपराधी के लाभप्रद पहलू का स्वयं जीविकोपार्जन है ।
- (२) अदालत प्रारम्भ से ही अपराधी का विश्वास करती है । जिससे उसे अपना आत्माभिमान जागृत करने का अवसर मिलता है ।
- (३) प्रोवेशन अफसर अपराधी का विश्वस्त मित्र होता है ।

## कुछ कठिनाइयाँ

- (१) कभी कभी चिकित्सक दुष्प्राप्य होता है और प्रोवेशनर बालक का उस तक पहुँचना कठिन होता है ।

(२) इसमें समय बहुत लग सकता है।

(३) कभी कभी प्रोवेशनर अफसर अपना पेशा बदल देते हैं।

## अदालत या प्रोवेशन चिकित्सा

अदालत को अपराधी के विषय में पूर्ण रुचि रखना चाहिए। वह अपने निर्णय के पश्चात् कर्तव्य से बरी नहीं हो जाती है। क्लाड म्यूनिल्स का मत है कि केस का अध्ययन अदालत के लिए सबसे अधिक महत्त्व की वस्तु है। क्योंकि प्रत्येक बात मनोचिकित्सक और प्रोवेशन अफसर पर नहीं छोड़ना चाहिए। रोगी और चिकित्सक में आपसी विश्वास होना और बढ़ना आवश्यक है। अदालत को इस सम्बन्ध में अधिक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। कोर्ट तथा प्रोवेशन अफसर को चिकित्सक के निदान तथा आदेश के प्रति अपनी पूरी जिम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिये।

## स्वीकृत स्कूल या जेल

मैं दृढ़तापूर्वक इस बात में विश्वास रखता हूँ कि सजा देने के पहले हर संभव प्रयत्न पर विचार हो जाना चाहिए। प्रत्येक स्थान पर इन सुझावों का किया जाना जरूरी है कि जिससे सजायें कम से कम हों। जिन्हें अदालत कम सजा के योग्य अनुभव करे तथा जिनके सुधारने का पूरा विश्वास हो उनको फोस्टर घर या प्रोवेशन अफसर की देख रेख में रखना उचित है किन्तु जिन अपराधियों को लम्बे अरसे की आवश्यकता पड़े या जो जेल से बाहर होने पर घातक सिद्ध हों उन्हें स्वीकृत स्कूल, सुधारक तथा बोस्टल जेल में भेजना चाहिये।

## स्वीकृत स्कूलों में बालक

यह एक ऐसी संस्था है जिसका संचालन या प्रबन्ध सरकार या समान द्वारा होता है। परन्तु सरकारी अनुमति और निरीक्षण के बिना ये काम नहीं कर सकती। स्टाफ की नियुक्ति में भी सरकार का हस्तक्षेप रहता है। इंग्लैण्ड में किसी बालक के स्वीकृत स्कूल के निर्वाह के व्यय का आधा भार राज्य कोष तथा आधा स्थानीय जिला सरकार उठाती है। पालक से भी मदद माँगी जाती है। वर्गीकरण स्कूलों का आयु के अनुसार होता है।

### लड़कों के स्कूल—

- (१) निम्न—तेरह वर्ष से नीचे
- (२) मध्यम—तेरह से पन्द्रह
- (३) उच्च—पंद्रह से सतरह

### लड़कियों के स्कूल—

- (१) निम्न—पन्द्रह से नीचे
- (२) उच्च—पंद्रह से सतरह

इन संस्थाओं में “संरक्षण योग्य”, “नियंत्रण से बाहर” या सजा होने योग्य अपराधी बालक लिए जाते हैं।

कोट यदि बालक को स्वीकृत स्कूल में भेजना निश्चित कर ले तो अनुकूल स्कूल और सारा प्रारम्भिक कार्य स्थानीय अधिकारियों को करना होता है अन्तिम अधिकार अदालत को रहता है।

यदि युवा अदालतें देश में स्थापित हों तो अदालतों द्वारा अन्वेषण सहित सारा इतिहास स्कूलों के बड़े लाभ का होता है। उसके न होने पर स्कूल को सारी पूर्ण बातों का पता लगाना होगा और डाक्टरों और मनोचिकित्सकों द्वारा निरीक्षण करवाना होगा। ये सब बातें बालकों के विकास में सहायक सिद्ध होंगी। इन स्थानों से बालक की मुक्ति का दिवस तय करना निरीक्षक व प्रधानाध्यापक के परामर्श से प्रबन्धक के हाथ में हो, परन्तु अदालत द्वारा नहीं।

इन स्कूलों में घर के लिए अवकाश के प्रश्न पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि अधिकांश बच्चों के घर नहीं होते तथा गरीब घरों से आने के कारण घर की छुट्टी का अर्थ गन्दगी तथा बीमारी में वृद्धि होगी, इसलिए ऐसे अवकाश को ज्यादा प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिये।

### वोर्स्टल में बालक

वोर्स्टल का उद्देश्य शिक्षण है न कि सजा। वोर्स्टल प्रणाली इंग्लैण्ड में प्रारम्भ हुई और अब सभी देशों में इसका प्रचार है। इनका प्रबन्ध जेल विभाग द्वारा होता है। यहाँ १६ से २३ वर्ष के अपराधी शिक्षण के लिए रक्खे जाते हैं। स्वीकृत स्कूल के असफल तथा भागे हुए बालक अदालत द्वारा वोर्स्टल में भेजे जाते हैं। इसका

उद्देश्य “बालक अपराधी को जिसका मस्तिष्क और चरित्र अभी दृढ़ नहीं हुआ है, एक नूतन दृष्टिकोण और नया भुकाव प्रदान करना है” और संस्था में रहते हुए उसे उपयोगी नागरिक बनाना है, उसे काम करने में रुचि पैदा करवा कर चरित्र वृद्धि करवाना है। बोस्टल किसी भी तरह जेल नहीं है, वह एक सुधार स्थान है। अवधि प्रायः तीन वर्ष होनी चाहिए।

मुक्त हो जाने पर युवक का सम्बन्ध जेल की तरह पुलिस से न होकर बोस्टल एसोशियेशन से होता है। यह संस्था अपने सम्पर्क से युवक के भविष्य-निर्माण में बहुत योग देती है। इस प्रकार यह प्रणाली अत्यन्त लाभप्रद है। हमें प्रयत्न करना चाहिये कि जेलें बन्द हो जायँ।

### जेल में बालक

गत कांग्रेसी शासन के तत्त्वावधान में संयुक्त प्रांत में एक ऐसी जेल आकस्मित अपराधियों के लिए खोली गई थी, जिसमें प्रथम बार सजा पाये युवक ही रक्खे जाते थे। यह एक महत्वपूर्ण कदम था, पर केवल आकस्मित अपराधियों तक ही इसे सीमित रखना उचित नहीं जान पड़ता। तत्कालीन प्रांतीय आई. जी. पी. के सुभावानुसार अपराधियों का वर्गीकरण अपराध और सजा की संख्या पर न होकर ‘जीवन के प्रकार’ के अनुसार होना चाहिये। इसलिए वे कहते हैं कि मनोवैज्ञानिकों और मनोचिकित्सकों आदि के अन्वेषण के पश्चात् ऐसा वर्गीकरण हो—सरल स्वभाव अपराधी, जटिल अपराधी और अति जटिल अपराधी, इसका मुख्य आधार अपराधी की सामञ्जस्य पूर्ण मनोवृत्ति है। इसके अतिरिक्त अपराधी जेल में तभी तक रक्खा जाय जब तक उसे उपयोगी नागरिक न बना दिया जाय और इस बीच में योग्य डाक्टरों और अनुकूल परस्थितियों में रक्खा जाय, निम्न पंक्तियों में उनकी मनोवृत्ति यह है:—

“चिकित्सा होकर मुक्त किया गया” से अभिप्राय यह कि अपराध का कोई मौलिक कारण खोज लिया गया और उसका सन्तोषजनक इलाज किया गया। “सुधार हो जाने से मुक्त किया गया” का यह अर्थ है कि व्यक्ति एक स्थायी अपराध विहीन स्थिति में पहुँच गया है। जेल

में किसी भी अपराध के बालक आ सकते हैं, जैसे डाका, अपहरण, सिक्के बनाना, जाली लेख, चोरी, हत्या, आक्रमण, मौन अपराध। आयु के अनुसार इनके विभाग होने चाहिये।

## बालक-जेल में सुधार-कार्यक्रम

यह सुधार कार्यक्रम की रूपरेखा जेल में किये जाने वाले कार्यों के आधार पर है।

(अ) जेल में प्रवेश होने पर—स्नेह पूर्ण व्यवहार, सद्भावना और मैत्रीपूर्ण वातावरण का मिलना।

(ब) खेल और स्काउटिंग—तरह २ के खेल और स्काउटिंग में रुचि पैदा करवाना।

(स) काम—बालक की शक्ति के अनुसार कार्य मिलता है। बर्दाईगिरी, बुनाई, खेती, मधुमक्खी-पालन, चमड़े का काम—यानी—प्रत्येक आदमी को अपनी पसन्द के अनुकूल कार्य मिलता है।

## पढ़ाई

अन्त में अधिकारीगण बालक में पढ़ाई की रुचि उत्पन्न करते हैं। स्कूल में पढ़ते समय उसे दूसरों के उदाहरण द्वारा पढ़ने में रुचि उत्पन्न करवाई जाती है। भाषणों और प्रदर्शनों द्वारा उसको प्रभावित करके विकास के लिए जिज्ञासु बनाया जाता है। भाषणों का आधार दैनिक जीवन सम्बन्धी बातें और कार्य ही चुने जाते हैं। बाहर की टीमों के साथ मैच का प्रबन्ध किया जाता है। जेल में वाचनालय व आरोग्य-गृहों का प्रबन्ध पूर्ण रहता है। व्यक्ति की रुचि को विकसित करने के लिए हर प्रयत्न किया जाता है। इस माने में वह छात्रों की सुविधा का पूरा ध्यान रखता है।

## घर की छुट्टी

अधिकारियों ने अपने परिवार के साथ रहने से इच्छुक एवं योग्य बालकों को घर जाने की भी अनुमति देना पसन्द किया है। घर जाने



बाले बालकों को सफेद वस्त्र पहना कर अधिकृत-पत्र दिया जाता है। इस काल में उन पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं रहता। इस तरह के प्रयत्न शत प्रतिशत सफल रहे हैं।

### बालक-जेलों में निर्माण-कार्यक्रम

- (१) बाहर कारखानों में काम करना—इस पद्धति में बालक जेल में रहकर किसी कारखाने में काम सीखता है। वहाँ उसके काम करते समय कोई निगरानी नहीं रहती। उसके उपार्जन में से भोजन आदि का व्यय लेकर बाकी रकम उसके नाम पर जमा कर दी जाती है।
- (२) जेल से बाहर जमीन पर खेती करने की आज्ञा।
- (३) उद्योगों की शिक्षा स्कूलों की तरह कक्षाओं में दी जाती है। प्रत्येक कक्षा का नियमानुसार पाठ्यक्रम होता है।
- (४) यदि कोई बालक जेल में स्कूल की आगे की पढाई करना चाहे तो उसे सुविधा प्रदान की जाती है।
- (५) जेल से मुक्त होने के पश्चात् अधिकारी युवक को काम भी दिलाते हैं।
- (६) जिनके मकान न हो उनके लिये मकान का प्रबन्ध किया जाता है। जेल से निकलने के पश्चात् जेल के अधिकारी बालकों के आचरण और कार्य सम्बन्धी विवरण जिलों के अधिकारियों से मँगवाते रहते हैं। बहुधा जेल से छूटने पर युवकों ने अपने आप को योग्य, कार्यकुशल और समाजोपयोगी सिद्ध किया है।

### चिकित्सा का कार्यक्रम

बालकों की चिकित्सा के तीन तरीके काम में लाये जाते हैं:-

- (१) बालक के साथ उसकी कठिनाइयों पर विचार।
- (२) खेल की शैली।
- (३) मनोविश्लेषण।

बालक के साथ उनकी कठिनाइयों पर विचार

स्वभावतया बालक बड़े जिज्ञासु होते हैं। प्रौढ़ को बालकों से वाच-  
र्चा के समय यह ध्यान रखना चाहिये कि उसके बोलने, कहने के ढंग  
आदि का प्रतिक्रियात्मक प्रभाव न हो। बालक अपने आप को ठीक व्यक्त  
नहीं कर पाते, अतः स्वयं प्रौढ़ को उन्हें स्पष्ट करने में मदद देना चाहिये  
इससे बालक बड़े प्रभावित होते हैं। यदि प्रौढ़ बालकों का भय दूर करके  
विश्वास प्राप्त कर लें तो बालक की व्यक्तिगत कठिनाइयाँ समझने में  
आसानी रहती है और इस प्रकार सरलता से उपचार भी संभव है।

खेल द्वारा चिकित्सा

विचार-विमर्श सीमित होता है— इस कठिनाई का हल खेल-जनित-  
चिकित्सा द्वारा हो सकता है। खेलों के सांकेतिक व्यवहार द्वारा बालक  
के मन की गहरी चेतना का आभास मिलता है और वह प्रकट भी होता  
है। बालक खेलता रहता है और चिकित्सक खेल में कभी सक्रिय और  
कभी निष्क्रिय रहकर बालक को समझने की चेष्टा करता है और बहुधा  
उसे बालक के हावों-भावों से उसकी चिकित्सा में सुविधा मिलती है।

मनोविश्लेषण

यह प्रयोग बड़े लड़कों के साथ हो सकता है। इसका उद्देश्य जागृत  
मत के अज्ञान मन की चेतनाओं की खोज करना है। कुछ ऐसी दबी  
अज्ञात भावनार्यें रोगी के मन में रहती हैं, जिनसे प्रेरित होकर वह अप-  
राध करता है। रोगी स्वयं अपने को समझ नहीं पाता। यह काम मनो-  
वैज्ञानिक का है। वह कारणों का पता लगाकर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से  
चिकित्सा की राय देता है और इस प्रकार रोग का अन्त हो जाता है।

धन्धे द्वारा चिकित्सा— धन्धे से बालक की रुचि का विकास होता  
है और रचनात्मक जीवन की प्रेरणा मिलती है। अपने साथियों के सपर्क  
में आने और शिक्षक, प्रोवेशनर डाक्टर आदि के सद्व्यवहार से उसके  
हीनता भाव नष्ट होते रहते हैं। दलगत भावना और प्रतियोगिता द्वारा  
वह अपने आपको गतिशील बनाता रहता है।

कई अस्पताल बालकों की मनोचिकित्सा के लिए खोले गये हैं।

## घर स्कूल और सरकार की जिम्मेदारी

अपराध मनोवृत्ति की चिकित्सा के कार्यक्रम में घर और सरकार की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी रहती है। घर की जिम्मेदारी सहयोग देने की तथा सरकार की उक्त तमाम साधन सुविधाओं और सुधार संस्थाओं के खोलने की है।

अदालत में पेश होना इलाज का पहला कदम है। अपराधी द्वारा अच्छे आचरण रखने, आदेश के अनुसार लिखित अवधि में किसी भी समय अदालत में उपस्थित होने के प्रण लेने के पश्चात् अदालत उसे जमानत सहित तथा बिना सजा के भी मुक्त रख सकती है। इस स्थिति में घर की बड़ी भारी जिम्मेदारी है। घर वालों का कर्तव्य है कि इस समय अपराधी की देख भाल करते हुए उत्तरोत्तर विकास का प्रयत्न करते रहें। पालक का कर्तव्य है कि वह अपने पुत्र या नाते के मोह में न पड़कर तमाम दिये गये निर्देशनों का अपराधी से पालन करवायें, उसे समझावें कि चिकित्सा उसे सुधारने के लिये है। तात्पर्य यह है कि घर के सम्पूर्ण सहयोग बिना चिकित्सा असम्भव बन सकती है।

ऊपर सारे निबन्ध में स्पष्ट कर दिया गया है कि अपराध एक रोग है। अन्य रोगों की भाँति इसका भी इलाज जरूरी है पर आधुनिक जेल व्यवस्था और कठोर दंड प्रणाली वस्तुतः इलाज नहीं है। समाज में बाल अपराधी बढ़ते जा रहे हैं। इसका कारण सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक समस्याएँ हैं। सरकार इन समस्याओं को दूर करके बाल अपराधियों की वाढ़ को रोक सकती है। बढ़े हुये बाल अपराधियों की समुचित चिकित्सा का प्रबन्ध करके उपयोगी नागरिक बनाना सरकार का प्रमुख कर्तव्य है।

यदि अपराधियों के अपराध का परिणाम दण्ड ही न होकर उसकी चिकित्सा और सुधार का प्रयत्न किया जाय तो समाज में अपराधियों का अधिकांश में निराकरण हो जायगा।

## रोजी की खोज में

आज का तथाकथित शिक्षित तरुण स्कूल और कालेज से निकल कर रोजी की तलाश में कई वर्ष बर्बाद करता है और रोजी की इस असफल तलाश में उसे अनेक निराशाओं और लज्जा जनक परिस्थितियों में होकर गुजरना पड़ता है, जो उसके आत्म-सम्मान, आत्म विश्वास तथा आत्म निर्भरता की भावना को गहराई तक कुदेद देती हैं। अन्ततः वह छोटी मोटी तनख्वाह पर किसी आफिस में नौकरी कर लेता है और रुचि अरुचि के विचार से दूर मशीन की तरह अपनी रोजी के साधन को निभाता चलता है। यदि यह भी सम्भव नहीं हुआ तो वह सम्पूर्ण आत्म वेदना और लज्जा से अपना मन भरे अपने माता-पिता पर ही भारवत् होते हुए भी निर्भर रहने को विवश हो जाता है। इस प्रकार के कटु अनुभवों में गुजरा हुआ तरुण जीवन भर के लिए असंयत हो जाता है और इसी के परिणाम स्वरूप आज दुनियाँ में इतनी अशान्ति और वंदना का साम्राज्य हो रहा है।

रोजी का चुनाव जीवन के अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णयों में से एक है। इस चुनाव पर ही अनेक अंशों में व्यक्ति का भावी सुख और समृद्धि निर्भर करती है। उचित चुनाव का अर्थ है जीवन भर का सुख और किसी प्रकार से गलत चुनाव हो जाने का अर्थ है जीवन भर के लिए असंतोष, असमंजस और अशान्ति का चक्कर। गलत चुनाव हो जाने की अवस्था में न आनन्द रहता है और न आत्म संतोष का अवकाश। इस प्रकार की भूल हुई कि समझ लो मनुष्य की शक्ति और योग्यता ही व्यर्थ गई।

रोजी के चुनाव या इस सम्बन्ध में दी जा सकने योग्य सम्भव सहायता पर विचार करने के पहले, हम उन कारणों पर विचार कर लें, जो ऐसी परिस्थिति के उत्पन्न होने के निमित्त कारण बनते हैं। बहुधा ऐसा होता है कि कार्य क्षेत्र का चुनाव करने के बाद यदि परीक्षा



की जाय तो लगोगा कि चौकोर छेदों में गोल और गोल छेदों में चौकोर गढ़े ठूँसे हुए हैं। पहली जिम्मेदारी इस सम्बन्ध में आजकल की शिक्षा-प्रणाली की है। बहुत से विद्यार्थी अपने कॉलेज-जीवन की समाप्ति तक भी यह नहीं निश्चय कर पाते कि पढ़ाई पास करने के बाद वे क्या करेंगे। वच्चे प्राथमिक शालाओं से माध्यमिक शालाओं में और वहाँ से कॉलेजों में पहुँच जाते हैं—इसलिए नहीं कि शिक्षा के प्रति उनके मन में अदम्य उत्साह है, वरन केवल इसलिए कि उन्हें यह प्रतीत ही नहीं है कि यदि वह न करेंगे तो फिर क्या करें। वे पढ़ते रहते हैं, पढ़ते रहते हैं और तभी किसी दिन जीवन के लिए किसी-क्षेत्र विशेष के चुनाव की समस्या उनके सामने आ उपस्थित होती है। जब वे स्कूल के जीवन से बाहर आते हैं, तो उन्हें इस जगत की वास्तविकताओं का कोई परिचय नहीं होता। ऐसी अवस्था में यह उचित ही है कि वे प्रचलित लोक-रीति-नीति के माने में अपना मेल बिठाने में असमर्थ रहें और उनके पाँव आत्म विश्वास पूर्वक तथा दृढ़ता से पृथ्वी पर न टिक सकें। उसे ऐसा लगता है कि न तो अपने शिक्षण से ही और न प्रवृत्तिवश ही वह जीवन की मितव्ययता के अनुकूल चल सकता है। उसकी प्राप्त की हुई शिक्षा उसके मन में आत्म-गुरुता की मिथ्या भावना और भर देती है।

### उटपटाँग चुनावः—

योग्यता और प्रवृत्ति की दृष्टि से जब कोई निर्णय नहीं हो पाता तो उटपटाँग चुनाव ही एक मात्र मार्ग रह जाता है। यदि माता-पिता किसी एक क्षेत्र में सफल हुए तो बहुधा वे यह प्रयत्न करते हैं कि उनके पुत्र भी उसी क्षेत्र में प्रवेश करें। उनकी रुचि, बुद्धि और प्रकृति-गत भिन्नता को समझते हुए भी इस प्रकार की लाद कर दी जाती है। यदि माता-पिता अपने चुने हुए कार्य में असफल हो गये तो वे दूसरी दृष्टि से ऐकान्तिक दृष्टि कोण अपना लेते हैं कि और चाहे कोई काम किया जाय पर उस काम में तो कैसे भी हाथ न डाला जाय। कभी-कभी कुछ तरुण यह समझ कर एक काम शुरू कर देते हैं कि उसमें वे रस सकेंगे पर बाद में उन्हें अनुभव होता है कि उनकी कल्पना ने उन्हें धोखा दिया। काम देने वालों या नौकर रखने वालों के सम्बन्ध में भी मैं यहाँ दो शब्द कहना



चाहूँगा। बहुधा ये लोग कुछ इधर-उधर के प्रश्न कर के या फिर केवल मुँह देख कर ही नियुक्तियाँ कर देते हैं। यदि कोई नवयुवक अपने व्यवहार से किसी तरह के असामन्जस्य का आभास न दे तो वस वे इतने से ही उसकी योग्यता कबूल कर लेते हैं। बाद में यदि वह तरुण अपने काम में दक्ष सिद्ध हुआ तो वे इसका श्रेय अपने सही निर्णय करने की शक्ति को दे देते हैं और यदि वह ठीक काम न कर सका तो इसे अपने निर्णय की असमर्थता न मान कर तरुण की योग्यता, शिक्षा या परिश्रम में दोष निकालने लगते हैं। खैर! ऐसी स्थिति में दोष चाहे काम देने वाले का हो, चाहे काम स्वीकार करने वाले का, चेचारा तरुण कहीं जम नहीं सकता। यदि उसे कहीं कभी कोई सही और उसकी प्रवृत्ति के अनुकूल काम न मिला तो जीवन भर उसके लिए भटकने के सिवाय कोई चारा नहीं रह जाता। नये काम के साथ नई आपत्ति उठ खड़ी होती है और उसकी समस्या ज्यों की त्यों रहती है।

### स्कूल का जीवन नहीं रहता:—

यद्यपि अनेक बालक अपने नये बनते हुए जीवन के प्रति बड़ी उत्सुकता से सजग रहते हैं, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि स्कूल जीवन से निकल कर धन्वे से लगने की बात एक बहुत बड़ा परिवर्तन है। जिस स्कूली दुनियाँ से बालक अच्छी तरह परिचित होता है, उसे छोड़ कर उसे एक ऐसी दुनियाँ में प्रवेश करना पड़ता है, जो उसके लिए विलकुल नई होती है। व्यवहार और बात-चीत में, स्कूलों और घरों में जो स्वतन्त्रता थी, उसकी वहाँ कुछ न्यूनता-सी मालूम होती है। उसे अधिक घण्टों तक लग कर काम करना पड़ता है, छुट्टियाँ कम मिलती हैं और मनोरंजन तथा खेल कूद के अवसरों की संख्या भी कम हो जाती है। जिन लोगों के साथ रह कर उसे काम करना पड़ता है, वे अधिकतर उससे अवस्था में बड़े होते हैं और यहाँ जिस प्रकार के अनुशासन में उसे रहना पड़ता है, उसका रूप भी भिन्न होता है। किन्तु साथ ही अपनी निजी आय के प्रारम्भ होने के साथ उसे एक नई तरह की स्वाधीनता का आभास होने लगता है। यह परिवर्तन स्पष्ट तथा महत्वपूर्ण है।

## काम या धन्धे के चुनाव में मार्ग-दर्शन की आवश्यकता:-

यदि बालक या बालिका की योग्यता और विशेषताओं के सम्बन्ध में यथेष्ट जानकारी प्राप्त कर लेने पर ध्यान दिया जाय तो बहुत जल्दी ही धन्धे का चुनाव या निर्णय किया जा सकता है। बालक के स्कूल छोड़ने के समय तक इस मामले को लटकाये रखना, खास कर ऐसी अवस्था में जब किसी धन्धे के लिए पहले से ही अच्छी तैयारी की आवश्यकता हो, बुरी बात है। काम धन्धों में रुचि और प्रवृत्ति की दृष्टि से मानव-प्रकृति के अध्ययन और निर्णय के महत्व को धीरे-धीरे लोग समझ रहे हैं। अभी सभी लोग यह नहीं मानते की बिना कुछ समय तक किसी काम या धन्धे को हाथ में लिए, किसी व्यक्ति की किसी कार्य विशेष को कर सकने की योग्यता या अयोग्यता के सम्बन्ध में अन्तिम रूप से कोई निर्णय दिया जा सकता है। देखा जाय तो काम पर लगा-लगा कर और कुछ दिन के बाद अयोग्य करार देकर अलग कर देना और फिर तरुणों द्वारा और और कामों को आजमाते फिरना, यह रवैया समय, शक्ति और आत्म-तेज का नाश करना है। बार-बार अयोग्य करार दिये जाकर इधर-उधर भटकते फिरने वाले तरुणों के जीवन पर इसका बहुत बुरा असर पड़ता है। अतः काम या धन्धे के चुनाव में बहुत पहले से ही निर्णय और मार्ग दर्शन की आवश्यकता को स्वीकार करना ही होगा।

## काम धन्धे के माने में मार्ग-दर्शन देने की स्थितियाँ:-

काम धन्धे के चुनाव में मार्ग-दर्शन से अभिप्राय है चुनाव के माने में राय देना, सहायता देना और चुनाव कर लेने के बाद उसे लेकर आगे बढ़ने में भी सहायता पहुँचाना। इस सम्बन्ध में चार बातें सामने आती हैं :-

(१) कई विकल्पों में से एक कार्य विशेष का चुनाव। किस आधार पर तथा स्कूल जीवन के किस स्तर पर-प्राथमिक स्तर में या माध्यमिक में यह चुनाव किया जाय ?— यह समस्या सामने आयेगी। पूछ-ताछ और राय का रूप विद्यार्थियों की विविध तथा विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार भिन्न-भिन्न होगा।



(२) दूसरा प्रश्न है चुने हुए कार्य क्षेत्र के लिए तैयारी का । इस समस्या के सम्बन्ध में कई प्रश्नों का निदान करना होगा । किस प्रकार की तैयारी सबसे अधिक वाँछित है ? क्या वह उस निर्धारित कार्य विशेष से स्वतंत्र रूप से भी हो सकती है ? क्या उस कार्य क्षेत्र के लिए स्कूल जीवन में ही तैयारी प्रारम्भ हो सकती है या उसके लिए छात्र की शिक्षा समाप्त होने तक प्रतीक्षा आवश्यक है ?

(३) तीसरा प्रश्न है चुने हुए कार्य क्षेत्र में प्रवेश करना । कौन-कौन सी सम्मलियाँ महत्वपूर्ण हैं ? उन्हें कैसे प्राप्त किया जाय ? किन साधनों और सूत्रों द्वारा बालक को वाँछित काम मिल सकता है ?.....आदि बातें विचारणीय हैं ।

(४) चुने हुए कार्य क्षेत्र में प्रवेश करने के बाद उसमें उन्नति करना यह चौथा प्रश्न है । क्या क्या विशेष तैयारी या ट्रेनिंग इस दृष्टि से उपयोगी है ? क्या उसका कार्य करने के स्थान पर ही मिल सकता सम्भव है या उसके लिए किन्हीं विशेष शिक्षालयों में जाना पड़ेगा ? क्या उस काम की पहले ट्रायल ( परीक्षण ) तथा कुछ अभ्यास द्वारा जाँच कर लेना आवश्यक है और उपयोगी है ?

ये प्रश्न व्यापक दिलचस्पी वाले हैं । शिक्षाविद्गण, माता-पिताओं तथा नौकरी देने वालों के बीच इनके सम्बन्ध में मत-मतान्तर भी बहुत है, पर इस प्रकार के सैद्धान्तिक मत भेदों में पड़ने की हमें इतनी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इन चार मुद्दों के बारे में उन लोगों का तो एक मत है ही, जिनसे इतना सीधा संबंध है । उन सबके सामने जो मौलिक प्रश्न है वह यह है कि धन्ये के सम्बन्ध में सही और सन्तोष जनक चुनाव किस प्रकार सम्भव है और चारों ओर से इसका एक ही हल बताया जाता है कि बालक को वैयक्तिक रुचि और प्रवृत्ति का सावधानी से अध्ययन किया जाय और ऐसा काम चुना जाय, जिसमें उसकी विशिष्ट रुचि और प्रवृत्ति के विकास के लिये यथेष्ट अवसर प्राप्त हो ।

### बालक का अध्ययन:—

काम धन्ये की योग्यता की दृष्टि से बालक का अध्ययन करने



के लिए हमें निम्न लिखित बातों के बारे में जानकारी होना आवश्यक होगा :—

( १ ) बालक के गत अनुभव तथा चारों ओर के क्षेत्र-वातावरण का परिचय । इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें बालक के घर की परिस्थितियों से सम्पर्क स्थापित करना होगा और संभव है कि आगे भविष्य तक उससे संबंध बनाये रखना पड़े और अपना प्रभाव भी डालना पड़े । बालक के जीवन की महत्व पूर्ण समस्याओं में उसके माता-पिताओं का व्यक्तित्व तथा घर में मिलने वाले अभी-व्यक्ति और काम के अवसर या किन्हीं प्रकार के बन्धन मुख्य हैं । साथ-साथ में उसका अपने भाई-बहनों के साथ का संबंध भी विचारणीय है । घर के अध्ययन का उद्देश्य इस प्रकार है :—

( अ ) बालक के गत और वर्तमान क्षेत्र-वातावरण का इस दृष्टि से अध्ययन किया जाय कि सामाजिक दृष्टि से बालक की घर में क्या स्थिति रही अथवा है, विविध प्रकार का अनुभव प्राप्त करने के लिए उसे कितना मौका मिलता है व अपनी प्रवृत्ति के अनुसार काम करने, खेलने-कूदने आदि के लिए उसे कितना समय दिया जाता है ।

( आ ) जहाँ तक माता-पिता की जानकारी हो, उनसे इस वास्तव परिचय प्राप्त किया जाय कि बालक क्या २ करता रहा है, तथा किस २ चीज़, काम या बात में रस लेता रहा है । इससे शिक्षक के बालक के संबंध में आज के ज्ञान में वृद्धि होगी । बालक क्या कर सकता है यह जानने से पहले यह अधिक आवश्यक है कि यह जाना जाय कि उसने क्या २ किया ।

( इ ) माता-पिताओं द्वारा बालक के लिए उपादेय कार्य क्षेत्र या धन्ये के बारे में दिये गये सुझावों पर विचार किया जाय, और समया-नुसार यह भी देखा जाय कि बालक का उसी समय उस कार्य में लग जाना आवश्यक है या आगे शिक्षा संभव है ।

घर की पूछताछ से ज्ञात होने वाली बातों का विवरण रखा जाय उनसे बालक की स्वभावगत विशेषताओं तथा औद्योगिक रुचि और अभिरुचि का परिचय मिल सकेगा ।



( २ ) शारीरिक स्वास्थ्य-विचार :—इसके अन्तर्गत बालक की समस्त इन्द्रियों की अवस्था का विचार आ जाता है । कुछ धन्धों में आँख और कान की तीव्र शक्तिमत्ता आवश्यक हो सकती है । डाक्टरों परीक्षण की रिपोर्ट से यह ज्ञात हो सकता है कि बालक में इन्द्रियों संबंधी क्या गुण दोष हैं ? और फिर विचार पूर्वक ऐन्द्रियिक गुण-दोषों का बालक की प्रतिभा और प्रवृत्ति से संबंध भी जाना जा सकता है ।

( ३ ) मानसिक स्वास्थ्य विचार:—सामुहिक परीक्षा, वैयक्तिक परीक्षण कार्यकरण परीक्षण, यान्त्रिक-क्रिया-शक्ति-परीक्षण, निर्माण कौशल परीक्षण, उद्योग विशेष से संबंधित सामान्य ज्ञान-परीक्षण तथा विद्वत्ता जन्य योग्यता-परीक्षण आदि परीक्षण, जो कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रयोग-सिद्ध हो चुके हैं, उनके द्वारा जाँच करने से मानसिक शक्ति, कौशल तथा योग्यता का अनुमान लगाया जा सकता है । इन परीक्षणों से पता चल जाता है कि कोई व्यक्ति निश्चित मिनटों में बताई गई क्रिया को कितनी मात्रा में अथवा कितनी सफलता या योग्यता से कर सकता है ।

( ४ ) स्वभावगत गुण यथा सामाजिक भावना, सहयोग की भावना, आत्माभिव्यक्ति की भावना तथा अन्य ऐसे गुणों की जो बालक में विकसित हो रहे हैं या हुए हैं, उनका परीक्षण हो ।

( ५ ) व्यक्तिगत गुण यथा ईमानदारी, सहिष्णुता, सद्भाव आदि की विद्यमानता, तरुणों को अपने भावी कार्य क्रम में सफलता प्रदान करने में सहायक होगी ।

**प्राप्त की हुई सामग्री का संश्लेषण:—**

किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए इस संबंध में चार स्थितियाँ विचारणीय हैं:—

( अ ) सबसे पहले प्रत्येक बालक को उसकी सामान्य योग्यता का ध्यान करते हुए अलग अलग वर्गों में विभाजित करना होगा । इसके बाद यह सम्भव होगा कि विविध उद्योगों में उनके उपयुक्त योग्यता और

प्रवृत्ति वाले बालकों को उन उन कामों में प्रवृत्त करने का उपयोग किया जाय।

( आ ) अवाँछित कामों और उद्योगों से मुक्त होने और एक उन्मुक्त काम पर स्थित होने कि दृष्टि से फिर यह देखना होगा कि बालक बौद्धिक और प्रकृतिगत विशिष्टता को ध्यान में रखते हुए किस प्रकार के काम के अधिक योग्य होगा—व्यक्तियों से सम्पर्क या वस्तुओं के सम्बन्ध या कागज या पुस्तकों सम्बन्धी काम या अन्य किसी प्रकार के काम में से कौन सा उसके सबसे अधिक अनुकूल पड़ता है।

( इ ) जिस बालक के लिए काम तय करना है, जब उसके क्षेत्र आदि के सम्बन्ध में काफ़ी स्पष्ट परिचय हो जाय, फिर इस बात की आवश्यकता होगी कि उसकी दर्शन शक्ति, परखने की शक्ति, समझने की शक्ति आदि की विस्तार से जानकारी की जाय। इस स्थिति पर स्वभाव गत विशेषताओं का भी व्यापक रूप से अध्ययन होगा।

( ई ) चौथी स्थिति में माता-पिताओं की इच्छा, बालक की महत्वाकांक्षा, विचारे हुए काम में प्रवेश के लिए अवसर की खोज आदि बातों का निश्चय करके व्यावहारिक दृष्टि से सारी समस्या का हल प्राप्त करना होगा। कितनी तनख्वाह मिलेगी या क्या आय होगी, कितनी मेहनत करनी पड़ेगी—इस प्रकार के प्रश्नों का विचार भी इस स्थिति में करना होगा।

यह मानना होगा कि किसी एक व्यक्ति के निर्णय की अपेक्षा मिल कर किया हुआ निर्णय अधिक विश्वसनीय है। यदि भिन्न-भिन्न लोगों के अवलोकन या निर्णय में कोई विरोध दिखाई देता है, तो इसका कारण मूल्यांकन की शैली का दोष न होकर उसे व्यवहार में लाने वालों की उसे ठीक से कर सकने में असफलता ही समझना चाहिये।

### उद्योग-धन्धों का अध्ययन:—

सबसे कठिन काम व्यक्तिकी विशेषताओं के अध्ययन के साथ औद्योगिक आवश्यकताओं का मेल बिठाना है। दोनों के बीच निकट एक्य होना आवश्यक है। बालक की योग्यता का ध्यान रखते हुए यदि

उद्योगों का वर्गीकरण किया जायगा तो दोनों के बीच सामञ्जस्य घिठाने में सहूलियत होगी। व्यवसाय की वस्तु या काम के घंटों या वेतन की दर आदि की दृष्टि से किया गया वर्गीकरण बेकार है। जिन उद्योगों में उच्च कोटि की योग्यता की आवश्यकता हो, उनको एफ. एम. अर्ल के अनुसार निम्न क्रम से विभाजित किया जा सकता है:—

## योग्यता

## उद्योग

१. साहित्यिक
२. गणितीय
३. वैज्ञानिक
४. यान्त्रिक
५. व्यावहारिक और क्रियात्मक
६. कलात्मक
७. प्रवन्धात्मक
८. सामाजिक

१. लेखक, सम्पादक, प्रोफेसर आदि
२. अकाउण्टेण्ट, वेङ्कर आदि
३. शोध कार्य, वैद्यक आदि
४. इन्जीनियर, कारीगर आदि
५. सर्जन, दंत चिकित्सक आदि
६. अभिनेता, कलाकार, गायक आदि
७. मैनेजर, सेक्रेटरी आदि
८. राजनीतिज्ञ, शिक्षक, पादरी आदि

इसी प्रकार औसत आदमी का खयाल करते हुए सामान्य योग्यता की दृष्टि से पादरी घड़ीसाज, जिल्दसाज जौहरी, फोरमेन, और दुकानदार को हम क्रमशः साहित्यिक, यान्त्रिक, व्यावहारिक या क्रियात्मक, कलात्मक, प्रवन्धात्मक और सामाजिक श्रेणी में रख सकते हैं। जो काम औसत योग्यता के मान से भी न्यून योग्यता वाले व्यक्तियों द्वारा किये जा सकते हैं, उनके लिए केवल दो प्रकार की योग्यता की दृष्टि से विचार करना आवश्यक है—व्यावहारिक ( मजदूर आदि ) और सामाजिक ( सन्देशवाहक, नौकर आदि )।

उद्योग धन्यों के चुनाव के तरीकों के बारे में काफी कहा जा चुका है। इन्हीं तरीकों से उद्योग धन्यों के सम्बन्ध में ठीक चुनाव के बारे में परामर्श देने वाला सूचनाओं का संग्रह करता है और अपनी राय देता है। हो सकता है कि वह एक काम चुन कर देता दे या एक दो तीन बता दे, जिसमें से कोई एक चुना जा सके। इस बारे में शंका के लिए कोई स्थान नहीं है कि इस क्रम से यथेष्ट लाभ होने की सम्भावना है। यह ठीक

है कि पूर्ण निश्चयात्मकता की गारंटी नहीं दी जा सकती, फिर भी भूल होने की सम्भावना में बहुत कमी अवश्य हो जाती है।

### चुने हुए उद्योग या धन्धों में प्रवेश की तैयारी

उद्योग धन्धों में प्रवेश के लिए अच्छी तैयारी करना इतना कठिन नहीं है, जितना उद्योग धन्धों का चुनाव करना। वास्तव में ये एक ही समस्या के दो रूप हैं। किसी चुने हुए कार्य की तैयारी के लिये कभी-कभी उसी स्कूल में शिक्षा प्राप्त करना, और कभी किसी ऐसे दूसरे स्कूल में जाना जहाँ उसकी विशेष शिक्षा की व्यवस्था हो और कभी स्वयं उस काम का ही कुछ दिन अभ्यास करना और कुछ समय निकाल कर पढ़ते रहना आवश्यक हो सकता है। इन तीनों स्थितियों में अपने-अपने दूषण हैं और अपनी-अपनी विशेषताएँ भी।

### घर, स्कूल और राज्य का दायित्व

काम धन्धे का ठीक चुनाव तभी सम्भव है कि जब वह ऐसे लोगों की राय से हो, जिन्होंने किसी बालक या बालिका की योग्यता और चरित्र का उद्योग विशेष की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए अच्छी तरह अध्ययन किया हो। इस दृष्टि से बालक के लिए काम धन्धे का ठीक-ठीक निश्चय करने के मामले में घर और स्कूल का सहयोग अत्यन्त वाञ्छनीय है। राज्य की जिम्मेदारी यह है कि इस काम के लिए ऐसी सुविधाएँ सुलभ कर दे कि जिससे देश को हानि न हो तथा व्यर्थ में ही देश के तरुणों को अशान्ति और दुःख की आग में न झुलसना पड़े।

### घर

अपने बच्चों की योग्यता और महत्वाकांक्षाओं के बारे में जितना माता-पिता जानते हैं, उतना कोई और कठिनाई से ही जान सकता है। अतः माता-पिता का यह कर्तव्य है कि वे यह ध्यान रखें कि बालक किस बात के करने में सबसे ज्यादा दिलचस्पी लेता है, तथा किस बात के करने से उसे सबसे अधिक शान्ति और सन्तोष मिलता है। अच्छा होगा कि माता-पिता किसी काम विशेष के लिए आवश्यक योग्यता की दृष्टि से बालक की योग्यता और रुचि को पहचान लें। किसी धन्धे में



सफलता पाने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है—यथा अपना मार्ग निश्चित करने की शक्ति, दूसरों के साथ अपना मेल मिलाने की युक्ति और योग्यता, और चुने हुए काम में पूरी दिलचस्पी आदि, इनकी दृष्टि से भी उन्हें अपने बालक के बारे में विचार करते रहना चाहिए तथा उसे मार्ग दर्शन देते रहने में तत्परता दिखाना चाहिए। उन्हें अपनी महत्वाकांक्षा को अपने बच्चों पर थोपने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। जिन कामों से बालकों को जीवन में सच्चा आनन्द न मिले, उनमें केवल ताकत हाथ लगने या सामाजिक प्रतिष्ठा मिल जाने के ख्याल से उन्हें धकेलने का प्रयत्न हानिकारक है। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि बालकों के सामने बहुत ऊँचे-ऊँचे आदर्शों की बातें बघारने से बहुत हानि भी हो सकती है।

उद्योग धन्धों के माने में परामर्श देने के लिए नियुक्त व्यक्ति जब माता-पिताओं से मिले, तो उन्हें उसके सामने घर की उन सब परिस्थितियों का ठीक-ठीक वर्णन कर देना चाहिए, जिनका बालक के विगत जीवन पर प्रभाव रहा हो तथा आगे भी पड़ने को हो। बालक फुर्सत के समय क्या करता है, कुटुम्ब के प्रति उसका क्या रुख है, सम्बन्धियों तथा मित्रों से कैसा व्यवहार है आदि बातों का परिचय भी माता-पिताओं द्वारा काम-धन्धे के बारे में निर्देशन करने वाले को मिलना चाहिए। बालक के जीवन की कोई विशेष घटना, शिक्षा क्रम में किसी प्रकार का व्यतिक्रम अथवा अन्य किसी प्रकार की प्रतिक्रिया का भी ठीक-२ हाल देना आवश्यक है। वंश परम्परा का प्रभाव, चरित्रगत गुण दोष, मनो-वृत्ति और रुचि विशेष आदि का विचार भी किया जायगा। बालक के सम्बन्ध में ठीक-ठीक और काफी आवश्यक सूचनाओं के संग्रह का काम केवल अच्छी भावना से ही पूरा नहीं हो सकता, उसके लिये माता-पिताओं की योग्यता और निरीक्षण कर सकने की क्षमता की बात भी महत्वपूर्ण है। काम-धन्धे के बारे में नियुक्त निर्देशक के घर पर आने को माता-पिता एक जबरदस्ती का हस्तक्षेप न समझें, वरन् वे उसे अपने ही काम का साधक समझ कर चले और यथाक्रम पूरी सूचनाएँ उसे देने को उद्यत रहें। इतना ही नहीं यदि आवश्यक हो तो दिन-प्रतिदिन की चर्चा को उसे स्वयं देख सकने की सुविधा देने से भी न मुकें।

## स्कूल

स्कूलों को बच्चों द्वारा अपने भावी जीवन के लिये काम के चुनाव के माने में काफी सहायता देनी होगी । इस बात की ओर बार-बार संकेत करने की आवश्यकता नहीं है कि यदि स्कूल बालक के व्यक्तित्व के विकास में और उन्हें स्कूल में घर जैसी प्रतीति करवाने में असफल रहता है, तो यह उसकी एक बहुत बड़ी कमी है । स्कूल काम धन्धे के ठीक चुनाव के बारे में क्या कर सकता है, इसका कुछ परिचय नीचे दिया जाता है:—

(१) शिक्षा के क्रम को आद्योपान्त इस क्रम से ढालना चाहिये कि केवल पुस्तक पाण्डित्य की अपेक्षा व्यावसायिक ज्ञान की प्राप्ति उससे अधिक हो सके । हस्तकौशल, उद्योग, कृषि तथा अन्य ऐसी प्रवृत्तियाँ जो व्यावसायिक बुद्धि के विकास में अधिक सहायक हो सकती हैं, स्कूलों में प्रारम्भ की जानी चाहियें । अवश्य ही इसका मतलब यह होगा कि हमें शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा के अनुक्रम और शिक्षा की पद्धतियों आदि सब में आमूल परिवर्तन करना होगा ।

(२) यद्यपि मनोवैज्ञानिक ढंग से विविध प्रक्रियाओं द्वारा ठीक २ परीक्षण कर कोई व्यक्ति बालक की रुचि, प्रवृत्ति, योग्यता आदि के सही अनुसंधान द्वारा कोई निर्देश दे उसके मुकाबले में शिक्षक अपनी साधारण देख-रेख और निरीक्षण के आधार पर कुछ राय दें, उसका महत्व कम ही माना जायगा, फिर भी शिक्षकगण बालकों को अपने भावी जीवन के लिये कोई उपयुक्त काम-धन्धा चुन सकने की समस्या को हल करने में कुछ न कुछ सहायता तो पहुँचा ही सकते हैं । स्कूल के कमरे में, खेल के मैदान में, विभिन्न विषयों में बालक अपनी जिस प्रकार की बुद्धि, योग्यता, कुशलता और रुचि आदि का परिचय देता है, उसके आधार पर वह अपनी कुछ न कुछ राय स्थिरकर ही सकता है ।

(३) कुछ प्रगतिशील स्कूलों में आजकल कार्य-निर्वाचन शिक्षक (Career master) की नियुक्ति की जो प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई है, वह प्रोत्साहनीय है । उसका अधिकाधिक प्रचार किया जाना चाहिये । बात यह है कि समस्या का ठीक २ हल पाना है, तो यह तभी संभव है कि

जब उसके निदान के लिये कोई एक ऐसा व्यक्ति नियुक्त किया जाय जो उसके लिये पूरा समय और पूरा विचार दे तथा उस कार्य विशेष के लिये खास तौर से तैयारी किये हुए हो।

(४) बालकों द्वारा काम-धन्धों के ठीक २ चुनाव में स्कूल और घर दोनों का बहुत निकट सहयोग आवश्यक है। उस उद्देश्य साधन के लिये “शिक्षक आभिभावक संघ” जैसे संगठनों की स्थापना बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकती है। ऐसे संगठन से पहिला लाभ तो यह होगा कि समय-समय पर यदि इनके अन्तर्गत विचार-विनिमय के लिये शिक्षक और माता-पिताओं को साथ बैठने का अवसर मिलेगा तो इससे माता-पिता धन्धे के चुनाव के सम्बन्ध में सामान्य सैद्धान्तिक बातों से भी परिचित हो सकेंगे और उन्हें यह भी बताया जा सकेगा कि स्कूल इस संबंध में क्या सहायता कर सकता है। दूसरा लाभ ऐसे संगठनों से यह होगा कि माता-पिता और शिक्षकों के बीच सौहार्द बढ़ेगा और इसके परिणाम-स्वरूप बालकों की जीवन-चर्या पर उनमें खुलकर बातें हो सकेंगी और जब बालक के स्कूल छोड़ने का समय आवेगा तो वे दोनों मिलकर उसके भावी कार्यक्रम के बारे में अधिक सहूलियत से कोई निश्चय कर सकेंगे।

## केरियर-मास्टरों से

केरियर मास्टर (काम-धन्धे के चुनाव में सहायक शिक्षक) का काम बहुत महत्वपूर्ण और योग्यता-सापेक्ष है। उसे सदा चतुराई और समझदारी से काम करते रहना होगा। निम्नलिखित बातों पर उनका ध्यान आकर्षित किया जा सकता है:—

(१) केरियर मास्टर को अपना निर्णय देने के पूर्व विविध मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के करने के साथ-साथ जिस बालक के लिये निर्णय करना हो, उसके माता-पिता, अपने स्कूल के सहयोगी शिक्षक तथा स्वयं उस बालक से मिलकर बातचीत करने और यदि कुछ जानकारी मिल सके तो उसे प्राप्त करने के लिये भी तैयार रहना चाहिये।

(२) सम्बन्धित बालक के सम्बन्ध में ही नहीं बल्कि उसके पूरे कुटुम्ब के सम्बन्ध में सामान्य परिचय प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिये। फिर बालक की विशेष रुचि, प्रवृत्ति, विनोद की वस्तुएँ, अवकाश के समय की



गतिविधि, व्यवहार की विशिष्टता तथा गुण-दोष आदि का विस्तृत विश्लेषण करना चाहिये ।

(३) आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में जाँच कर उसे यह भी देखना होगा कि विद्यार्थी को तत्काल ही किसी काम में लगने की आवश्यकता है या स्कूल छोड़ने पर इसकी आवश्यकता होगी । क्या उसके पास ऐसे साधन हैं कि वह आगे पढ़ सके या किसी उद्योग विशेष के लिये खास तौर से शिक्षण प्राप्त करने के लिये कहीं जा सके ।

(४) स्कूलों में होने वाली परीक्षाओं की उपयुक्तता अनुपयुक्तता के बारे में आजकल बड़ा मतभेद चल रहा है, इसलिये यह आवश्यक है कि इन परीक्षाओं द्वारा प्राप्त होने वाले परिणामों पर वह बहुत अधिक विश्वास करके न चले ।

(५) बालक को समझने के लिये प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक परीक्षण द्वारा किसी प्रकार का निष्कर्ष निकालने में भी वह किसी प्रकार भी किसी विशेष परिणाम में उलझने न पावे ।

(६) बालक से बातचीत करते समय वह एक स्कूल मास्टर की तरह नहीं, बल्कि बिल्कुल बालक के स्तर पर उतर कर बातचीत करे । बालक को यह अनुभव हो कि वह अपने मन की बात को खुलकर उसके सामने कह सकता है ।

(७) बालक से बातचीत करते समय वह बहुत ज्यादा लिखा लिखी न करे, क्योंकि ऐसा करने से बालक के मन में संकोच उत्पन्न हो जायगा कि मुझसे बातचीत करके ये कुछ भेद जानना चाहते हैं ।

(८) आखिरी काम कैरियर मास्टर का यह है कि परीक्षण द्वारा जो भी परिणाम सामने आये हों, उनके आधार पर यह निश्चय करे कि कौनसा काम सम्बन्धित बालक के लिये सभी दृष्टियों से ठीक साबित होगा ।

(९) अच्छा होगा यदि इस प्रकार के निश्चय की सूचना विद्यार्थी को देने की अपेक्षा माता-पिता को बुलाकर उन्हें ही दी जाय ।

## राज्य

विविध उद्योग-धन्धों में जो लोग काम करते हैं, उनके उन उन काम-धन्धों में ठीक ठीक तरह से न जँच सकने से राज्य को जो हानि होती

है, यह स्पष्ट है। समाज में इस कारण जो अशान्ति और निराशा फैली हुई है, देश स्मृद्धि और विकास में वह एक बहुत बड़ी बाधा है। सही ढंग का काम सही ढंग के आदमी के हाथ में आने से मनुष्यों के व्यक्तिगत जीवन में ही शान्ति और सुख नहीं आता, वरन् उसका असर सारे देश की सुख-शान्ति पर पड़ता है। अतः राज्य का कर्तव्य है कि हर सूरत से इस ओर सब ओर से पूरा ध्यान दिया जाय। इस सम्बन्ध में राज्य के कर्तव्यों को संक्षेप में यों कहा जा सकता है:—

(१) विविध उद्योग-धन्यों के सम्बन्ध में पुस्तकें और विज्ञापन प्रकाशित करवाये जायें, जिनमें उन उन उद्योग-धन्यों में प्रवेश और कार्य की शर्तें, वेतन की दर, तथा विकास की संभावनाओं का उल्लेख हो। काम के चुनाव में इनके पढ़ने से बड़ी मदद मिलेगी। यह ठीक है कि क्या काम करना और क्या न करना, इस बात का निश्चय व्यक्ति की अपनी इच्छा पर निर्भर है, पर ऐसी विज्ञापिकाओं से यह जानने में काफी मदद मिलेगी कि किस किस उद्योग में क्या क्या सुविधा और विकास के लिये क्या क्या गुंजाइशें मिलेंगी।

(२) प्रत्येक जिले में “कार्यक्षेत्र-चुनाव-निर्देशक” तथा “नौकरी ज्ञापक आफीसर” रखे जायें, जिनसे यह ज्ञात हो सके कि राज्य में किस किस प्रकार के काम मिल सकते हैं और योग्यता, अनुभव आदि के सम्बन्ध में उनमें प्रवेश के लिये क्या नियम और शर्तें हैं।

(३) “कार्यक्षेत्र-चुनाव” के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से राय देने वालों को नियुक्त किया जाय जो इस बारे में माता-पिताओं और शिक्षकों को राय दें। इस प्रकार के विशेषज्ञ कार्य के चुनाव के सम्बन्ध में कुछ ऐसी मूल और विशिष्ट बातों का ज्ञान और अनुभव रखते हैं जो साधारणतया बिना उस प्रकार की ट्रेनिंग प्राप्त किये प्राप्त नहीं हो सकता।

(४) शिक्षा विभाग के अन्तर्गत प्रत्येक जिले में एक ऐसा आफीसर रखा जाय जो अपने जिले के सभी स्कूलों को बालकों द्वारा अपने भविष्य के लिये काम के चुनाव के माने में मार्गदर्शन दे सके। यह आफीसर हर स्कूल में रहने वाले “केरियर मास्टर्स” को भाषणों, विवेचनों, डिमो-



न्स्ट्रेशनों आदि के द्वारा ट्रेनिंग देता रहे । प्रत्येक बालक को इस प्रकार की राय दे सकने के लिये आवश्यक ज्ञातव्य प्राप्त करने की दृष्टि से यह आफिसर परीक्षणों, रिकार्डों तथा अन्य विस्तार की बातों के बारे में योजना बनावे । बालकों की योग्यता की जाँच करने के काम में वह केरियर मास्टर को मार्गदर्शन भी देगा । आवश्यकतानुसार वह बैठकें बुलाकर सूचनाएँ तथा निर्देश दिया करेगा । इस प्रकार के आयोजनों की संख्या और आवश्यकता अवश्य ही जिले के विस्तार, उस जिले के स्कूलों की आवश्यकता और वहाँ के बच्चों की समस्याओं के खयाल से निर्धारित हो सकेगी ।

